

श्रेय और साधना



श्री योगेश्वर



साहित्य निकेतन, कानपुर

२००.१५

२२/.



LUXMI BOOK HOUSE
26, Mahatma Gandhi Marg
ALLAHABAD

१६९

श्रेय और साधना



लेखक
श्री योगेश्वर



प्रकाशक
साहित्य निकेतन, कानपुर

श्रेय और साधना

लेखक

श्री योगेश्वर

प्रकाशक

साहित्य निकेतन

श्रद्धानन्द पार्क, कानपुर-१

प्रथम संस्करण

१९६७

मूल्य

रु० ८.५०

मुद्रक

अनन्ता प्रिंटर्स

११८/५९२, कौशलपुरी,

कानपुर

समर्पण

“साधना” एवं समस्त संसार के साधकों को

प्रस्तावना

पाठकों के समक्ष “श्रेय और साधना” को प्रस्तुत करने के अवसर पर, मैं एक विचित्र प्रसन्नता का अनुभव करता हूँ ।

इस पुस्तक के सभी प्रकरण मेरी अप्रकाशित “आत्मकथा” से ही उद्धृत किये गये हैं । आत्मकथा के अन्तरगत कुछ प्रकरणों को इधर उधर से एकत्रित कर इस पुस्तक का संकलन किया गया है, भविष्य में जब “आत्मकथा” का प्रकाशन होगा तब ये प्रकरण अपने यथोचित स्थान पर होंगे ही परन्तु तब तक, इस पुस्तिका के रूप में उनका अध्ययन, पाठकों को रुचिकर प्रतीत होगा, ऐसी आशा है ।

भारत अपनी साधना एवं आध्यात्मिकता के लिए प्रसिद्ध है । इसके अञ्चल में साधना के पथ पर अग्रसर हुये अथवा प्रवास करने वाले अनेक महापुरुष निवास करते हैं । उनके दर्शनार्थ बहुतसे महत्वाकांक्षी पुरुष विदेशों से भी आते हैं और उनसे प्रभावित होकर उनपर परिचयात्मक लेख प्रकाशित करते हैं । अधिकांश भारतवासियों का ध्यान तभी उधर आकर्षित होता है । हमारे अनेकों देश भाई तभी यह जान पाते हैं कि भारत की इस पुण्य भूमि में ऐसे-ऐसे महापुरुष भी निवास करते हैं ।

प्रस्तुत पुस्तिका में, मेरे जीवन काल के अन्तरगत, स्वयं साक्षात् किए हुए अनेकों महात्माओं का वर्णन आया है । उनके साथ के प्रसंग एवं वार्तालाप भी हैं । इसमें सुप्रसिद्ध महात्मा गांधी, माता आनन्दमयी, श्री रमण महर्षि, प्रभुदत्त ब्रह्मचारी, भिक्षु अखण्डानन्द और हनुमान दास जैसे महात्माओं के अतिरिक्त नेपाली बाबा, वेदबन्धु, चेल के महात्मा, हरिदास जी, अन्नदाता इत्यादिक अज्ञात अथवा अल्प

(छः)

ख्याति वाले महात्माओं का भी वर्णन है। मेरे साथ उन महात्माओं का किस प्रकार एवं साधना की किस अवस्था में संपर्क हुआ, इस बात का उल्लेख करते हुए दूसरे अन्य भी प्रकरण हैं। साधना में आरूढ़ अथवा पथ के प्रवासी पुरुषों के लिए यह सब सामग्री किसी न किसी रूप में अवश्य उपयोगी सिद्ध होगी, ऐसा मेरा विश्वास है।

इस पुस्तक के प्रकाशन में राजकोट सुधराई के प्रमुख भाई श्री चम्पकलाल जी वोरा ने, अत्यन्त उत्साह के साथ कष्ट सहकर यथा सम्भव हर प्रकार से सहायता प्रदान किया है अस्तु मैं उनका विशेष आभार प्रगट करता हूँ।

C/o जटाशंकर त्रिवेदी,
यूनिक ट्रेडिंग कारपोरेशन
२२१ शेरीफ देवजी स्ट्रीट,
बम्बई-३

योगेश्वर

आमुख

वर्षों पहिले स्वतन्त्रता संग्राम के दिनों में मुझे अज्ञातवास करने का अवसर प्राप्त हुआ था। उस समय हिमालय की गोद में योग साधना में रत योगेश्वर जी ने मुझे आश्रय दिया था। उन दिनों उनको, तप, साधना और कष्ट झेलते हुये, मैंने उनकी निजानन्द की अनुभूति स्वयं अपनी आँखों से देखी थी। तभी से मैं उनका अनन्य प्रशंसक हो गया हूँ।

“श्रेय और साधना” में उन्होंने भिन्न-भिन्न सन्तों, ज्ञानियों एवं संत पुरुषों से हुये साक्षात्कार के संस्मरण प्रस्तुत किये हैं। वास्तव में यह पुस्तक योगेश्वर जी की साधना की अनुभूति के इतिहास का कुछ अंग है।

सरल भाषा में लिखित यह संस्मरण अभ्यासी साधकों के लिए चिन्तनशील अध्ययन का कार्य पूरा करता है।

मुझे आशा है कि यह पुस्तक केवल योगेश्वर जी के प्रशंसक वर्ग को ही नहीं, अपितु सम्पूर्ण समाज के लिये उपयोगी सिद्ध होगी।

“सहयोगी”

भक्ति नगर सोसाइटी
राजकोट

चम्पक लाल वोरा

प्राक्कथन

इस पुस्तक के रचियता श्री योगेश्वर जी का संक्षेप में परिचय करा देना आवश्यक जान पड़ता है। पाठक श्री योगेश्वर जी के थोड़े से परिचय से पुस्तक का अधिक लाभ और आनन्द लेंगे।

श्री योगेश्वर जी उसी गुजरात प्रान्त की देन हैं, जिस भूमि ने महर्षि दयानन्द सरस्वती और महात्मा गाँधी को भारत की मुक्ति के लिए अवतरित किया था।

ऐसा प्रतीत होता है कि श्री योगेश्वर जी भी उसी की पूर्ति के लिए अवतरित हुये हैं। लक्षणों से ऐसा लगता है। इतनी अल्प आयु में इतना प्रकाण्ड पाण्डित्य ग्रहण कर लेना बहुत दुर्लभ है।

लगभग २० वर्ष की अवस्था तक योगेश्वर जी बम्बई में शिक्षा पाते रहे। उसके पश्चात् लगभग १३ वर्ष हिमालय के अनेक स्थानों में भ्रमण और निवास करते रहे। हिमालय में जिस प्रकार का तपस्वी जीवन आपने व्यतीत किया है वह तप और त्याग का एक अद्भुत जीवन कहा जा सकता है।

आठ साल की छोटी आयु में ही आपके पिता जी आपको छोड़ परलोकवासी हो गये थे। आपकी पूज्य माता जी ने आपका लालन-पालन जिस प्रकार से किया वह बड़ी अद्भुत कहानी है। पूज्य माताजी छाया की भाँति श्री योगेश्वर जी के साथ रहती आ रही हैं। पूज्य माता जी जब श्री योगेश्वर जी की बाल अवस्था और हिमालय प्रवास की घटनायें सुनाती हैं, तब ऐसा जान पड़ता है कि श्री योगेश्वर जी ने किसी महान् कार्य की सिद्धि के लिए जन्म लिया है, जैसे महर्षि दयानन्द और महात्मा गान्धी ने इस भारत भूमि का उत्थान किया।

इस सम्बन्ध में श्री योगेश्वर जी के मसूरी प्रवास के कुछ प्रसंग बताना पाठकों को बहुत रुचिकर लगेगा ।

लगभग २५-२६ वर्ष से अपने कार्य संबंध में मेरा मसूरी रहना होता है । मसूरी जैसे विलासपूर्ण नगर में अभी तक ऐसा प्रभावशाली त्यागी व्यक्ति देखने में नहीं आया था, जिसके प्रभाव से छोटे-बड़े, गरीब-अमीर, महाराजा, महारानियां प्रभावित हुये हों, जैसे श्री योगेश्वर जी से प्रभावित हुये हैं ।

श्री योगेश्वर जी लगभग १० वर्ष से लेखन कार्य के कारण मसूरी आते हैं । कई वर्षों तक पूज्य बूढ़ी माता जी के साथ इन त्यागी युवक को नित्य ४ और ५ बजे सायंकाल घूमते देखता था । संयोग से १९६३ के वर्ष मसूर के श्री शेटी जी द्वारा मेरा परिचय जन्माष्टमी के एक दो दिन पहिले श्री योगेश्वर जी से हो गया । मैंने श्री योगेश्वर जी से प्रार्थना की कि जन्माष्टमी के शुभ अवसर पर श्री कृष्ण जन्म के सम्बन्ध में आप कुछ अपने विचार सुनायें तो कृपा होगी । आपने स्वीकार तो कर लिया, परन्तु यह कहते हुये स्वीकार किया कि मुझे प्रवचन आदि का अभ्यास नहीं है, न ही मैं करता हूं ।

जन्माष्टमी की रात्रि को मेरे ही निवास स्थान पर श्री योगेश्वरजी का मसूरी में सबसे प्रथम प्रवचन श्री कृष्ण जी के जीवन पर हुआ । सारे श्रोता मंत्र मुग्ध हो गये, गुजराती भाषी होते हुये भी आपने ऐसी सुन्दर और मधुर हिन्दी में श्री कृष्ण जी के जीवन के सब ही अंगों पर पूर्ण रूप से इस प्रकार प्रकाश डाला कि मसूरी के लोग आनन्द-विभोर हो गये । और उस दिन से ही मसूरी आपसे परिचित हो गई ।

नगर के प्रतिष्ठित सज्जनों ने आपसे आग्रह पूर्वक प्रार्थना करके श्री गान्धी निवास सोसाइटी मसूरी के भवन में दैनिक प्रवचन का प्रबन्ध किया जो निरन्तर आपके मसूरी निवास काल तक चलता है । कई वर्ष हो गये हैं प्रवचन होते हुये, मसूरी जैसे नगर

के वायु मण्डल में परिवर्तन आ गया है। नित्य प्रति सायं ६ बजे से ७ बजे तक लोग मंत्र मुग्ध हो लाभ उठाते हैं।

इस पुस्तक में श्री योगेश्वर जी की कुछ अनुभूतियां आपको पढ़ने को मिलेंगी। जिससे जीवन के उत्कर्ष में प्रेरणा मिलती है।

श्री योगेश्वर जी के दैनिक जीवन यापन में वह सरलता, वह मधुरता, तेजस्विता और साधना की अलौकिकता है, जिसका प्रतिबिम्ब पड़े बिना नहीं रह सकता। आपके जीवन का सार यह है कि हमारे सत् विचारों और सत् कर्मों में ही ईश्वर का बास है।

आपका दैनिक जीवन घड़ी के समान चलता है। यहां विस्तार से लिखने की आवश्यकता नहीं प्रतीत होती। प्रातःकाल से रात्रि पर्यन्त आप नियमित रूप से साधना और परमार्थ में लगे रहते हैं। इसी बीच आप तीन घंटे नित्य लेखन कार्य में संलग्न रहते हैं। आपने गुजराती भाषा का भंडार लगभग १५-१६ पुस्तकें प्रकाशित करके भरा है और यह क्रम निरन्तर जारी है। हिन्दी में आपकी यह पहली पुस्तक है।

आशा है आपकी दूसरी पुस्तक भगवत् गीता पर अनुवादित होकर शीघ्र प्रकाशित होगी। यह दो बड़े भागों में गुजराती भाषा में प्रकाशित है, और बहुत महत्व का ग्रन्थ है।

अन्त में पूज्य माता जी की सेवा में सादर प्रणाम करता हूं। आप धन्य हैं आपने ऐसे तपस्वी-त्यागी और कर्मयोगी सन्त को जन्म दिया है, और अब उनकी देखभाल में निरन्तर लगी रहकर, अपार शान्ति और आनन्द अनुभव कर रही हैं।

—एक तुच्छ सेवक

अनुक्रम

प्रकरण का नाम	पृष्ठ
१ रूखीवा की स्मृति	१
२ सांप का स्वप्न	६
३ सरस्वती का स्वप्नदर्शन	१०
४ भगवान् बुद्ध का साक्षात् दर्शन	१५
५ संतों का समागम	२१
६ गांधी जी का दर्शन	२८
७ वालों से दूध का चमत्कार	३१
८ भिक्षु अखण्डानन्द से भेंट	३७
९ भिक्षु अखण्डानन्द की सहायता	४७
१० सन्यासी का दर्शन	५८
११ स्वामी शिवानन्द से सम्पर्क	६६
१२ अलौकिक अनुभव	७२
१३ ऋषिकेश से प्रस्थान	७८
१४ शान्ताश्रम से सम्पर्क	८४
१५ दीक्षा	९०
१६ पुनः ऋषिकेश	९६
१७ वसुधारा का वैरागी	१०२
१८ त्रिकालज्ञ महात्मा से भेंट	१०५
१९ दशरथाचल पर	११६
२० दशरथाचल के अनुभव	१२२
२१ भगवान् राम का दर्शन	१२८
२२ शंकर दर्शन का कथानक	१३४

(बारह)

	प्रकरण का नाम	पृष्ठ
२३	वेदवन्धु—एक सच्चे संत का समागम	१३९
२४	महात्मा वेदवन्धु के साथ वार्तालाप	१४५
२५	वेदवन्धु का अनोखा अनुभव	१५१
२६	कुण्डलिनी का उत्तम अनुभव	१५६
२७	खेचरी का योग और फिर ऋषिकेश	१६२
२८	एक अज्ञात महापुरुष का साक्षात् दर्शन	१६८
२९	खेचरी और आत्म-ज्योति का अनुभव	१७३
३०	दो आश्चर्यजनक अनुभव	१८०
३१	रमण महर्षि और संत ज्ञानेश्वर का दर्शन	१८६
३२	संतों का मिलाप	१९६
३३	गंगोत्री और केदारनाथ	२०३
३४	बदरीनाथ में	२०८
३५	बदरीनाथ के धाम में	२१३
३६	माता जी की बीमारी और राम का दर्शन	२१८
३७	शांताश्रम का पुनः मिलन	२२२
३८	महर्षि का दर्शन	२२७
३९	काली आकृति का अनुभव	२३४
४०	दक्षिणेश्वर का दर्शन	२३८
४१	कुमारी रूप में माँ	२४६
४२	अलौकिक दीक्षा	२५४
४३	माता आनन्दमयी से भेंट	२५८
४४	सोलन की विशेष स्मृति	२६८
४५	चेल के महात्मा	२७३
४६	हनुमान दर्शन और मेरा ही दिव्य दर्शन	२८१
४७	शिमला और नेपाली बाबा	२८४

प्रकरण का नाम	पृष्ठ
४८ ज्ञानेश्वर महाराज की आलिन्दी में कृपा	२९९
४९ नारद जी का अदभुत अनुभव	३०६
५० एक महात्मा से सम्पर्क	३११
५१ जादूगर साधू	३१६
५२ एक सुखद समागम और शारदा देवी का अनुभव	३१९
५३ शिरड़ी की यात्रा	३२६
५४ अन्नदाता का मिलाप	३३६
५५ नर्मदा तट की यात्रा—बुद्धदेव	३४१
५६ सांई बाबा का आलौकिक अनुभव	३४६
५७ बदरीनाथ यात्रा के संस्मरण—रामदास जी	३५१
५८ हनुमान दास जी से मिलाप	३५८
५९ भगवान् बुद्ध का दर्शन	३७१
६० स्वामी नित्यानन्द का दर्शन	३७४
६१ जलाराम बाबा की कृपा	३७८



चित्र सूची

१	योगेश्वर जी	आठ
२	स्वामी शिवानंद	८०
३	रमण महर्षि	१९२
४	स्वामी रामकृष्ण परमहंस	२४०
५	माता आनन्दमयी	२६४

श्रेय और साधना

श्री ५१८ ॥

श्रेय और साधना



श्री योगेश्वर

रूखी बा की स्मृति

जिस घर में मेरा जन्म हुआ था वह एक साधारण झोपड़ी सी थी। उसी में माता जी की बा भी रहा करती थीं। उनका नाम रुक्मिणी था। ग्रामीण भाषा में लोग उनको रुखी बा कहा करते थे। वे अत्यन्त दरिद्र अवस्था में अपना जीवन यापन करती थीं। लगभग अशिक्षित ही थीं कारण कि वे पाठशाला की शिक्षा से वंचित थी, फिर भी उनकी सूझ-बूझ एवं उनका व्यावहारिक ज्ञान अति उत्तम था। लोग उनसे सलाह लिया करते थे। दया की मानो वे मूर्ति ही थीं। किसी का दुःख देखकर वे द्रवित हो जाती थीं और उसे दूर करने का भरसक प्रयास भी करती थीं, भक्ति-भावना की उनमें बाहुल्यता थी। भजन सुनने एवं गाने में उन्हें अतीव आनन्द आता था। उस गाँव के रणछोर जी के मन्दिर में वे प्रतिदिन दर्शन करने जाया करती थीं और वहाँ भगवान की प्रतिमा के सम्मुख घंटों बैठी रहतीं, जब तक उनके रागमय निर्मल हृदय के भाव, आँसू के रूप में उनकी आँखों से न निकलने लगते, उनका हृदय अत्यन्त प्रेम पूर्ण एवं पवित्र था किसी का अनहित सोचने में तो उनकी कोई रुचि थी ही नहीं वरन् किसी दूसरे के द्वारा किसी का भी अहित होता देख कर उनकी आत्मा को अत्यन्त कष्ट होता था। उनकी मृत्यु बड़े विचित्र ढंग से हुई, इस अपूर्व घटना के समय मेरी अवस्था लगभग १७ वर्ष की होगी। अवकाश के दिन

थे, अस्तु मैं बम्बई से सरोड़ा आया हुआ था। वैशाख मास था और वैसाखी पूर्णिमा के दिन चन्द्र ग्रहण भी था। इसी दिन वे सावरमती नदी में स्नान करके भगवान के दर्शन करने देव मन्दिर में गयीं, वापस आने पर उन्हें ज्वर हो गया और वे लेट रहीं—वृद्धावस्था के कारण शारीरिक निर्बलता तो पूर्णरूपेण थी ही अस्तु वह ज्वर उनके जीवन का अन्तिम ज्वर प्रमाणित हुआ। ज्वर की अवस्था दूसरे दिन भी रही, इसी अवस्था में उनको अद्भुत अनुभव होने लगे। उनको नाना प्रकार के अनोखे दृश्य दिखायी पड़ने लगे जिनका वे बारम्बार वर्णन करने लगीं।

साधारण लोग उनकी बात समझ लेते यह सम्भव न था पर थीं वे सभी बातें सत्य, और जब-जब उनके मन में जो भी भाव उठते थे उनका वे वर्णन करने लगती थीं एक बार वे कहने लगीं अब हमारे जाने का समय आ गया है। आज सबेरे एक सुन्दर स्त्री रेशमी वस्त्र पहिने हुये दो पीत वस्त्र धारी सन्यासियों के साथ मेरी खाट के पास आयीं और मुझसे कहने लगीं अब तुम्हारी विदा का समय आ गया है अतएव हम लोग तुमको लेने आये हैं, तुम हमारे साथ चलो। इतना कह कर वे मुझे ले चलने के लिये तैयार हो गई परन्तु मैंने उन्हें उत्तर दिया कि अभी इसी समय मैं आप के साथ चल दूँ ऐसी मेरी इच्छा नहीं है। संसार की ममता मुझे नहीं है। संसार से विदा होना पड़े इसका मुझको शोक भी नहीं है। जो जन्मा है उसे जाना ही होगा। ईश्वर के दरबार का यही नियम है और यह अनादि काल से चला आ रहा है। इससे यक्ष, गन्धर्व तथा देवगण भी नहीं बच सकते फिर मनुष्य की विसात ही क्या है। मेरा एक काम बाकी रह गया है। मेरा पुत्र बड़ौदा में है। अन्त समय में उससे मिलने की मेरी इच्छा पूर्ण न हो सकेगी, यह ठीक न होगा, इसके पूर्ण हो जाने के उपरान्त मुझे तुम्हारे साथ चलने में कोई आपत्ति न होगी, मैं भी फिर शान्ति पूर्वक शरीर त्याग कर सकूंगी। मेरे सभी कार्य पूर्ण हो चुके हैं केवल

इतना ही शेष रह गया है । थोड़ी देर सांस लेने में कष्ट हुआ तत्पश्चात् वे कहने लगीं कि उन लोगों ने मेरी बात स्वीकार करली है । और मेरा वचन लेकर वे चले गये हैं । जाते-जाते कह गये हैं कि आज के तीसरे दिन हम लोग फिर आयेंगे तब वे मुझे अपने साथ अवश्य ले जायेंगे, तब तक बड़ौदा से तुम्हारा पुत्र भी आ जायगा । अब मैं दो तीन दिन की मेहमान हूँ, बड़ौदा से रमण को शीघ्रातिशोघ्न बुला लीजिये ।

उनकी वे बातें साधारण मनुष्य की समझ में आना कठिन था परन्तु वे उनको अत्यन्त सरलता से प्रकट कर रहीं थीं । परिस्थिति की गम्भीरता देखकर रमण को तार देकर बुलाया गया । एक दो दिन में ज्वर उतर जायगा ऐसी आशा सभी को थी परन्तु वह पूरी न हो सकी । ज्वर बना रहा, रमण भाई आ गये अस्तु रुखी बा को सन्तोष हो गया । दूसरे दिन प्रातःकाल उन्होंने घी का दीपक जलाया और मुझे पास बैठ कर गीता पाठ करने का आदेश दिया । उनके आदेशानुसार मैंने वहीं समीप में बैठ कर गीता पाठ समाप्त किया । ये सभी प्रसंग आज भी मुझे पूर्णरूपेण उसी प्रकार स्मरण हैं । सायंकाल को उन्होंने रमण भाई को अपने पास बुलाया और उनके हाथ में माता जी का हाथ रखकर कहा, “यह तेरी बहिन है इसकी देख रेख करते रहना ।” रमण भाई अत्यन्त बुद्धिमान एवं पवित्र व्यक्ति थे उन्होंने स्वीकार किया और आश्वासन दिया कि वे बहिन की देख भाल अवश्य करते रहेंगे, इस सम्बन्ध में और कोई चिन्ता करने की आवश्यकता नहीं । रमण भाई से इस प्रकार का आश्वासन प्राप्त हो जाने के उपरान्त रुखी बा को शान्ति मिली ।

उस दिन सायंकाल के समय जो भी उनसे मिलने आये उनसे बड़े प्रेम से वार्तालाप किया, उनका हृदय विशाल था किसी के प्रति अरुचि, तिरस्कार अथवा द्वेष भाव नहीं था । रात्रि में वे कहने लगी कि वह स्त्री

और सन्यासी लोग फिर आगये हैं, मेरी खाट के पास खड़े होकर मुझे देख रहे हैं और कहते हैं क्यों बूढ़ी मा ? अब आपका काम पूरा हो गया है ? हम लोग आपको लेने आये हैं । आपने वचन दिया था, तदनुसार आज आपको हमारे साथ अवश्य चलना होगा, इसके उपरान्त रूखी बा ने दृढ़ता पूर्वक कहा कि आज मैं निश्चयात्मक इन लोगों के साथ चली जाऊंगी । तदनुसार रूखी बा ने मध्य रात्रि के लगभग अपना शरीर त्याग कर दिया । मृत्यु का समय पहिले से स्वयं निर्धारित करने वाले व्यक्तियों में मेरी जानकारी में रूखी बा उस समय सर्व प्रथम थीं । योगी या भक्तों को मृत्यु का पूर्वाभास हो सकता है, इसमें कोई आश्चर्य नहीं परन्तु रूखी बा में ऐसी कोई विशेष साधना न थी । वे तो एक साधारण स्त्री थीं । उनकी विशेषता उनका भावुक एवं सरल हृदय होने के ही कारण थी । ईश्वर पर उनकी बड़ी आस्था थी, जिसके कारण उनको इस प्रकार के विचित्र अनुभव हुआ करते थे ।

विद्वानों का यह कथन कि ईश्वर की कृपा के लिए प्रखर पाण्डित्य की आवश्यकता नहीं होती उसके लिए हृदय की सरलता एवं निर्मलता की आवश्यकता है । ऐसा हृदय हो जाने पर निरक्षर भी नाना प्रकार के विचित्र अनुभव प्राप्त करने लगते हैं और साक्षर हो जाते हैं । इसके विपरीत हृदय की वक्रता एवं कुटिलता के कारण महान पण्डित भी जीवन भर नितान्त अज्ञ और अनुभव हीन रह जाते हैं ।

उसी दिन, रूखी बा की मृत्यु के समय, उसी गाँव में रहने वाले एक कुम्हार को स्वप्न हुआ । कुम्हार ने देखा कि गाँव के समीप एक विमान उतरा है जिसमें तीन चार दिव्य पुरुष हैं । इन दिव्य पुरुषों ने रूखी बा को अपने साथ विमान में बैठाया और फिर विमान उड़ गया । जैसा भी हो किन्तु रूखी बा की मृत्यु तो हो ही गयी थी इसमें कोई सन्देह न था — शरीर पड़ा रह गया प्राण पखेरू उड़ गया — प्रकृति की लीला अपार है कोई उसका अन्त नहीं पा सकता, महान ज्ञानी व विज्ञानी खोजते

ही रह गये, अपने निश्चित नियम के अनुसार वह अपना कार्यक्रम करती जा रही है — उसके प्रभाव से कोई भी प्राणी मुक्त नहीं हो सकता । परन्तु जो ईश्वर की शरण लेता है अथवा परमात्मा का अनुसंधान कर लेता है वही उस रहस्यमय लीला को सुगमता पूर्वक पार कर जाता है ।

रुखी बा की श्मसान यात्रा में मैं भी सम्मिलित हुआ था । साबरमती सरिता के तट पर चिता बनाई गयी और उस पर उनका शरीर रक्खा गया तत्पश्चात् प्रचण्ड अग्नि ज्वाला जल उठी । आज भी वह दृश्य मेरे नेत्रों के सम्मुख ज्यों का त्यों प्रस्तुत हो जाता है । मैं उस समय सुदूर नदी के तट पर बैठ गया इस प्रकार के विचारों का उदय हुआ कि शरीर नाशवान है और अन्ततोगत्वा इसी प्रकार भस्मीभूत हो जायगा, इसलिए इसका मोह करना वृथा है, शरीर पर ममता करने की अपेक्षा उसका सदुपयोग करने का आवश्यक कार्य आत्मोन्नति है, जिसे शीघ्रातिशीघ्र प्रारम्भ कर देना चाहिये । अतः उसी समय इसके निमित्त मैंने दृढ़ संकल्प कर लिया ।

साँप का स्वप्न

भूतकाल के वे दिन अत्यन्त धुंधले स्वरूप में स्मृति पट पर अते हैं उनमें से बहुतों का उल्लेख मैं पूर्णतया तटस्थ होकर कर रहा हूँ। आज तो गंगा तट पर इस स्थान पर बैठ कर हिमालय के पावन प्रदेश की वायु सेवन कर रहा हूँ। हृदय के भाव बदल चुके हैं। अब विचार विशद व विशाल बन गये हैं, आदर्श में अलौकिकता आ गयी है। बीज से जैसे अंकुर निकलते हैं और उनसे फूल एवं फल की दुनिया बाहर आती है उसी प्रकार बाल्यकाल के साधारण संस्कार रूपी बीजों से ही नये जीवन की नई सृष्टि की उद्भूति होती है उन बीजों का मूल्याङ्कन नहीं किया जा सकता है और उनका महत्व भी भूलने योग्य नहीं है क्योंकि उनके बिना फूल एवं फल से भरी जीवन की बाड़ी की नई दुनिया उत्पन्न ही कहाँ से होती ? यदि मूल न हो तो शाखा कहाँ से हो ? पायों बिना मकान की मंजिल नहीं उठाई जा सकती, दूध के बिना दही बन नहीं सकता, उसी प्रकार बाल्यावस्था के अनुभव प्राप्त किये बिना युवावस्था के अनुभव का अधिकार भी नहीं मिल सकता है। बाल्यकाल भावी जीवन रूपी मकान की नींव है उसका असर आगामी जीवन पर अत्यधिक पड़ता है अस्तु उसकी उपेक्षा या अवहेलना कदापि नहीं की जा सकती है।

गीता के स्थितिप्रज्ञ वाले श्लोकों को पढ़कर मुझे आनन्द मिला

एवं जीवन को पवित्र बनाकर महान् पुरुष बनने की महत्वाकांक्षा मेरे मन में उत्पन्न हो गयी, महान् पुरुष होने के लिए जीवन को नम्र एवं सद्गुणी बनाने की आवश्यकता सर्व प्रथम थी तदनुसार मैंने उसके लिये सभी सम्भव प्रयत्न करना प्रारम्भ कर दिया। इसी भावना में निमग्न रहते-रहते रामकृष्ण देव जैसे सन्त पुरुष के जीवन को मैं दृष्टि के सामने रखता रहा और उसके सार भाग को आचरण में उतार कर एक महान् और आदर्श सन्त पुरुष होने का स्वप्न देखता रहा। स्वप्न की शक्ति विलक्षण होती है, इस विषय में किसे सन्देह हो सकता है ?

मनुष्य जैसी भावना में रमता है, जैसा विचार करता है, जैसा स्वप्न देखता है वैसा थोड़े या अधिक अंश में वह हो सकता है यह बात ध्रुव सत्य है। भावना व विचारों की शक्ति इतनी प्रबल है कि वह जीवन का काया-कल्प कर सकती है अतएव मनुष्य को सदा सर्वदा उत्तम भावों एवं विचारों से सपन्न होने को कहा जाता है। हाँ विचारों या भावों को लेकर बैठे रहने से ही किसी के जीवन में क्रान्ति नहीं हो सकती। विचार या स्वप्न को साकार करने के लिए आवश्यक प्रयत्न भी करना पड़ेगा तभी जीवन की उन्नति हो सकेगी और भावना के अनुसार जीवन का ढाँचा भी तभी बन पायेगा। और दूसरों के लिये चाहे जो कुछ हो परन्तु मेरे अपने लिए तो यह बात ध्रुव सत्य हो गई है। मेरी जीवन इन महान् सिद्धान्तों का नमूना है। मैंने अपने जीवन में जो विचार किये और जिस प्रकार के जीवन की रूपरेखा का स्वप्न देखा वे वास्तविक हो साकार रूप में प्रगट हो गये हैं। कर्म पहले विचार के सूक्ष्म-स्वप्न में प्रगट हुये, तत् पश्चात् स्थूल रूप में उन्होंने आकार पाया, ऐसा होता चला आया है इसलिए विचार और भावना की शक्ति के बारे में मेरा विश्वास सुदृढ़ हो गया। है बाल्यकाल से ही मैं उच्च जीवन का विचार करता चला आया हूँ।

उन दिनों मुझे एक स्वप्न हुआ जो अब भी ज्यों का त्यों मुझे

स्मरण है। हमारी संस्था में एक छोटा मन्दिर था। उसके बाहर एक छोटा सा मैदान था। मैं उस मैदान में खड़ा हूँ स्वप्न का प्रारम्भ इस प्रकार से हुआ। थोड़ी देर के बाद उसी मैदान के कोने से निकल कर एक विषधर सर्प मेरी ओर आने लगा ! मैं कुछ भयभीत सा हुआ और मैंने आगे दौड़ना प्रारम्भ कर दिया परन्तु मेरे आश्चर्य का कोई ठिकाना न रहा जब मैंने यह देखा कि वह सर्प भी मेरे पीछे दौड़ता चला आ रहा है। मैं आगे और वह पीछे इस प्रकार एक लम्बी दौड़ होने लगी, कितनी उस मैदान में यह दौड़ होती रही मैं नहीं कह सकता परन्तु जब मुझे थकान मालूम होने लगी और ऐसा आभास होने लगा कि अब मैं और अधिक न दौड़ सकूँगा सर्प मुझे अवश्य पकड़ लेगा तो इसी क्षण एक विलक्षण बात हुई। न जाने कहाँ से सर्प को मनुष्य की बाणी प्राप्त हो गयी—सर्प को बोलते कभी सुना भी न था परन्तु वह तो मुझे सम्बोधन करके कहने लगा—“क्यों दौड़ते हो ? मुझसे क्यों डरते हो”,—“मैं तुमको कुछ न करूँगा”—“खड़े रहो।” कैसी विचित्र बात है ! एक सर्प के मुख से शुद्ध गुजराती का उच्चारण, मेरे आश्चर्य की सीमा न रही। उसके आश्वासन से प्रोत्साहित होने पर मेरा भय चला गया तब मैंने उसको सामने से देखा, वह खड़ा था मस्तक ऊँचा उठा कर फन हिलाने लगा थोड़ी देर के बाद उसका सर्प शरीर अदृश्य हो गया और उसके स्थान पर एक मूर्ति प्रगट हो गयी। मूर्ति छोटी थी, किसकी थी यह मेरी समझ में न आया। मेरी ओर देख कर वह बोली “आप एक महान् पुरुष होंगे, आप का जन्म इसीलिए हुआ है”, बस इतना कह कर वह अदृश्य हो गयी। मेरी निद्रा भी उसके बाद समाप्त हो गई जागने के उपरान्त मुझे कौतूहल हुआ कि स्वप्नावस्था में दिखाई देने वाला सर्प कौन हो सकता है और मेरे पीछे क्यों दौड़ने लगा ? हो सकता है कि वह कलियुग हो अथवा माया का स्वरूप हो। क्या ईश्वर स्वयं इस प्रकार लीला दिखायेगा ? इन प्रश्नों का समाधान मेरे मन को न प्राप्त हो सका ! स्वप्न का प्रभाव मन में बहुत काल

तक रहा और मुझे ऐसा भान होने लगा कि मैं अवश्यमेव एक महान् पुरुष हो सकूँगा, कैसे क्योंकर इसकी खबर न थी ।

निश्चयात्मक यह ईश्वरीय संदेश है वही मुझे महान् बनायेगा । यह उसी की इच्छा है और इस संदेश को उसने मेरे प्रति इस स्वप्न द्वारा प्रसारित किया है । इस धारणा के फलस्वरूप मेरा उत्साह दिनों दिन बढ़ता गया । महान् बनने की महत्वाकांक्षा उत्तरोत्तर सुदृढ़ होती गयी ।

सरस्वती का स्वप्न दर्शन

जीवन को महान् बनाने के लिए सद्गुणों के विकास की ओर मैंने अधिक से अधिक ध्यान दिया। मुझे ज्ञात हुआ कि जीवन को महान् बनाने के लिए अधिक धन, रूप, बल, यश अथवा सम्पत्ति की आवश्यकता नहीं है। दूसरे लोग महान् कहने लगे तभी मनुष्य महान् हो सकता है ऐसा भी नहीं है। ऐसे बहुत से लोग हैं जो दूसरों की दृष्टि में महान् गिने जाते हैं परन्तु उनमें वास्तविक महान्ता का एक कण भी नहीं होता इसके विपरीत कितने लोग सच्चे अर्थ में महान् होते भी ख्याति नहीं पाते अस्तु ख्याति महानता का मापदण्ड नहीं है। अधिक विद्वत्ता या ज्ञान भी मनुष्य को महान् नहीं बना सकता। महान् बनने के लिए मुख्य बात तो यह है कि मनुष्य को सदाचारी बनना चाहिये, विचार, वाणी और कर्म में एक होना चाहिये। अथवा इन सब भावों को एक शब्द में समावेश करना हो तो कह सकते हैं कि इसे वास्तविक रूप में “मानव” बनना चाहिये। इसी के साथ-साथ अपने और दूसरों के हित के लिए परिश्रम करना चाहिये। मन और इन्द्रियों का संयम करके उसे परमात्मा या पूर्णता की प्राप्ति के लिए प्रयास करना चाहिये। तभी उसे सच्चे अर्थ में महान् की मान्यता के योग्य समझा जायगा। ऐसा मनुष्य लोगों में प्रसिद्ध हो यह आवश्यक नहीं है। लोक कीर्ति या ख्याति के लिए दूर रहकर अपना जीवन बिता रहा हो, अथवा किसी

समय समाज में प्रतिष्ठा या यश की प्राप्ति भी कर चुका हो साक्षर हो अथवा निरक्षर किन्तु प्रत्येक दशा में उसे विवेक शक्ति से पूर्णतया सम्पन्न होना चाहिये उसमें बाह्य रूप का महत्व न होना चाहिये । धन को वह जीवन का प्रधान अङ्ग न मानता हो और केवल आवश्यकता-नुसार ही उसका महत्व हो । जीवन का प्रधान बल, आत्मबल या ईश्वर समझता हो ऐसे ही पुरुष को महान् या महात्मा कहा जा सकता है इस प्रकार के लोकोत्तर पुरुष की संक्षिप्त रूपरेखा ऐसी ही होगी । इस सम्बन्ध में मुझे कोई भ्रम या संशय न था । मैंने किशोरावस्था से ही इन विचारों को साकार या सफल बनाने का प्रयास प्रारम्भ कर दिया । मेरी छोटी अवस्था को देखते हुये महान् जीवन का वह विचार बड़ा अवश्य था परन्तु स्पष्ट समझने के लिए मुझे, बुद्ध, रामकृष्णदेव, दयानन्द और विवेकानन्द जैसे महापुरुषों के जीवन चरित्रों एवं गीता आदि ग्रन्थों से पूरी सहायता मिली, जिससे मेरा काम बहुत सरल हो गया ।

मैंने अपने जीवन की शुद्धि के लिए व्यक्तिगत प्रयास के साथ-साथ ईश्वर रूपी मां की प्रार्थना करना प्रारम्भ कर दिया । उन दिनों एक दूसरा स्मरणीय स्वप्न हुआ । स्वप्न अत्यन्त सुन्दर एवं सुखद था । मैंने आकाश में सुफेद रुई के ढेर के सदृश बादलों पर इन्द्र धनुष देखा उस पर जगदम्बा माता सरस्वती विराजमान थीं—दूध के समान श्वेत वस्त्र पहिने थीं । उनका स्वरूप अत्यन्त सुन्दर एवं गौर वर्ण का था । लम्बे लम्बे बिखरे केश मुखाकृति के दोनों ओर शोभायमान थे और कटि पर्यन्त्र लटक रहे थे । उनके हाँथ में वीणा थी जिसके तारों पर उनकी किसलय से कोमल पतली उंगलियाँ फिरती हुई दिखाई पड़ती थीं । उनके नेत्र एवं मुखारविन्द के भाव कितने अनुपम थे उसका वर्णन करने में बड़े से बड़ा कवि भी असमर्थ होगा । मैं तो इतना ही कह सकता हूँ कि उनके श्रीमुख से अपार शान्ति व मधुरता प्रस्फुटित होती

थी उनके दोनों पार्श्व में दो-दो दासिया खड़ी थी। कोई व्यजन डुला रही थी, तो कोई प्रणाम कर रही थी—स्वप्न का वह दृश्य इतना अधिक स्पष्ट था कि वर्णन करना कठिन है—अंतरिक्ष में होते हुये पास ही दृष्टिगोचर में आया हुआ माँ का वह स्वरूप आज भी स्मृति-पट पर ज्यों का त्यों स्थित है। यह स्वप्न “वीणापाणि” सरस्वती जी का था ऐसा ही सामान्य रीति से कहा जा सकेगा, कारण, “वीणा-पुस्तक धारिणीम्” सरस्वती जी की कल्पना के अनुकूल हो जाता है और उस प्रसिद्ध श्लोक में वर्णन के अनुसार वह स्वरूप “कुन्द-इन्दु” और तुषार हार जैसे धवल स्वच्छ श्वेत वस्त्रों से युक्त था।

मेरे लिए तो वह माँ का दर्शन था। जिस माँ को मिलने के लिए मेरा हृदय रो रहा था और जिसके दर्शन के लिए अतीव उत्कण्ठा थी उसी माँ ने अपने सुन्दर स्वरूप को स्वप्न में मेरे पास इस प्रकार प्रगट किया ऐसा मैंने निश्चय कर लिया। मेरी यह मान्यता ठीक नहीं है ऐसा कौन कह सकेगा? शास्त्रकारों ने साधना की सरलता के लिए भिन्न-भिन्न रुचि या प्रकृति का विचार करके ही महाकाली, महालक्ष्मी, और महासरस्वती इन तीन शक्ति स्वरूपों का वर्णन किया है। ये तीनों स्वरूप बाहर से भिन्न दिखाई देते हुए भी अन्दर से एक हैं एक ही जगदम्बा के तीन स्वरूप हैं, इस बात को कौन न स्वीकार करेगा? उसके द्वारा माँ की महिमा की अभिव्यक्ति नहीं हो रही, ऐसा कहने के लिए कौन विचारशील और अनुभवी पुरुष तैयार होगा? अपने ऋणिगण तो कह गये हैं कि सत्यरूपी परमात्मा केवल एक, इस संसार में विराजमान है। दूसरे भिन्न-भिन्न नाम उन्हीं के हैं “एकम् सद्विप्रा बहुधा वदन्ति” अतएव केवल पुरुष रूप ही नहीं स्त्री और पुरुष के सभी रूप उसी परमात्मा के हैं। सब में तत्त्व रूप से वही विद्यमान है, भेदभाव को दूर कर अभेदभाव की यह प्राप्ति मनुष्य को करनी है। अनेकता से एकता में उसे प्रवेश करना है। ईश्वर की कृपा से मुझे जीवन के प्रारम्भिक वर्षों में ही ऐसा प्रतीत होता था

कि जड़ और चेतन के भिन्न-भिन्न रूपों में वह ईश्वर रूपी माँ ही विलस रही है अवएव उसी माँ ने कृपा कर मुझे स्वप्न में अपना स्वरूप दिखाया है यही मेरा दृढ़ निश्चय था ।

माँ का वह अलौकिक दर्शन लगभग २० मिनट तक रहा उसको शब्दों में सनातन बनाने के लिए उस समय एक छोटी सी कविता भी लिखी थी शब्दों में शाश्वत को व्यक्त करने की कहाँ तक शक्ति है यह तो कवि कलाकार ही कह सकते हैं परन्तु जहाँ साक्षरों की शक्ति नहीं पहुँचती वहाँ मेरी स्मृति में वह अंकित तो है ही ।

माँ के स्वप्न दर्शन से मुझे अतीव आनन्द मिला साथ ही साथ यह विचार भी आया कि माँ का स्वरूप अत्यधिक सुन्दर है समस्त संसार की सुन्दरता के साथ भी इनकी सुन्दरता की तुलना नहीं की जा सकती संसार की स्त्रियों में सुन्दरता दिखाई अवश्य देती है परन्तु वह तो माँ की सुन्दरता के सहस्रांश के कण बराबर भी नहीं है संसार में दृष्टि-गोचर सभी सुन्दरता नाशवान् है । शरीर व्याधि, वृद्धावस्था एवं मरण की शरण में जाता है अस्तु उसमें सुन्दरता शाश्वत किस प्रकार हो सकती है । मानव शरीर में प्रगट होने वाले यौवन और उसका सौंदर्य आकाश में क्षण भर के लिए चमक कर अदृश्य हो जाने वाली चपला की तरह चंचल है । उसका मोह एवं गर्व व्यर्थ है । उसकी प्रीति भी मिथ्या है । कोई भी विवेकी पुरुष सुन्दरता के सदन ईश्वर रूपी माँ का ऐसा सनातन व सुखमय स्वरूप को छोड़कर संसार के साधारण स्वरूप में आसक्त होने को शायद ही पसन्द करे । दूसरे जैसा चाहें वैसा करें परन्तु मुझे तो माँ के इस स्वरूप में ही मन को लगाना चाहिये और उसका साक्षात्कार करने का प्रयास करना चाहिये । माँ का ऐसा सुन्दर स्वरूप खुली आँखों द्वारा प्रत्यक्ष देखने को यदि प्राप्त हो जाय तो कितना आनन्द हो ? जीवन तभी सफल एवं धन्य हो सकेगा ।

इस प्रकार माँ को साक्षात्कार करने की इच्छा माँ के स्वप्न-दर्शन से अत्यधिक प्रबल हो उठी। मुझे ऐसा प्रतीत हुआ कि माँ की मेरे ऊपर अनुकम्पा है और फलस्वरूप एक न एक दिन मुझे माँ का साक्षात् दर्शन अवश्य होगा।

• • •

भगवान बुद्ध का साक्षात् दर्शन

ध्यान किस प्रकार किया जाता है इसका मुझे कुछ आभास न था । समाधि का ज्ञान भी मुझे वास्तविक रूप में न था, केवल उसकी एक कल्पना मात्र थी । एकान्त में आँख बन्द कर बैठना और मन को निर्विचार कर देने को मैं ध्यान मानता था । ऐसा ध्यान मुझे अच्छा लगता था और उसका अभ्यास प्रातःकाल तथा रात्रि में करने का नियम बना लिया था । ऐसा करते-करते शरीर का भान न रहेगा, मन पूर्ण रूप से एकाग्र होकर अपने मूल स्वरूप परमात्मा में मिल जायगा तब समाधि की सिद्धि होगी, ऐसा मेरा विचार था । इसी सिद्धि के लिए मैं प्रयास करता था परन्तु उसकी प्राप्ति का कार्य कुछ कठिन अवश्य था । बड़े बड़े साधकों एवं जानियों के लिए भी वह कठिन है, मैं तो एक साधारण अनभिज्ञ बालक ही था । मुझ में ज्ञान व साधना शक्ति लेश मात्र भी न थी फिर मेरे लिए वह काम सरल कैसे हो सकता था ? इतना होने पर भी मेरा प्रयास चलता रहा मुझे विश्वास था कि माँ की कृपा से एक न एक दिन यह प्रयास सफल अवश्य होगा और मुझे समाधि का अपूर्व आनन्द प्राप्त हो जायगा । विश्वास की इस शक्ति की सहायता से मेरा प्रयत्न उत्तरोत्तर आगे बढ़ता रहा ।

उन दिनों जब ग्रीष्मकालीन अवकाश होता था तब मैं बड़ौदा और सरोड़ा में रहा करता था । सरोड़ा का ग्रामीण जीवन मुझे अत्यन्त

प्रिय लगता था। सरोड़ा में रहने के समय सावरमती नदी में प्रातः काल स्नान करने का मैंने नियम बना लिया था, तदुपरान्त गांव से थोड़ी दूर एकान्त में स्थित सिद्धेश्वरी माता के मन्दिर में बैठ कर प्रार्थना और ध्यान करता था। बड़ौदा में भी मैंने सायंकाल के समय राजमहल रोड की ओर घूमने जाने की आदत डाली थी।

मुझे बम्बई की एक संस्था का प्रवेश-पत्र मिला। माता जी उस समय बड़ौदा में रसोई करने रह गयीं। उनके भ्राता 'रमण भाई' के बड़ौदा में अनेकों परिचित व्यक्ति थे अस्तु एक प्रतिष्ठित और अच्छे कुटुम्ब में रसोई का कार्य सुगमता पूर्वक प्राप्त हो गया। तारा वहिन की उस समय अवस्था बहुत कम थी अतएव वे भी माता जी के साथ ही रहती थीं। छुट्टियों में मैं बड़ौदा जाया करता था इस प्रकार सबसे भेंट हो जाया करती थी।

एक बार इसी प्रकार अवकाश मिलने पर मैं बड़ौदा गया हुआ था। उस समय मेरी अवस्था लगभग १६ वर्ष की होगी। रमण भाई बड़ौदा की लोहाणा बोर्डिंग के मकान में रहते थे। मैं भी उनके साथ ठहरा, उस मकान में एक छोटा सा कमरा था वहाँ बैठ कर मैं कोई अच्छी पुस्तक पढ़ा करता था। सायंकाल को एकाध घन्टा ध्यान भी करता था।

सूर्यास्त होते-होते थोड़ी ही देर में उस कमरे में अँधेरा हो जाता था जो मुझे अत्यन्त आनन्ददायक प्रतीत होता था। एकान्त अँधेरे में ध्यान लगा कर घन्टों बैठे रहने का अभ्यास मेरा पहले से ही था।

एक दिन सायंकाल के समय कमरे की छोटी सी खिड़की के पास, जहाँ से बाहर का खुला हुआ आकाश दिखाई देता था, संध्या के सुमधुर रङ्गों का दर्शन करता हुआ बड़ी देर तक खड़ा रहा। संध्या होने लगी, मेरा ऐसा विचार हुआ कि अब ध्यान में बैठना

चाहिए। ध्यान का विचार अत्यन्त आनन्ददायक था और वातावरण की अनुकूलता भी थी अस्तु तुरन्त मैं ध्यान में बैठ गया। उस दिन न जाने क्यों मुझे ध्यान में बड़ी शान्ति मिली लगभग एक घण्टा समय बीत गया और ध्यान का कार्यक्रम पूरा हो गया। आँख खोल कर वहीं पर मैंने थोड़ी देर प्रार्थना करने का विचार किया परन्तु आँख खोलते ही मेरे आश्चर्य का कोई ठिकाना न रहा जिसे कभी भी देखा न था एवं जिसकी कभी कल्पना भी न थी, ऐसा एक दृश्य मेरे सामने उपस्थित हुआ। कदाचित् मेरे मन का भ्रम अथवा मेरी आँखों की दुर्बलता ही उस दृश्य का कारण तो नहीं है इस प्रकार का विचार आते ही मैंने अपने ध्यानावस्था के अर्धोन्मीलित नेत्रों को हाथों से मला और एक बार वन्द करके फिर से खोलकर देखने लगा परन्तु दृश्य पूर्ववत् अचल रहा, मेरे सम्मुख लगभग दो फुट की दूरी पर सब जगह प्रकाश फैला हुआ था और उसके मध्य में ठीक मेरे सामने एक महापुरुष की आकृति थी। वे महापुरुष आँखें बन्द किये हुये सनातन शान्ति की मूर्ति बन कर बैठे हुये थे, पीले वस्त्र पहिने हुये थे, उनके मुख पर मधुरता व निश्चलता थी। वे परम तेजस्वी और सुवर्ण के समान दीप्ति वाले थे, उनके सिर पर कोमल काले बाल थे जो किसी प्राचीन ऋषिवर द्वारा बाँधे गये प्रतीत होते थे।

ऐसी अपार शोभा का वह साकार स्वरूप था कि उसका वर्णन करना अत्यन्त कठिन है। वे महापुरुष मेरे अत्यन्त निकट विराजमान थे। मुझे उनके पहिचानने में देर न लगी। उनके चित्र मैंने देखे थे जिनके साथ उनकी आकृति पूर्णतया मिलती थी इसलिए मुझे निश्चय करने में देर न लगी कि वे महापुरुष दूसरे कोई नहीं स्वयम् भगवान् बुद्ध ही हैं। प्रभु के महान् प्रतिनिधि, अवतार, प्रेम व त्याग की मूर्ति और अहिंसा के उपदेशक भगवान् बुद्ध ही कृपाकर मेरे सम्मुख प्रगट हैं। और मुझे उनके दर्शन का दुर्लभ सौभाग्य प्राप्त हुआ है इस सम्बन्ध में मुझे लेश मात्र भी सन्देह न रहा। रामकृष्णदेव जैसे महापुरुषों के

जीवन में ऐसे दर्शनों का प्रसङ्ग मैंने पढ़ा था। साधकों के जीवन में महापुरुषों, देवताओं और अवतारों के दर्शन के ऐसे ही प्रसंग आते हैं। भगवान् बुद्ध का जीवन चरित्र मैंने पढ़ा था वह मुझे अत्यन्त प्रिय लगा, तदनुसार उसी के फलस्वरूप उन्हीं की तरह आत्मोन्नति करने की विचारधारा के कारण क्या भगवान् बुद्ध मुझे आशीर्वाद देने आये हैं ? मेरे सुपुष्ट संस्कारों को जाग्रत करने और मेरे साथ के अपने पुराने सम्बन्ध फिर से स्थापित करने के लिए क्या उन्होंने यह उत्तम विधि अपनाई है ? एक अच्छे साधक की तुलना में मेरी योग्यता कुछ भी न थी, ज्ञान, ध्यान, भक्ति और योग के रहस्य से मैं अपरिचित था यूँ कहिये कि नितान्त अनभिज्ञ था फिर भी ईश्वर की कृपा से दर्शन का यह अपूर्व अवसर मुझे प्राप्त हुआ; कृपा का यह रहस्य कौन जान सकता है ? उसका पार कौन पा सकता है ? वे कब किस पर किस प्रकार कृपा करेंगे यह वे ही जानते हैं। बड़े-बड़े ऋषि मुनियों की बुद्धि भी वहाँ भ्रम में पड़ जाती है। मैं तो एक बालक ही हूँ।

जैसी भी हो, परन्तु दर्शन का आनन्द वर्णातीत था। भगवान् बुद्ध की आकृति कितनी प्रेममय एवं अलौकिक थी। उसका ध्यान करते आँखें थकती न थीं और अन्तरात्मा को तृप्ति भी न होती थी। लगभग ५ मिनट तक यही दर्शन स्थिर रहा फिर भगवान् के वक्षस्थल पर मोटे-मोटे श्वेत अक्षर लिखे दिखाई दिये पहिला अक्षर “यु” लिख गया फिर वह अदृश्य हो गया तदुपरान्त “गा” बन गया और वह भी अदृश्य हो गया इस प्रकार क्रमानुसार ५ अक्षर “युगा व तार” शुद्ध गुजराती लिपि में बनते और बिगड़ते गये। इस क्रिया का वास्तविक मर्म मेरी समझ में न आया। उसके बाद भगवान् बुद्ध के स्वरूप का सहज दर्शन हुआ और फिर अधिक दर्शन हुआ तदुपरान्त सारा दृश्य आकाश में विलीन हो गया। दर्शन का ऐसा प्रसंग मेरे लिए प्रथम ही था। उससे मेरा उत्साह और अधिक बढ़ गया। साधक के जीवन में ऐसे अनुभवों से उत्साह बढ़े और श्रद्धा बलवती हो अस्तु ऐसे दर्शन भगवत् कृपा द्वारा

दिये जाते हैं। इससे साधना में मन अधिक लगने लगता है और एकाग्रता बढ़ती जाती है। कितनी बार ईश्वर साधक के जीवन में ऐसे प्रसंग खड़ा कर देता है, फिर भी जिसे इस प्रकार के अनुभव न प्राप्त हो सके हों उनको निराश होने की आवश्यकता नहीं है कारण कि प्रत्येक साधक के अनुभव एक समान नहीं होते, अनुभव की अधिक चिन्ता किये बिना ही साधक को अपने मार्ग में निरन्तर आगे बढ़ते रहना चाहिये।

रामकृष्णदेव ने कहा है कि कितने ही पेड़ों में पहिले फल और फिर फूल आते हैं इसी प्रकार कितने साधकों को पहिले अनुभव हो जाया करते हैं फिर वे साधक साधना में विशेष तत्परता करते हैं मेरे सम्बन्ध मे यही बात पूर्णतया सत्य हुई, नहीं तो किसी भी प्रकार की विशेष साधना के बिना इस प्रकार का अनुभव कहाँ से प्राप्त हो सकता है। आज भी वह अनुभव और भगवान् बुद्ध की वह अलौकिक आकृति वैसी ही याद आती है।

इस घटना के उपरान्त मेरा प्रेम उनके प्रति और भी बढ़ गया अस्तु भगवान् बुद्ध के प्रति जिसके हृदय में प्रेम हो और जिसकी अन्तरात्मा उनके दर्शनों को आकुल हो वे कभी भी उनके दर्शन कर सकते हैं, ऐसा मेरा विश्वास है। आजकल भी जो चाहे उनका साक्षात्कार कर सकता है। मैं अपने अनुभव के आधार पर यह बात कह रहा हूँ। मुझ में उस समय विशेष प्रेम भाव न होते हुये भी, उन्होंने मुझे दर्शन दिया फिर जो उनके प्रेम में रंग जाय और उनकी याद में उन्मत्त बना रहे उसे तो वे अवश्य दर्शन देंगे ही यह निश्चय है।

भगवान् बुद्ध के आदेशों को मानने वाले एवं बुद्ध धर्म को पालन करने वाले संसार के समस्त प्राणियों को मेरे द्वारा हुआ भगवान् बुद्ध का यह संदेश है। इस संदेश को देने वाले भगवान् बुद्ध को मेरा बारंबार

प्रणाम स्वीकृत हो उनका आशीर्वाद समस्त संसार को मिले और युद्ध तथा शोषण से आक्रान्त मानव, शान्ति, समभाव और सदाचार की सुवास से प्रफुल्लित हो, ऐसी मैं कामना करता हूँ।

• • •

सन्तों से समागम

बम्बई में निवास करते समय किसी सन्त पुरुष के दर्शन की इच्छा हुआ करती थी। सन्तों की महिमा कौन नहीं जानता ? सन्तों की महिमा अनन्त है। सन्त संसार के लिए आशीर्वाद रूप हैं। ताप से तप्त लोगों को वे शीतल छाया प्रदान करते हैं और उनको सुख भी देते हैं। मानव जाति पर उनके अनेक उपकार हैं। दानवता को दूर कर सच्चे अर्थ में मानव बनने का और अन्त में परमात्मा से मिलने का मार्ग वे जन साधारण को बताते रहते हैं। उनकी छत्र छाया में रह कर प्राणी बन्धन से मुक्त हो जाता है, अपनी सुषुप्त शक्तियों को जाग्रत कर शान्ति प्राप्त करता है। उनका समागम सर्वदा मंगलमय एवं सुखकारी होता है। विद्वान् मनष्य कहते हैं कि उनका मिलना कठिन है। संतों का संग तो दुर्लभ है ही, उनके दर्शन भी कम दुर्लभ नहीं — बम्बई जैसे शहर में तो अत्यन्त ही अप्राप्त हैं। ईश्वर की कृपा हो तभी सन्त समागम हो सकता है। इसका अभिप्राय यह नहीं है कि वास्तविक संत किसी पर्वत की गुफा में अथवा किसी निर्जन स्थान में नदी के तट पर ही रहा करते हैं। ऐसा न समझना चाहिये कि वे केवल गांवों में भिक्षा हेतु विचरण करने जाते हैं और बम्बई ऐसे शहरों में जाने से डरते हैं। भगवत् इच्छानुसार वे जहां चाहें आ जा सकते हैं। शहर एवं ग्रामीण जीवन के भेद-भाव को वे अपने मन में लाते ही नहीं। उनका दर्शन जैसे एकान्त नदी

तट के प्रदेशों में, तीर्थों में और निर्जन पर्वतमालाओं में होता है उसी प्रकार कभी-कभी बड़े नगरों के राजसी एवं कोलाहल पूर्ण वातावरण में भी हो सकता है। इतना ही नहीं नगरों में उनका जन्म भी होता है जहाँ वे अपना जीवन यापन करते हुए काम भी किया करते हैं। नागरिक जीवन का आधार लेकर वे अपनी आत्मोन्नति की रूपरेखा बनाते हैं और परमार्थ पथ पर अग्रसर होते हैं। ईश्वर की यदि कृपा हो तो ऐसे आदर्श और सच्चे संतों के दर्शन का लाभ नगरों में भी प्राप्त हो जाता है उनके समागम से अन्तर में शान्ति और आनन्द अनुभव होता है। इतने पर भी यह बात अस्वीकार नहीं की जा सकती कि संत महात्माओं के दर्शन वास्तव में दुर्लभ ही हैं।

पुस्तकों द्वारा संतों का कुछ परोक्ष समागम मुझे प्राप्त हो चुका था परन्तु प्रत्यक्ष समागम की अभिलाषा कभी-कभी हुआ करती थी। उनके साथ वार्तालाप करने को जी चाहता था। संत के वास्तविक स्वरूप को समझने की शक्ति उस समय मुझमें बिल्कुल न थी। उनको परखने की कला भी मुझमें न थी अतएव उस समय जिन दो तीन संतों के समागम का लाभ प्राप्त हुआ वे किस कोटि के थे यह वर्णन करने में मैं अपने को असमर्थ पाता हूँ। प्रचलित संत की परिभाषा के अन्तरगत उनकी महानता अस्वीकृत नहीं की जा सकती अस्तु थोड़ा सा उल्लेख उनके प्रति यहाँ अवश्य करूँगा।

एक सन्यासी महात्मा

बम्बई में जब मैं कालिज के प्रथम वर्ष में पढ़ता था उन दिनों एक सन्यासी महात्मा प्रति दिन चौपाटी पर घूमने जाता करते थे, और वहीं रेती पर प्रायः एक घन्टा शीर्षासन किया करते थे उनका वर्ण गौर और मुख तेजस्वी था—अवस्था लगभग ४०-४५ वर्ष की होगी। मैं उनके शीर्षासन को बड़े चाव से देखा करता था। नवीनता होने से

जन समुदाय एकत्र हो जाता था। महात्मा जी के मुख से सुन्दर एवं सात्विक भाव प्रस्फुटित होते थे, मुझे उनके दर्शन से बड़ा आनन्द प्राप्त होता था। मेरा प्रति दिन का नियमित कार्यक्रम देख कर वे मुझसे स्नेह करने लगे और यह जानकर कि मैंने योगाश्रम में रहकर कुछ आसन सीखे हैं जिनको मैं नियमित रूप से अभ्यास भी करता हूँ वे बड़े प्रसन्न हुए। कभी-कभी वे प्राणायाम करते हुए दिखाई पड़ते थे। प्रातः काल वे गार्डन पर घूमने जाते थे। कभी-किसी बगीचे में वृक्ष की छाया में सोते हुए पाए जाते थे। मैं उनको बारम्बार देखता था। उनके लक्षण अच्छे थे और उनका स्वभाव शान्त था इस कारण उनके समीप बैठना मुझे प्रिय था। सायंकाल मैं “नरीमान प्वाइन्ट” की दिशा में समुद्र के बाँध पर बैठता और वहीं सूर्यास्त होने के उपरान्त ध्यान भी करता था। महात्मा जी घूमते हुए कभी-कभी उधर से भी निकल जाते थे एक बार उन्होंने अपनी उपस्थिति की मुझे सूचना भी दी। ध्यान से जागृत हो कर वहीं पर जब मैं सागर की तुमुल तरंगों की प्राकृतिक छटा का अवलोकन कर रहा था तो वे मेरे समीप आए और कहने लगे “आप ध्यान करते हैं,” “बड़ा सुन्दर है परन्तु इस प्रकार यहाँ बाँध पर बैठकर ध्यान करना उचित नहीं। ध्यान करते-करते यदि झोंका आजाय और आप जल में गिर जाय तो आप की दशा कैसी भयंकर हो जायगी, कभी इस बात की भी कल्पना किया है?” “यदि इस प्रकार बैठ कर और इस स्थान पर आप ध्यान न करें तो उत्तम होगा।” उनकी बातों की अवहेलना नहीं की जा सकती थी। उनकी शंका सत्य थी। उस सावधानी का स्वर उनके प्रगाढ़ अनुभव का प्रतीक था परन्तु मुझे ऐसा प्रतीत हुआ कि इस प्रकार भयभीत होकर ध्यान का कार्यक्रम बन्द कर देने की कोई आवश्यकता नहीं, ध्यान में बैठने का अभ्यास मेरा नया न था प्रायः चार वर्षों से मैं ध्यान करने का अभ्यस्थ था अस्तु झोंका आने की सम्भावना न थी। मैंने कहा कि ध्यान की प्रारम्भिक अवस्था में आप के कथनानुसार इस प्रकार का भय अवश्य है और अपने अभ्यास का

स्वल्प विवरण देते हुए मैंने कहा आप चिन्ता न करें ईश्वर मेरी देख रेख करता है मुझे भयभीत होने की कोई आवश्यकता नहीं है ।

मुझसे ऐसा उत्तर प्राप्त कर उनको अपार आनन्द हुआ । उन्होंने मुझे सावधान रहने का आग्रह किया अस्तु उसे मैंने सादर स्वीकार कर आभार प्रकट किया, सतर्क रहना प्रत्येक परिस्थिति में लाभदायक होता है इसमें कोई सन्देह नहीं ।

ये महापुरुष बम्बई में ही अधिक समय से निवास कर रहे थे अन्तिम बार के उनके साथ वार्तालाप करने के अवसर का स्मरण करते हुये एक छोटा सा प्रसंग स्मृति पटल पर आजाया करता है । कालिज की वार्षिक परीक्षाएँ हो रहीं थीं मेरा उस दिन इतिहास का प्रश्न पत्र था; परीक्षा समाप्त कर मैं चौपाटी घूमने गया महात्मा जी उधर खड़े थे । उन्होंने मुझ से परीक्षा के सम्बन्ध में पूछा और उसी दिन के इतिहास के प्रश्न पत्र को लेकर प्रत्येक प्रश्न को समझाने लगे और पूछते जाते थे क्या मैंने भी उसी प्रकार लिखा है ? अन्त में बहुत वार्तालाप के उपरान्त हम लोगों ने विदा ली । तदुपरान्त आज तक भी उनका दर्शन न हो सका उनके प्रति सम्मान की भावना उसी प्रकार आज भी विद्यमान है — उनकी स्मृति आते ही हृदय आवेश में आकर बोल उठता है कि भारतवर्ष में त्याग एवं सेवा की परम्परा को टिकाये रखने वाले और शास्त्रीय ज्ञान के साथ भारतीय संस्कृति के स्वरूप की रक्षा करने वाले अच्छे व शिक्षित संत आज भी प्राप्त हैं । आत्मोन्नति में कदाचित् वे परिपक्व न हों फिर भी जिस स्वरूप में वे हैं वे अमूल्य हैं । उनकी उपयोगिता अस्वीकार नहीं की जा सकती । अस्तु यह कि अधिकांश संत एवं त्यागी पुरुष अच्छे नहीं होते ऐसी धारणा अथवा ऐसे विचारों को सर्व साधारण में प्रगट करना नितान्त अनुचित है ।

२- प्रवासी महापुरुष का सम्पर्क

एक अन्य सन्त पुरुष के दर्शन का सौभाग्य मुझे हैगिंज़ गार्डन में

प्राप्त हुआ था । जिस वेन्च पर प्रति दिन निमम पूर्वक मैं बैठा करता था एक दिन वे उसी स्थान पर बैठे थे । श्वेत परिधान एवं पञ्च केशीय जटाजूट युक्त उनकी मुखाकृति शान्तिमय थी । उनके पास काका कालेलकर का “ब्रह्मदेश का प्रवाश” नाम की पुस्तक हाथ में थी । बम्बई में वे अपने किसी परिचित भक्त के यहाँ ठहरे थे । उन्होंने सम्पूर्ण भारत का परिभ्रमण किया था, अभी हाल में ही वे ब्रह्मदेश होकर बम्बई पधारे थे । वे सुशिक्षित जान पड़ते थे और स्वाध्याय में उनकी विशेष रुचि है ऐसा आभास होता था । मेरी जिज्ञासा के उत्तर में उन्होंने प्रसिद्ध स्थानों का अपना अनुभव बताया । मुझे उनके वार्तालाप में आनन्द प्राप्त हुआ । उनका विचार आगे रामेश्वरम् जाने का था । उनको देखकर उसी प्रकार जीवन यापन करने का अभिलाषा उत्पन्न हो उठी, कितना सरस जीवन है ! न किसी से राग न किसी से द्वेष ! अहंकार ममता या तृष्णा लेश मात्र को भी न थी, ईश्वर के अतिरिक्त अन्य किसी की चिन्ता इनको न थी अस्तु न कोई बन्धन था न किसी की दासता । बहते हुये प्रवाह की तरह जहाँ जी चाहा वहाँ गये, कितना स्वतन्त्र एवं स्वाभिमानी जीवन था ! मनुष्य तो स्वयं पराधीन बन गया, ऐसी पराधीनता में क्या आनन्द प्राप्त हो सकता है ? कदापि नहीं । फिर भी मनुष्य अपने को सुखी मानता है और पराधीनता दूर करने का कोई प्रयास भी नहीं करता, कितना आश्चर्य है । मुझे कुछ शंका अवश्य हुई, फल-स्वरूप मैंने सन्त महात्मा से पूछा “क्या प्रवासी जीवन में ध्यान इत्यादिक आत्मोन्नति के साधन हो सकते हैं ? साधना विहीन केवल परिभ्रमण किसी विवेकी पुरुष को रुचिकर न होगा ।” उन्होंने शान्त स्वर में उत्तर दिया “अवश्यमेव” प्रवास के अन्तरगत समय बचा कर साधना नियमित रूप से की जा सकती है । जिसको साधना में आनन्द आता है वह किसी न किसी प्रकार से समय निकाल कर अपना कार्यक्रम पूरा करेगा । जिसे साधना में रस नहीं वह चाहे एक दिन भी भ्रमण न करे और एक ही स्थान पर सदैव रहे फिर भी साधना न

करेगा । मर्यादित प्रवास से साधना में कोई विघ्न नहीं पड़ता यह प्रश्न तो प्रत्येक की व्यक्तिगत रुचि की अनुकूलता का है ।”

मैंने कुछ साहस पूर्वक प्रश्न किया—“आप साधना करते हैं ?” उत्तर मिला “अवश्य” । मैंने फिर प्रश्न किया “तब तो आपको निर्विकल्प समाधि की अवस्था की अनुभूति हो चुकी होगी । शान्ति पूर्वक प्रत्युत्तर देते हुये उन्होंने कहा “नहीं, अभी उस अवस्था तक मैं नहीं पहुंचा हूँ परन्तु प्रयास अवश्य करता हूँ अतएव आशा है थोड़े समय में अवश्य पहुंच जाऊँगा । ध्यान में मुझे बहुत अच्छे अनुभव हुआ करते हैं ।”

उनके वार्तालाप में मुझे बड़ा आनन्द प्राप्त हुआ और यह संतोष हुआ कि वे एक अनुभव सम्पन्न महापुरुष हैं । उनकी नम्रता और निराडम्बरता से मैं बड़ा प्रभावित हुआ । उन्होंने मुझे ध्यान करते रहने की सम्मति दी और कहा—“यह मार्ग विकट है लम्बा भी है” उसमें धीरता पूर्वक पुष्पार्थ करने की आवश्यकता है सत्यता की शंका करने की नहीं । जिसे ईश्वर में विश्वास एवं साधना से प्रेम है उसे एक दिन सफलता अवश्य प्राप्त होगी ।

उनके प्रत्येक शब्दबुद्धिमत्तापूर्ण थे । उसमें शंका का कोई स्थान ही न था । कुछ दूर तक आगे जाकर हम लोग बिदा हुए । अब वे हैं या नहीं ? यदि हैं तो आज कहाँ है ? यह मैं कुछ भी नहीं जानता हूँ । हाँ इतना अवश्य कह सकता हूँ कि यदि उनका पुरुषार्थ पूर्ववत् चलता रहा होगा तो आज उनकी स्थिति बड़ी ही विलक्षण होगी इसमें कोई संदेह नहीं है ।

गाँधी जी का दर्शन

कालिज के प्रथम वर्ष में मुझे महात्मा गाँधी के दर्शनों का सौभाग्य प्राप्त हुआ था। उस समय महात्मा जी बिड़ला भवन में ठहरे थे। जी. टी. छात्रावास से दो तीन भाई उनके दर्शन करने जा रहे थे। मैं भी उनके साथ तैयार हो गया। जब हम लोग गाँधी जी के निवास स्थान पर पहुँचे तो उस समय गाँधी जी की सायंकाल की प्रार्थना का समय हो गया था। गाँधी जी बाहर के मैदान में घास पर बैठे थे। उनके निकट और भी अनेकों व्यक्ति उपस्थित थे। वातावरण बिल्कुल शान्त था। गाँधी जी श्वेत वस्त्र पहिने शान्त मुद्रा में विराजमान थे नेत्र नीचे झुके थे, मुख तेज एवं प्रसन्नता युक्त था। उनका दर्शन कर मुझे बड़ा आनन्द हुआ, होता क्यों न ?

भारतवर्ष की स्वतंत्रता के लिए वे परिश्रम करते थे, देश की असंख्य जनता को सुखी बनाने के निमित्त उन्होंने जीवन की होड़ लगा दी थी। उनका प्रभाव हमारे इस देश में ही सीमित न था। उनके उन्नति-बर्धक, एवं प्रेरणा प्रदायक शब्दों की गूँज विदेशों में भी पहुँचती थी और वहाँ भी उनके प्रशंसकों एवं भक्तों की बाहुल्यता थी। प्राचीन ऋषियों का स्मरण दिलाने वाले, संयमी एवं शुद्ध जीवन की मूर्ति, इस देश के महापुरुष, महात्मा गाँधी की गणना विश्व की महान् विभूतियों

में थी। भारत की उन्नति एवं स्वतंत्रता संग्राम में जो कष्ट उन्होंने उठाया और जो परिश्रम किया, उसका हमें गौरव है। मेरी उस समय की अवस्था की तुलना में इस प्रकार की विचारधारा ऊंची अवश्य थी फिर भी इसके द्वारा मेरा प्रेम महात्मा जी के प्रति उत्तरोत्तर बढ़ता ही गया। मैं जिस संस्था में था वहां के कार्यक्रम में मुझे रुकना पड़ता था और महात्मा जी की प्रार्थना सभा का समय प्रातःकाल था अस्तु तब मुझे उनके दर्शन का लाभ प्राप्त न हो सका था। उस दिन अचानक उनके दर्शन हो जाने से मेरी प्रसन्नता की सीमा न रही।

महात्मा गाँधी के दर्शनों का प्रभाव मेरे जीवन पर अत्यधिक पड़ा। एक महान् पुरुष बनने की विचारधारा मेरे मन में प्रथम से ही थी। उसे बढ़ाने और साकार करने का प्रयत्न मैं यथा सम्भव किये जा रहा था। गाँधी जी के दर्शन से उसकी मात्रा को और अधिक पुष्टि मिली। यद्यपि गाँधी जी के साथ वार्तालाप करने का मुझे कोई अवसर न प्राप्त हो सका तथापि उनके दर्शनों का मूल्य मेरे लिए अत्यधिक था। उनके दर्शन से मुझे यह प्रेरणा मिली कि महान् बनकर देशोपकार के कार्य करना चाहिये। भगवत् कृपा से लोकोत्तर शक्ति प्राप्त कर उसके द्वारा समाज का उपकार करना चाहिये। यह भी विचार आया कि स्वतंत्रता संग्राम में यदि मैं गाँधी जी का हाथ बटा सकूँ तो कितना अच्छा हो? मेरे ही द्वारा यदि देश स्वतंत्र हो सके तो कितना अच्छा हो? अभिलाषायें सभी पूर्ण हो सकती हैं यदि ईश्वर की कृपा दृष्टि हो जाय। उसकी कृपा प्राप्त हो जाने पर कोई भी कार्य असम्भव नहीं रहता, अस्तु सर्व प्रथम मुझे ईश्वर का साक्षात्कार करना चाहिये। जिसे ईश्वर का साक्षात्कार हो जाता है उसमें अनन्त शक्ति का प्रादुर्भाव स्वयं हो जाता है और तब निश्चित कार्य सुगमता पूर्वक सम्पन्न हो जाता है। अतएव ईश्वर की कृपा प्राप्त करने का मैंने दृढ़ निश्चय कर लिया, साथ ही साथ हृदय में यह भावना उत्पन्न हुई कि मेरा जन्म देश व विश्व का मंगल करने के हेतु हुआ है। ईश्वर की कृपा प्राप्त कर, बुद्ध,

इशू की तरह शान्ति एवं आत्मोन्नति का मार्ग प्रदर्शित करूँ, यही भगवन् की इच्छा है, और इसी निमित्त उसने मुझे जन्म दिया है। मेरा शरीर समयानुसार इसी प्रकार के कार्य करता रहेगा और अन्ततोगत्वा यही बात प्रमाणित होकर रहेगी, ऐसा मुझे विश्वास हो गया। इन्हीं विचारों में मेरा मन ओतप्रोत होने लगा उनका स्मरण भी न करना पड़ता था। फिर महीनों वर्षों तक मेरा मन इसी विचारधारा की तुल्य तरङ्गों में निमग्न होता रहा और मेरे आगामी जीवन पर उसका बहुत बड़ा प्रभाव पड़ा। बीज रूप में रह कर इन विचारों ने भविष्य में अंकुरित होकर मेरे जीवन को परमार्थ पथ पर अग्रसर करने में बड़ा सहयोग दिया है। देश और विश्व की सेवा का विचार आज भी ज्यों का त्यों विद्यमान है। मुझे अवगत है कि इस संसार में जबसे मैंने श्वास लेना प्रारम्भ किया तब से आज तक मेरा जीवन दूसरों के सहयोग से ही अग्रसर हो रहा है, यूँ कहिये कि बाल्यकाल से ही मेरा सभी भार ईश्वर ने उठा लिया है और वह मेरी रक्षा करता रहा है तो फिर उसको अपना समग्र जीवन समर्पण कर देना मेरा पवित्र स्वधर्म हो जाता है, तदुपरान्त उसकी इच्छानुसार विश्व सेवा परमावश्यक प्रतीत होती है। देश को स्वतन्त्रता प्राप्त हो इसके निमित्त पहिले मैंने बार-बार प्रार्थना किया है, इस समय तो इतना कहना पर्याप्त होगा कि मुझे देश की स्वतन्त्रता अत्यन्त प्रिय थी हिमालय में साधना काल के अन्तरगत भी मैं यही प्रार्थना करता रहा भारत की स्वतन्त्रता के पीछे ईश्वर की इच्छा और योजना काम कर रही है इसका मुझे पूर्ण विश्वास था। मेरा यह शरीर इस योजना का किसी भी रूप से निमित्त बन जाय; यही मेरी अभिलाषा थी। इस सम्बन्ध में इतना कह देना पर्याप्त होगा कि इसी प्रकार की विचारधाराओं के कारण गाँधी जी के प्रति मेरा अधिक आदर भाव था उनके दर्शन से मुझे आनन्द प्राप्त हुआ, मेरे लिए उनका वह दर्शन प्रथम और अन्तिम था आज

भी, स्मृति पटल पर वह मूर्ति पूर्ववत् ज्यों की त्यों अङ्कित है, और सदैव रहे, यह भी परमावश्यक है कारण कि वह प्रेरणा की अपार सामग्री का अक्षय श्रोत है ।

...

बालों से दूध का चमत्कार

साधु वेशधारी एक व्यक्ति से मेरे सम्पर्क का स्मरण कभी-कभी हो जाता है, उसका कुछ उल्लेख करना भी आवश्यक है।

कालिज की परीक्षाएँ हो रही थी, एक दिन प्रश्न-पत्र समाप्त कर जब मैं विल्सन कालिज के फाटक से बाहर निकला तो उसी समय वहाँ पर मैंने एक साधू को खड़ा देखा। उसकी वेशभूषा फकीरों की सी थी। उसने मुझे संकेत देकर अपने पास बुलाया। मैं भी कौतूहलवश उसके पास गया। धूप से बचने के लिये छाता लगाये था जिसे उसने ऊपर उठा कर कालिज भवन की ओर एवं अन्य सभी दिशाओं का भली प्रकार निरीक्षण किया। जब उसे विश्वास हो गया कि अब इधर से किसी के आने की सम्भावना नहीं है तो उसने मुझसे पूँछा जेब में कितने पैसे हैं ?

उसका इस प्रकार का प्रश्न मुझे अत्यन्त विचित्र लगा। इस प्रकार के साधुपुरुषों से यह मेरा पहला ही सम्पर्क था — उसके चेहरे पर सात्विकता के लक्षण न देखकर मुझे आश्चर्य हुआ, परन्तु उसके इस प्रश्न ने तो मुझे चकित ही कर दिया। एक अपरिचित विद्यार्थी से अन्य कोई प्रश्न न कर सीधे उसकी जेब के पैसे की संख्या पूछना विवेकहीनता का पूर्ण परिचय देता है। मैंने विचार किया कि मेरी जेब के

पैसों से इस साधु पुरुष का क्या सम्बन्ध हो सकता है, सम्भव है इस विचार के कारण मेरी मुखाकृति में कुछ परिवर्तन हुआ हो फिर भी वह अपने प्रश्न पर अड़ा रहा और उसने उसका पुनरावर्तन किया। इधर उधर से कोई आता तो नहीं है इसका एक बार पुनः भली प्रकार निरीक्षण कर वह उत्तर की प्रतीक्षा में मेरी ओर जिज्ञासा भरी दृष्टि से देखने लगा। “एक विद्यार्थी के पास कितना पैसा होगा” उसकी इस जिज्ञासा को शान्त करने के लिए मैंने कहा “यह तो पढ़ने का स्थान है पैसा कमाने का नहीं !” हम लोग यहाँ पढ़ने आते हैं आप तो कोई साधु पुरुष मालूम होते हैं ! “आपको मेरी जेब में कितने पैसे हैं इस सम्बन्ध में पूछ ताछ करने का क्या प्रयोजन है ? इसको जान लेने से आपको क्या लाभ होगा अथवा न जानने से क्या हानि होगी ? किसी भी प्रकार के पूर्व परिचय बिना किसी से पैसे का प्रश्न करना बुद्धिमत्ता का परिचय नहीं देता। मुझे आप का प्रश्न नितान्त अनुपयुक्त प्रतीत होता है।”

मेरी बातों से उसे भासित हो गया कि परिस्थिति उसके प्रतिकूल जा रही है। उसे यह आशा थी कि उसके प्रश्न के फलस्वरूप मैं अपनी जेब उसके आगे खोल दूंगा परन्तु वह फलीभूत न हो सकी — हम लोगों की बातचीत के समय में दो चार व्यक्ति पास के “फुट पाथ” से निकल भी गए, हो सकता है और अधिक गए हों परन्तु इस बात की आशंका अवश्य थी। सम्भव है किसी के मन में हम दोनों की वेष भूषा की भिन्नता को देख कर कौतूहल उत्पन्न हो कि ये दोनों इस प्रकार खड़े-खड़े क्या वार्तालाप करते होंगे और तत् पश्चात् शीघ्रता के साथ उस साधू ने मुझे प्रभावित करने के लिए एक दूसरी युक्ति निकाली यह युक्ति नितान्त नूतन एवं प्रभावशाली थी। इसमें एक विद्वान और अनुभवी मनुष्य को भी प्रभावित करने की क्षमता थी साधू ने मुझसे कहा “साधुओं की शक्ति को नहीं जानते परिचय पाने की इच्छा हो तो देखो।”

ऐसा कहकर उसने इधर उधर सशक्त दृष्टि से निगाह डाली कि कोई दूसरा तो नहीं देख रहा है, छाता को ऊँचा किया और अपनी जटाओं की सात आठ लटों को हाँथ से दबाकर निचोड़ने लगा। उसी क्षण उसकी जटाओं से दूध की धार टपकने लगी। यह कौतुक देखकर मुझे आश्चर्य अवश्य हुआ ! इसका अभिप्राय भी मुझे प्रभावित कर मेरी जेब से सारे पैसे निकलवाना था परन्तु मैं सतर्क था और उसकी यह जादू देखकर भी मुझे उसके गुणानुवाद गाने की अभिलाषा न हुई, उसमें और एक मदारी में कोई अन्तर न था। मदारी जैसे बन्दर को नचाकर उसके कौतुक का प्रदर्शन करता है फिर बाद में सबसे पैसे मांगता है उसी प्रकार से इसने भी किया। प्रकार वाजीगरी चौपाटी पर अधिकांश देखने में आती है। तीन या चार मिनट तक जटाओं से दूध टपका कर फिर उस साधू ने हाँथ छि डाला और अपना चाटक नाटक समाप्त कर दिया। उसका ध्यानरी जेब के पैसे की ओर ही था अतएव तुरन्त उसने पैसे की बात से प्रारम्भ कर दी “अब तो कहो कि जेब में कितने पैसे हैं ? जितने सब मुझे दे दो।” यह प्रश्न पहिले से कुछ अधिक था ! पहिले “जेब में कितने पैसे हैं।” यही प्रश्न था परन्तु अब तो कुल संख्या के अतिरिक्त पूरे पैसे की माँग भी सम्मिलित हो गई। उसका बहार मुझे बहुत बड़ा ही विचित्र लगा उसकी करामात से अप्रभावित होकर मैंने दृढ़ता पूर्वक उससे पूछा “पैसे का क्या काम है, मेरे पैसे लेकर आप क्या करेंगे ?” उसने बड़ी शीघ्रता पूर्वक उत्तर “मुझे चाय पीना है बहुत देर न करो जल्दी से पैसे दे दो, न भला करेंगे ! आप खूब विद्या व नाम कमायेंगे और सुखी रहें”

मैंने बिचार किया कि जो व्यक्ति बालों से निकाल सकता है वह भीख क्यों मांगता है ? वह दूध यूँ ही कर पी लिया करे अथवा यदि दूध बेच दिया करे तो क्या दूसरे मांगने की आवश्यकता पड़ सकती है ? दूसरे को प्रभावित लिए वह

ऐसी धूर्तता का आश्रय क्यों लेता है ? साथ ही साथ मैंने यह भी सोचा कि ऐसे विचारों को स्थान देना उचित न होगा और उनका प्रगट करना भी बुद्धिमत्ता नहीं है, अतएव निर्भीकता पूर्वक मैंने उससे कहा "यदि आप मुझसे पहिले से ही कह देते कि मुझे चाय पीना है तो मैं आप को चाय पिला देता अथवा पैसे दे देता परन्तु अपने पैसे निकलवाने के लिए एक नवीन पद्धति का आधार लिया, फिर भी लीजिए मैं आप को चाय पीने के लिए पैसे देता हूँ।"

मेरे दिए हुए दो आने पैसे उसे बहुत कम लगे कारण कि उसने मेरे पास से कोई बड़ी रकम निकलवाने की अभिलाषा की थी अस्तु एक बार फिर उसने जेब के कुल पैसे की संख्या बताने का आग्रह किया। मैंने भी अत्यन्त दृढ़ता पूर्वक उसको उत्तर दिया कि मेरे पास आप को देने के लिए केवल इतना ही है इतने पैसे आप की चाय के लिए पर्याप्त है। जब उसे यह अवगत हो गया कि और अधिक आग्रह व्यर्थ होगा तो उसने मुझसे कहा "अच्छा अब जिधर जाना चाहें सीधे चले जाय लौटकर पीछे मत देखियेगा नहीं तो अच्छा न होगा।" हम दोनों अलग अलग चल दिए। मुझे हैंगिंग गार्डन जाना था अस्तु मैंने उधर का रास्ता पकड़ा।

यह अनुभव मेरे जीवन में अपने ढंग का निराला था। इसके पहिले मैंने साधु पुरुषों को अपने वास्तविक स्वरूप में ही देखा था परन्तु वह साधू बिल्कुल भिन्न था उसका सम्पर्क और वह वार्तालाप बहुत अधिक समय तक मेरे मन में घूमता रहा।

आगामी वर्ष इसी प्रकार का प्रसंग एक और आ गया। प्रातः काल जब मैं बड़ौदा के एक बड़े मार्ग से निकल रहा था और कमाटी बाग के फाटक को पार कर जैसे ही आगे बढ़ा तुरन्त उसी क्षण मेरे पास तीन साधु वेशधारी पुरुष आ पहुँचे। उन्होंने मुझे केम्प के रास्ते में एक

पेड़ के पास रोका। उनमें से एक ने छाते की आड़ में होकर मुझसे कहा—“आपका कपाल खूब चमकता है, आप भाग्यशाली हैं, आप बहुत धन कमायेंगे यश पायेंगे और सुखी रहेंगे, आप का भाग्य बड़ा प्रबल है। आपको इतनी बातें बताई हैं अब आपकी जेब में जितने पैसे हों सब मुझे दे दीजिये। यह कहकर उसने चारों ओर निगाह दौड़ाई और अपने बालों की लम्बी लटे हाँथ में ली। मैंने तुरन्त सब बात समझ ली। मुझे बम्बई वाले साधू का पूरा नाटक स्मरण हो आया अस्तु मैंने दड़ता पूर्वक उससे कहना प्रारम्भ कर दिया, “मैंने आपका विचार समझ लिया है आप हमें अब कोई करामात दिखाने की चेष्टा न कीजिये। मैं आपको एक पैसा भी नहीं दे सकता। आप लोग नाना प्रकार की धूर्तता करके लोगों को फँसाते रहते हैं और उनके धन का अपहरण करते हैं। मैं आप लोगों की बाजीगरी को खूब समझता हूँ आप मुझे धोका नहीं दे सकते, ठहरिए अभी मैं पुलिस को बुलाता हूँ और आपकी करामात का भेद खोलता हूँ” मेरी बात सुनकर उनको बड़ा आश्चर्य हुआ। मेरी ओर से इस प्रकार का निर्भीक प्रत्युत्तर होगा इसकी उनको कल्पना भी न थी। भाग्यवश थोड़ी ही दूर पर एक पुलिस का सिपाही भी खड़ा था। इन परिस्थितियों के कारण उन लोगों का विचार बदल गया, एक दूसरे ने कहा—ठीक है पैसा न दीजिये तो न सही, शान्ति पूर्वक चले जाइये चिल्लाने से क्या प्रयोजन कोई यदि सुनेगा तो क्या कहेगा? इतना कहकर वे लोग तुरन्त चल दिये मैं खड़ा रह गया।

साधु पुरुष के समान भ्रमण करने वाले छद्म वेशधारी पुरुष, जिनका एक मात्र उद्देश्य मनुष्यों को ठगना है आज देश में अनेकों हैं उनकी संख्या बढ़ती जाती है यह निर्विवाद है। नाना प्रकार के कौतुक दिखाकर वे लोगों को ठगते रहते हैं। कुछ लोग धन को दूना कर देने का लालच दिखाकर सारा धन लेकर चम्पत हो जाते हैं। और कुछ नाना प्रकार के चमत्कार दिखाकर ठगा करते हैं। ठग विद्या से ऐसे धूर्त, साधु पुरुष की वेशभूषा धारण किये हुये भोली जनता की अज्ञानता का अनौपचारिक

लाभ उठाते रहते हैं । इनसे सावधान रहने की आवश्यकता है ।

गुजरात के प्रतिष्ठित व्यक्ति का एक लेख कुछ दिन पहिले मुझे पढ़ने को मिला । उनके हाथ पर एक साधू ने दूर से ही ॐ लिख दिया और उन्होंने तुरन्त अत्यन्त प्रभावित होकर उसको २५ रुपये दे दिये । यदि समाज के सुशिक्षित लोगों की ऐसी दशा है तो अबोध जनता को ठगना कितना सरल होगा । इस सम्बन्ध में यह कहना नितान्त आवश्यक है कि जहाँ तक आध्यात्मिकता की अज्ञानता रहेगी वहाँ तक साधुपुरुषों के वेश में ठग विद्या का प्रचार होता रहेगा ।

ऐसे पुरुषों से सर्व साधारण को सावधान रहने की आवश्यकता है उनको साधुपुरुष कहना साधु शब्द और साधु संस्था का अपमान करना है ।

भिक्षु अखण्डानन्द से भेंट

स्वामी अखण्डानन्द जी को लिखे हुए पत्र का उत्तर पाने के लिए मुझे अधिक प्रतीक्षा न करनी पड़ी। सप्ताह पूरा होने के प्रथम ही उत्तर आ गया। स्वामी जी ने पत्र में सूचना दी थी कि वे नड़ियाद जा रहे हैं और उधर स्टेशन के पास सन्यास आश्रम में ठहरेंगे, मैं पत्र पाते ही वहां जाकर उनसे मिलूँ और व्यक्तिगत सभी बातों को वहीं उनसे स्पष्ट कर लूँ। ऐसे सहानुभूति पूर्ण उत्तर को पाकर मुझे बड़ा आनन्द हुआ और आशा हुई कि ईश्वर की कृपा से मेरा काम अवश्य हो जायगा। मुझे इस प्रकार के उत्तर की आशा न थी। मैं समझता था कि स्वामी जी मेरे लेखों को देखकर प्रसन्न होंगे और यदि वे उन लेखों को तुरन्त छाप न सके तो मेरी परिस्थिति का ध्यान रखकर मुझे प्रोत्साहन देने के लिए पुरस्कार अवश्य भेज देंगे। परन्तु उन्होंने तो मुझे अपने पास बुलाया है अवश्य इसमें ईश्वर का कोई गूढ़ संकेत निहित है। स्वामी जी से मिलने का यह पहिला अवसर था ! अस्तु संकोच करने या हिम्मत हारने की कोई आवश्यकता नहीं, उनसे प्रत्यक्ष मिलना अधिक उपयुक्त होगा मेरे व्यक्तिगत जीवन और विचारों को परखने में उनको सुगमता होगी और मेरी सच्ची आध्यात्मिक जागृति देख कर मुझे पर्याप्त सहायता करने की प्रेरणा उनको अवश्य प्राप्त होगी। इन

सब विचारों के कारण मेरा उत्साह बढ़ गया और मैं पत्र पाने के दो घण्टे उपरान्त पहिली ट्रेन से रवाना हो गया ।

नड़ियाद जाने का यह मेरा प्रथम अवसर था, मैं रास्तों से परिचित न था सन्यास आश्रम की खोज करते-करते काफी समय निकल गया अंत में आश्रम पहुंचकर पता लगा कि स्वामीजी आगए हैं और इस समय ऊपर वाले कमरे में काम कर रहे हैं । मैंने अपने पहुंचने की सूचना उनके पास भेज दी, उन्होंने भी तुरंत मझे अपने पास बुला लिया । कमरे में प्रवेश करके मैंने उनको प्रणाम किया, उन्होंने मुझे संकेत किया और तदनुसार मैं उनके पास वाली कुर्सी पर बैठ गया । स्वामी जी एक साधारण कुर्सी पर बैठे हुए भजनों के प्रूफों का निरीक्षण कर रहे थे । उनके पास वाली मेज पर बहुत सी पुस्तकें पड़ी थी और बगल में दो बड़ी मूर्तियां रखी थी । उनका शरीर स्वस्थ दिखाई देता था मुँह व माथा कुछ अधिक लम्बा लगता था । थोड़ी देर तक मैं उनकी ओर देखता रहा मेरे मन में उनके लिए पहिले से ही आदर भाव उत्पन्न हो गया था । उनके प्रकाशित ग्रन्थों में से कई एक धार्मिक ग्रन्थ मैंने देखे थे । “बोरसद के रहने वाले एक लोहाणा गृहस्थ ने बम्बई में गीता खरीदी, गीता का मूल्य उनको अधिक लगा तत् पश्चात् उन्होंने गीता इत्यादि उपयोगी धार्मिक ग्रंथों को सस्ते मूल्य में प्रकाशन करने का संकल्प किया इसी संकल्प के फलस्वरूप स्वामी श्री भिक्षु अखण्डानन्द जी प्रकाश में आए । अपने संकल्प को सत्य करने के निमित्त उन्होंने बड़ा प्रयास किया, उनको अंत में पूर्ण सफलता प्राप्त हुई । संकल्प का बीज लेकर, लोक सेवाहित, अकेले ही उनका प्रयत्न बढ़ता गया और अंत में “सस्ता साहित्य वर्धक” कार्यालय नाम की एक बड़ी संस्था रूपी विशाल सेवा वृक्ष की स्थापना हो गई । उस संस्था के नामानुसार निरन्तर सस्ती पुस्तकों का प्रकाशन होने लगा । पुस्तकें केवल सस्ती ही न थीं वे जीवन की उन्नति के लिए उपयोगी और सुन्दर भी थीं । थोड़े ही समय उपरांत संस्था का एवं उसके संचालक श्री स्वामी जी का नाम प्रकाश में

आगया और जन समुदाय के हृदय में स्थान पा गया । आगे चल कर उसी संस्था से मूल्यवान पुस्तकें भी प्रकाशित होने लगी । संस्था का दृष्टिकोण व्यापारिक न था, निर्लोभ लोकहित सेवा की वृत्ति थी, अस्तु स्वामी जी के प्रति श्रद्धा व भक्ति लोगों में उत्तरोत्तर बढ़ती गयी । इस संस्था ने श्री रामकृष्ण परमहंस, स्वामी विवेकानन्द, स्वामी रामतीर्थ व चैतन्य महाप्रभु के जीवन चरित्रों का एवं ज्ञानेश्वरी, भागवत्, रामायण, योगवसिष्ठ और दासबोध जैसे उत्तम ग्रन्थों का गुजराती भाषा में परिचय कराया । स्वामी जी ने एक प्रकार से, नवीन भगीरथ बनकर, ज्ञान की पवित्र गंगा गुजरात में बहा दी । इतने पर भी उनको अभिमान न था । उनकी सरलता एवं नम्रता उनकी वाणी व व्यवहार से स्पष्ट प्रगट होती थी । गुजरात के वह महान् कर्मयोगी (केवल मात्र कर्मठ) ही न थे । उनका हृदय भक्ति भाव से आल्पावित था । गुजरात के ज्योतिर्धरों में उनका नाम व काम प्रथम पंक्ति में शोभायमान था । इस पर भी अपने गुणानुवाद से वे बहुत दूर रहते थे । अपने लेखों के नीचे हस्ताक्षर के स्थान पर अपना परिचय देने का ढंग उनका बड़ा ही विचित्र एवं नवीन था । इस प्रशंसा प्रिय आधुनिक काल में नाम के आगे ब्रह्मनिष्ठ, महामण्डलेश्वर या ऐसी ही कोई दूसरी उपाधि लगाने के बदले वे अपना परिचय देते हुए लिखते थे “जितना जानता हूं उतना पालन नहीं होता, साथ साथ परोपदेशे पाण्डित्यम् ” भी करता हूं उसी कारण गालियों के योग्य “आपका निन्दनीय भिक्षु अखण्डानन्द” ।

स्वामी जी के दर्शन करने वालों को उनकी नम्रता देखकर विश्वास हो जाता था कि उनको ख्याति से घृणा है, उनके लेख उनके अन्तर के सहज उद्गार थे । ऐसे महापुरुष के पास बैठने का सुअवसर प्रभु की कृपा से मुझे अचानक प्राप्त हुआ अस्तु मेरे आनन्द की सीमा न रही । मैंने विचार किया क्या ये ही महापुरुष भिक्षु अखण्डानन्द जी हैं ? मुझे आशा थी कि मिलते ही वे मेरे लेखों के लिए मेरी आवश्यकतानुसार मुझे सहायता करने का आश्वासन भी देंगे परन्तु वे शान्त चित्त

से अपना काम किए जा रहे थे। मानों वे मुझे पहिचानते ही न थे। विचारों व भावों के झूले पर बैठे-बैठे प्रायः ५ घन्टा समय बीत गया किन्तु नीरवता न भंग हुई वे मौन रहे। उनका कार्यक्रम बड़ी देर तक चलता रहा। अन्त में पुस्तक को बगल में रखकर मेरी ओर वार्तालाप प्रारम्भ कर दिया। उन्होंने कहा आपको इतनी कम अवस्था में वैराग्य कैसे हुआ, हिमालय जाने की इच्छा किस प्रकार उत्पन्न हुई, और किस लिए जाना है ? उनके सभी प्रश्नों का उत्तर मैंने क्रमशः दिया, जिससे वे अत्यन्त प्रभावित हुये। अपने जीवन की आध्यात्मिक भूमिका का परिचय देकर मैंने उनसे कहा कि मेरा वैराग्य सत्य है इसमें कोई पागलपन, मस्तिष्क की दुर्बलता अथवा मूर्खता का समावेश नहीं, यह शुद्ध विकास का परिणाम स्वरूप है। मेरा मन संसार में नहीं लगता है। परमात्मा के साक्षात्कार की लगन लगी है और तदर्थ मेरा मन रोया करता है। मुझे प्रतीत होता है कि भगवत् साक्षात्कार के बिना जीवन व्यर्थ बीता जा रहा है। उसके निमित्त मैं, संसार के सभी भोग त्यागने को उद्यत हूँ। स्त्री को माँ जगदम्बा के रूप में देखने का मैंने अभ्यास कर लिया है अतएव मुझे काम वासना नहीं होती अस्तु विवाह करने की कोई आवश्यकता नहीं दिखाई देती। ब्रह्मचर्य मेरे लिए सरल हो गया है और उसके पालन करने का व्रत मैंने ले लिया है। मुझे विश्वास है कि यदि हिमालय का सुन्दर व शान्त वातावरण प्राप्त हो जाय तो अधिक से अधिक ६ मास में भगवत् साक्षात्कार हो सकता है। और शान्ति मिल सकती है। मुझे विश्वास है कि मनुष्य जीवन परमात्मा की प्राप्ति के लिए ही है। उसके बिना मुझे चैन नहीं इसी लिए मैंने आप से यथासम्भव सहायता करने की बिनती की है। थोड़ी देर रुकने के उपरान्त मैंने स्वामी जी की ओर देखा तो मेरे आश्चर्य का ठिकाना न रहा; उनके नेत्रों से अविरल अश्रुधारा बह रही थी और मुख पर करुणा व प्रेम झलक रहा था। मेरे लिए वह दूसरे “अखण्डा-नन्द”

अथवा उनके दूसरे स्वरूप का दर्शन था उन्होंने कहा— आपका सद्भाग्य है जो इतनी कम अवस्था में ऐसे सुन्दर विचार उत्पन्न हुए हैं ! हम लोगों का जीवन तो आज पर्यन्त ज्यों का त्यों व्यतीत हो गया । उनके इन शब्दों में उस नवीन स्वरूप का एवं उनके भक्ति भाव युक्त हृदय का दर्शन होता था । जिस महापुरुष ने गुजरात में लाखों व्यक्तियों को उत्तम साहित्य की निधि दी और जिसने निस्वार्थ भाव से अपने जीवन को कर्मयोग में अर्पण कर दिया, समय और संयोग सानुकूल होते हुए भी जो श्री व सम्पत्ति की मोहिनी से विरक्त रहा और जिसका जीवन लोक हित के लिए एक महान आदर्श बना, उसका जीवन यूँ ही व्यतीत हो गया; यह कैसे कहा जा सकता है । उनका जीवन वास्तव में धन्य है जो परोपकार में लगा कर अमर हो गया है । इस पर भी यदि उन महापुरुष के मुख से यह शब्द निकलें कि उनका जीवन यूँ ही व्यतीत हो गया तो यह उनकी नम्रता है । कर्म करने पर भी परमात्मा से साक्षात्कार करने के लिए उनका हृदय कितना लालायित है । उनके समान ही विवेकी पुरुष दिन रात कार्य करते हुए जागृत रह सकता है और उसके ही मुख से नम्रता की ऐसी सरल बाणी निकल सकती है । जो स्वामी अखण्डानन्द जी को केवल कर्मठ समझते हों उन्हें अपनी भूल सुधार लेनी चाहिए । स्वामी जी भावपूर्ण प्रभु भक्त भी थे ।

थोड़ी देर तक हम लोग धार्मिक चर्चा करते रहे फिर उन्होंने मेज पर पड़ी हुई मूर्ति की ओर संकेत कर मुझे पूछा “यह मूर्ति कैसी है ।” मूर्ति भगवान् श्रीकृष्ण की थी, बड़ी सुन्दर थी । मैंने उत्तर दिया बड़ी सुन्दर है । “तो क्या आपको यह अच्छी लगती है ।” उन्होंने फिर प्रश्न किया । मैंने कहा “हाँ” “तो फिर आप यह मूर्ति लेलें” । उनके इस प्रस्ताव से मुझे अत्यन्त आश्चर्य हुआ । मैंने कहा “मूर्ति मुझे अच्छी लगती है इसका तात्पर्य यह नहीं कि वह मुझे चाहिये; मूर्ति लेने की मेरी इच्छा नहीं है ।” परन्तु वह भला कब मानने वाले थे । उन्होंने

अपना आग्रह चालू रखते हुए कहा जो वस्तु आपको अच्छी लगती हो वह मुझे नहीं चाहिये” । मैंने भी अधिक विरोध करना उचित न समझा और उनकी दी हुई मूर्ति मैंने रख ली । दो तीन मिनट बाद मेज पर पड़ी दूसरी मूर्ति को संकेत करके पूछा “यह मूर्ति कैसी लगती है ।”

मुझे शंका हुई कि कहीं इस प्रश्न के उत्तर का परिणाम भी पहिला जैसे न हो । यदि वही हुआ तो फिर क्या उत्तर देना चाहिए ? कुछ भी हो उत्तर तो ठीक ही देना चाहिए । मैंने कहा यह भी भगवान श्री कृष्ण की है और अत्यन्त सुन्दर है, “आप को अच्छी लगती है” मैंने उत्तर दिया “अवश्य”, तो फिर “यह भी मुझे न चाहिए आप इसे भी ले जाइए” ऐसा कह कर दूसरी मूर्ति भी उन्होंने मेरे पास रख दी वह भी मुझे लेनी पड़ी । मैंने विचार किया कि इस महापुरुष का व्यक्तित्व कितना विचित्र है जो वस्तु जिसको अच्छी लगे वह उसके पास होनी चाहिए ऐसी धारणा कितनी महान् है ।

सायंकाल का समय हो गया था । उन्होंने मुझे अपने साथ टहलने को कहा, घूमना मुझे प्रिय था अस्तु मैंने तुरन्त अपनी सम्मति उनके पक्ष में दे दी । धीरे-धीरे रास्ता तय करते हम लोग स्टेशन पर पहुंच गए और वहां एक पेड़ की जड़ पर बैठ गए । स्वामी जी ऋषीकेश में पहिले निवास कर चुके थे अतएव वहां के वातावरण से परिचित थे । इसके अतिरिक्त अनेकों महात्माओं से इनका सम्पर्क भी हो चुका था; उनके स्मृति पट पर वहाँ के मधुर एवं कटु अनुभव ज्यों के त्यों अंकित थे । मैंने हिमालय जाकर साधना करने का अपना संकल्प फिर उनके समक्ष प्रगट किया । आश्रम लौटते समय सायंकाल के भोजन के सम्बंध में मुझसे उन्होंने सहृदयता पूर्वक आग्रह किया । मैंने निवेदन किया कि मैं अधिकांश एक बार भोजन करता हूं । रात्रि में भोजन न करने से पेट हल्का रहता है और साधन भजन में कठिनाई नहीं पड़ती । प्रातः-

काल शीघ्र उठ जाने में अनुकूलता प्राप्त होती है इसके अतिरिक्त और भी अनेकों लाभ हैं। मेरी बात सुनकर इनको बड़ी प्रसन्नता हुई।

आश्रम में पहुँच कर उन्होंने मुझसे पूछा “आप चप्पल या खड़ाऊँ क्या कुछ भी नहीं पहिनते क्या कारण है ?”

मैंने उत्तर दिया—“पहिले मैं चप्पल पहिना करता था, परन्तु इस वर्ष से नहीं पहिनता हूँ कारण कि मैं विद्यार्थी हूँ और दूसरे पर निर्भर हूँ, अस्तु मेरा व्यय स्वभावतः कम होना चाहिए, जीवन की आवश्यकतायें भी कम कर देनी चाहिए, फिर मुझे हिमालय जाना है और त्यागमय जीवन व्यतीत करना है अस्तु अभी से त्याग व संयम की शिक्षा लेनी चाहिए, शरीर को सुदृढ़ बनाना चाहिए और सहन शक्ति बढ़ाने का अभ्यास करना चाहिए। यही कारण है कि मैं खड़ाऊँ और चप्पल दोनों को व्यवहार में नहीं लाता।”

मेरे उत्तर से उन्हें बहुत सन्तोष न हुआ, उनके विचार भिन्न थे। एक कोठरी में एक तरफ चप्पलों का ढेर पड़ा था उन्होंने आदेश दिया “इनमें से जो आपको पसन्द लगे वह आप पहन लें”। मैंने कहा कि यह बात नहीं कि चप्पल न मिलने के कारण मैं नहीं पहिनता हूँ वे मुझे सरलता से उपलब्ध हो सकती है परन्तु मैं उनकी आवश्यकता नहीं समझता अस्तु उनको व्यवहार में नहीं लाता। स्वामी जी ने कहा आप मेरे आग्रह व इच्छा को मान देकर एक जोड़ी इसमें से पहिन लीजिए। उन्होंने अपना आग्रह जारी किया रखा यहां तक कि अन्त में मुझे, सम्मान के लिए, एक जोड़ी लेनी ही पड़ी। बड़े आदमियों से एक साधारण बात के लिए हठ करना एवं उनके मनको दुख देना अनुचित है।

रात्रि का समय हो गया था। आश्विन मास प्रारम्भ था, अस्तु ठंडक भी यथेष्ट मात्रा में थी। रात्रि में जल्दी सो कर प्रातःकाल शीघ्र उठने का मेरा अभ्यास था। अस्तु मैं इसी प्रतीक्षा में था कि कब स्वामी

जी मेरे सोने की व्यवस्था करने की आज्ञा प्रदान करेंगे । मैं उनके पास एक कुर्सी पर बैठा था । आश्रम का एक परिचायक उनकी सेवा में उपस्थित था । मुझे ऐसा ज्ञात होता था कि स्वामी जी को सोने या सोने देने की इच्छा नहीं है । मेरी इस विचारधारा के अन्तर्गत उन्होंने पूछा “क्या आपको भजन गाना आता है” । मैंने कहा बहुत अच्छा गाना मुझे नहीं आता, साधारण रूप से गाता हूँ, भजन और गीत मुझे अत्यन्त प्रिय हैं । स्वामी जी को संगीत शास्त्री या नाद विद्या विशारद की आवश्यकता न थी । उनको तो भजन की क्षुधा की तृप्ति चाहिये थी वह साधारण रोटी से हो अथवा मिष्ठान्न से इसकी चिन्ता उनको न थी । भजन की एक पुस्तक मेरे हाथ में रखकर उन्होंने कहा इसमें से कहीं इधर उधर के कुछ भजन सुनाइये ।

उनकी आज्ञानुसार मैंने भजन गाना प्रारम्भ कर दिया । एक भजन पूरा हो गया, दूसरा गाया, फिर तीसरा इस प्रकार भजनों का कार्यक्रम चलता रहा । यदि कहीं बन्द कर देता अथवा अटक जाता तो वे तुरन्त बोल उठते क्यों कहां अटक गये । इस प्रकार गाने का कार्यक्रम चलता रहा ।

भजन सुनते सुनते बीच में कभी वे नेत्र बन्द कर लेते थे । मैं यह समझ कर कि उनको नींद आगयी है गाना बन्द कर देता था । परन्तु गाना बन्द होते ही वे नेत्र खोल देते थे और फिर भजन गाने की आज्ञा करते थे ।

इस तरह गाते-गाते कितना समय बीत गया और कितने भजन गाये गये इसका हिसाब कौन बताए ? मुझे फिर कष्ट होने लगा, जी में आता था कि अब सोने की आज्ञा मिल जाय तो ठीक होगा, भजत भी बहुत हो गये थे और अन्य कोई दूसरा अच्छा भजन सामने न था अस्तु मैंने अपना बनाया हुआ एक भजन गाया । स्वामी जी के

नेत्र बन्द थे। वे सो गये हैं यह अनुभव कर मैं चुप हो गया। परन्तु उन्होंने आँखें खोल दी और कहने लगे “यह भजन इस पुस्तक में नहीं है यह आप कहाँ से पाये” मैंने कहा यह भजन मेरा बनाया हुआ है।

“आप भजन बनाते हैं” उन्होंने कुतूहल पूर्वक कहा।

“जी हाँ” मैंने बहुत भजन बनाये हैं। मेरा उत्तर था,—मेरे उत्तर से उनको अपार आनन्द हुआ। मेरा भजन साधारणतया फिर भी उनको बहुत अच्छा लगा।

मेरे भजन से उनको बड़ा संतोष हुआ। वे प्रेम पूर्वक कहने लगे “प्रातःकाल आपको मेरे साथ अहमदाबाद चलना है। इस समय रात के २ बजने वाले हैं, चार बजे मेल के लिए तैयार हो जाना है, अब आप आराम करिये।” तदुपरान्त मेरे लिए आवश्यक व्यवस्था करने का आदेश दिया।

कोठरी के बाहर गैलरी में मेरे सोने का प्रबन्ध था, सोते-सोते यह विचार आया कि स्वामी जी को भजनों से कितना अधिक प्रेम है। परन्तु जिस मुख्य उद्देश्य के लिए उन्होंने मुझे यहाँ बुलाया है उसकी कोई बात ही नहीं करते हैं। जिस प्रकार सुदामा भगवान् कृष्ण का प्रेम व स्वागत देखकर प्रसन्न तो बहुत होते थे परन्तु यह भी सोचते जाते थे इन सब उपकरणों द्वारा उनका दरिद्र दूर न हो सकेगा और आशा फलीभूत न होने से शान्ति भी न प्राप्त हो सकेगी; उसी प्रकार मेरे सामने भी वही प्रश्न था—“जिस कार्य के लिए मैं वहाँ गया क्या वह पूरा न हो सकेगा?”

स्वामीजी मुझे अहमदाबाद अपने साथ ले जा रहे हैं इस योजना के कारण मेरे मन में उत्पन्न हुई आशा बलवती हुई। मुझे विश्वास

था कि ईश्वर बड़ा दयालु है, वह जो करेगा मेरे लिए अच्छा ही होगा ।

यही विचार करते-करते थोड़े समय के बाद मैं निद्रा देवी की गोद में चला गया ।

• • •

भिक्षु अखण्डानन्द की सहायता

प्रातःकाल ४ बजे उठकर बम्बई से आनेवाली मेल ट्रेन को पकड़ने हम लोग स्टेशन जा पहुँचे । गाड़ी नियमित समय से चल रही थी स्टेशन पर अधिक प्रतीक्षा न करनी पड़ी । थोड़ी देर में हम लोग एक सेकेन्ड क्लास के डिब्बे में बैठ गये । सेकेन्ड क्लास में बैठने का मेरा यह प्रथम अवसर था । पूरे डिब्बे में हम दोनों के सिवाय और कोई न था । चारों ओर अंधेरा था, ऊषा में देर थी, रात का जागरण अपनी प्रतिक्रिया करता था । मुझे आशा थी अब कुछ आराम कर सकूँगा परन्तु आराम कहाँ, स्वामीजी ने भजन की वह पुस्तक मेरे हाँथ में देकर गाने का आदेश दिया उनकी बात असामयिक लगी अवश्य परन्तु विरोध करने की मेरी इच्छा न थी । वे एक महापुरुष थे अस्तु उनके साथ, व्यवहार में एक प्रकार की मर्यादा का पालन करना आवश्यक है । मेरी इच्छा बिलकुल न थी फिर भी उनकी आज्ञा का पालन कर मैंने भजन गाना प्रारम्भ कर दिया । बीच-बीच में उनको नींद के झोंके आ जाते थे उस समय मैं गाना बन्द कर देता था परन्तु उसी क्षण वे जागृत होकर आगे गाने को कह देते थे ।

नड़ियाद से अहमदाबाद का मार्ग अधिकांश इसी प्रकार बीत गया । ब्राह्म मुहूर्त का समय प्रभु स्मरण या भजन के लिए अनुकूल एवं उपयुक्त

होता है इसमें संदेह नहीं, परन्तु चलती गाड़ी का डिब्बा उसका उपयुक्त स्थल नहीं कहा जा सकता ।

गाड़ी की तीव्र गति के कारण निरर्थक घोर शब्द उत्पन्न होता है उस तुमुल ध्वनि के अन्तरगत किसी प्रख्यात गायक का कण्ठ ही सम्भवतः कुछ काम कर सकता हो, वही उससे होड़ भी लगा सकता है मेरे ऐसे साधारण स्वर वाले व्यक्ति के लिए वहां कोई स्थान नहीं ।

गाड़ी के भयंकर शब्द में मैं अपना स्वर स्वयं ही नहीं सुन पाता था, दूसरों की कौन कहे, फिर समझ में क्या आता था यदि शक्ति लगाकर स्वर को ऊंचे उठाने का प्रयत्न करता तो परिश्रम व्यर्थ हो जाता और कण्ठ भी बैठ जाता फिर भी एक महापुरुष की भावना को सन्तोष देने का यथा सम्भव प्रयास मैंने अवश्य किया ।

स्वामी अखण्डानन्द जैसे महान् भजन प्रेमी के हृदय उद्गारों को प्रगट करने के लिये यह प्रसंग लिखना आवश्यक था । सतत प्रवृत्ति में रहते हुए उनका मन सर्वदा प्रभु परायण रहता था ।

मनुष्य प्रातःकाल भजन करते हैं, प्रभाती गाते हैं और कीर्तन इत्यादिक करते हैं । मेरे हृदय के विचार कुछ भिन्न प्रकार के हैं अतएव प्रातःकाल मौन रहना, मन ही मन प्रभु स्मरण अथवा ध्यान करना मुझे अधिक प्रिय लगता है । मुहूर्त को शान्ति पूर्वक ईश्वर चिन्तन में लगाने से मुझे अधिक आनन्द प्राप्त होता है । सुबह चार या पाँच बजे से सामुहिक प्रार्थना या कीर्तन की प्रवृत्ति भी मेरे मन को आकर्षित नहीं करती है । समूह में मिलकर यदि कीर्तन इत्यादि करना आवश्यक भी हो तो भी प्रातः लगभग सात बजे तक मुझे उसमें भाग लेना अच्छा नहीं लगता । उस समय अन्तरंग या वहिरंग जिस प्रकार का कार्यक्रम हो उसे मैं अकेले अपने साथ ही करना अधिक पसन्द करता हूँ । इसका अर्थ यह नहीं है कि जल्दी सवेरे उठकर उच्च स्वर में भजन कीर्तन और

सामूहिक प्रार्थना करने की पद्धति अनुपयुक्त है, मैं उसका विरोध नहीं करता हूँ। कितने व्यक्ति ऐसे हैं जिनको उस समय वैसी ही पद्धति अधिक पसन्द पड़ती है। उनको उसी में ही आनन्द आता है और उसी से शान्ति प्राप्त करते हैं। यह विषय तो अपनी-अपनी रुचि पर ही निर्भर है और भिन्न-भिन्न मनुष्यों की रुचि भी भिन्न-भिन्न होती है, अतएव प्रत्येक मनुष्य अपनी रुचि के अनुसार अपनी पद्धति अपनाने के लिए स्वतंत्र है। पद्धतियाँ अनेक हों और अनेक रहें इसमें कोई विवाद नहीं है परन्तु मनुष्य को चाहिये कि उसी के द्वारा अपने मन को संयमी, शान्त और प्रभुपरायण बनाने का प्रयत्न करे। प्रातःकाल का समय ब्राह्म-मुहूर्त की वेला है, दिन रात के २४ घण्टों में यही समय स्वर्णिम समय होता है मनुष्य को चाहिये कि उसका पूर्णरूपेण सदुपयोग करे। वह व्यर्थ न जाय और उस समय सद्विचार और सद्भावना में स्नान कर निर्मल बनने की कला सीखे। इसके लिए सावधान रहना चाहिये।

स्वामी जी ने उस समय मुझे भजन गाने का आदेश देकर इसी सिद्धान्त का प्रतिपादन किया।

(३)

अहमदाबाद स्टेशन पर कार्यालय के एक व्यक्ति आ गये थे उनके साथ हम लोग आगे बढ़े। रास्ते में फुटपाथ पर बैठे मनुष्यों को वे स्वामी जी की आज्ञानुसार पैसा देते जाते थे। स्वामी जी बहुत दयालु थे। दूसरे का दुःख देखकर उनका हृदय द्रवित हो जाता था और उसकी सहायता करने के लिए वे तुरन्त तैयार हो जाते थे। कहा जाता है कि गरीबों को पैसे की सहायता देने के अतिरिक्त उनकी एक दूसरी विधि भी थी। रात्रि में वे अपने आदमियों को कम्बल लेकर बाहर भेजते थे ये लोग जाड़ों की ठंडक में फुटपाथ पर लेटे हुये या खुले में सोये हुए वस्त्राभाव के कारण शीत पीड़ित लोगों को स्वामी जी के आदेशानुसार कम्बल उड़ा कर वापस आते थे।

कर्मनिष्ठ और भक्तिभाव परिपूर्ण स्वामी जी का यह तीसरा स्वरूप था। सेवा-व्रत के वे महान् दीक्षाधारी थे। उनकी सेवा कीर्ति कमाने या वाह-वाही लेने के लिए नहीं थी। सेवा की आवश्यकता समझ कर वे निष्काम भाव से सेवा करते थे। केवल जनता में ही नहीं अपितु जगत के समस्त जीवों में भी स्वामी जी जनार्दन की झाँकी देखते।

हम लोग सस्ता साहित्य वर्धक कार्यालय में पहुँच गए। इसको कार्यालय कहा जाय या सरस्वती मन्दिर एक ही बात है। माता सरस्वती का प्रसाद रूपी यह छोटा सा मन्दिर मानव जीवन को उज्ज्वल करने वाली सामग्री से परिपूर्ण था। इसी के द्वारा सस्ते तथापि सुन्दर धार्मिक ग्रंथ प्रकाशित होते थे। आज मैं उसी मन्दिर का दर्शन कर रहा हूँ यह मेरे लिए कम आनन्द का विषय न था।

कार्यालय में पहुँचते ही स्वामी जी अपने काम में व्यस्त हो गये स्नानादि से निवृत्त होकर हम लोग ट्रेन में बैठे थे अतएव उसकी चिन्ता न थी।

(४)

थोड़े समय के उपरान्त स्वामी जी मुझसे वार्तालाप करने लगे। कार्यालय में थोड़ी दूर कुर्सी पर एक महात्मा बैठे थे उनकी ओर संकेत करके स्वामीजी ने कहा “अभी हाल ही में कार्यालय की व्यवस्था करने के लिए मैंने इनको नियुक्त किया है। मैं चाहता हूँ आप हिमालय जाने का विचार छोड़ कर इस संस्था में रह जाँय। इस संस्था के द्वारा भी तो प्रभु की ही सेवा होगी। यह काम आपके अनुकूल रहेगा और ६ मास में आप यहाँ के सब काम से परिचित हो जायेंगे। तब फिर आप संस्था की पूर्ण व्यवस्था सुचारुरूप से कर सकेंगे। मेरा शरीर शिथिल हो गया है ऐसा आभासित होता है कि मेरे प्रयाण का समय अब निकट आ चुका है, मुझे एक ऐसे व्यक्ति की आवश्यकता है जो मेरी जगह पर काम कर सके, मैं खोज में हूँ, परन्तु अभी तक कोई

नजर नहीं आया यदि आप रह जायें तो मुझे बड़ा आनन्द हो और मैं निश्चित हो जाऊँ ।”

इतना कहने के उपरान्त वे मेरे उत्तर की प्रतीक्षा करने लगे । मैंने विचार किया सम्भवतः इसी के लिए वे मुझे यहाँ लाए हैं । मैंने उनको शान्तिपूर्वक उत्तर दिया—“इस समय तो मेरी इच्छा केवल हिमालय जाने की है अतएव कोई दूसरी बात अच्छी नहीं लगती है मुझे परमात्मा से साक्षात्कार करने की लगन लगी है जब तक वह शान्त नहीं होती तब तक मुझे भी शान्ति नहीं ऐसी परिस्थिति में अन्य किसी कार्य में मेरा मन भी न लगेगा ।”

स्वामीजी ने तब एक दूसरी बात उठाई उन्होंने कहा—“मेरा विचार भारत भ्रमण का है । स्वास्थ्य के कारण अकेले नहीं जा सकता, मुझे कोई दूसरा व्यक्ति साथ में चाहिये, यदि आप मेरे साथ चलें तो हम लोग देश के अनेकों सुन्दर स्थानों का भ्रमण करेंगे और सत्संग एवं संत समागम का लाभ उठावेंगे । ऋषिकेश भी जायेंगे ! उसके उपरान्त आप जो चाहें सो करें आप को पूर्ण स्वतन्त्रता होगी ।”

मेरे समान एक बालक पर साधारण परिचय के उपरान्त ही उनके प्रेम विश्वास और ममत्व का भाव देखकर मेरा हृदय गद्गद् हो गया, मेरे नेत्र सजल हो गये, फिर भी उनकी अभिलाषा पूरी करने की शक्ति मुझमें न थी, इसलिए मैंने कहा—“आपके साथ प्रवास करने में बड़ा आनन्द रहेगा परन्तु इस समय मेरे लिए वह भी असम्भव है ईश्वर दर्शन के अतिरिक्त और कोई भी वस्तु मुझे आकर्षित नहीं कर सकती, उसके लिए मैं एक दिन भी व्यर्थ गँवाने को तैयार नहीं । जीवन अत्यन्त मूल्यवान् है । इसका कोई भरोसा नहीं । शीघ्रातिशीघ्र शान्ति प्राप्त करने की आवश्यकता है अस्तु मैंने जो संकल्प कर लिया है उसे शिथिल या उसकी अवहेलना करने की मेरी इच्छा नहीं है । प्रवास तो फिर कभी हो सकता है ।”

मेरे शब्दों को सुनकर वे गद्गद् होगये उनकी आखें भर आयीं । थोड़ी देर के बाद शान्त होकर बोले “ इतनी छोटी अवस्था में आपको इतना बड़ा वैराग्य ” आपका विचार जानकर मुझे वास्तव में बड़ा आनन्द आया । दूसरे किसी को हिमालय जाने की सलाह मैं न भी दूँ पर आपको निश्चय दूँगा । आप अवश्य जाइये आपको शान्ति मिलेगी और भविष्य में आप बहुत विकास कर सकेंगे ऐसा मुझे आभासित होता है । समय बहुत प्रतिकूल हो गया है अस्तु संभलकर रहियेगा । मेरी एक शर्त है आप उसे पालन करने का वचन दीजिये हिमालय पहुंच कर और वहाँ से वापस आने पर भी, पत्र देते रहना समाचार बताते रहना, और यदि सम्भव हो सके तो फिर मिलना ।

उनके भाव देखकर मुझे बड़ा आनन्द हुआ । मैंने उनकी शर्त मान ली । वे कहने लगे यह संस्था सार्वजनिक है यहाँ किसी को अकारण आर्थिक सहायता नहीं दी जा सकती । परन्तु आपके लिए यह नियम भंग करता हूँ । तदुपरान्त उन्होंने टिकट एवं मार्ग व्यय का हिसाब लगाकर संस्था के एक कर्मचारी को १२० रु० मुझे दिये जाने का आदेश दिया । हिसाब का लेखा संस्था के बहीखातों में किस प्रकार होगा यह भी उसे समझा दिया ।

(५)

स्वामी जी की इस आकस्मिक सहायता से मुझे बड़ी प्रसन्नता हुई । ठीक अन्त समय सुदामा का भाग्य पलट गया, भगवान ने उस पर कृपा की, उसी प्रकार अन्त में मेरे ऊपर भी भगवत् कृपा हुई । स्वामी जी की सहायता से मेरे आगामी जीवन प्रगति का आधार था । मुझे आभास होने लगा कि मेरी भावी प्रवृत्ति का पथ साफ हो गया है । हिमालय जाने की व्यवस्था हो गयी साथ साथ ईश्वर की कृपा का भी निश्चय हो गया । यह उसी की इच्छा थी कि स्वामी जी को पत्र द्वारा अपनी स्थिति अवगत कराकर उनसे मिलने के लिए मुझे जाना पड़ा यदि यह अवसर न मिलता तो स्वामी जी के हृदय में मेरे प्रति

इतना स्नेह भी न उत्पन्न होता और इच्छानुसार सहायता भी न मिलती ।

अन्ततोगत्वा प्राणीमात्र में स्थित प्रेरक शक्ति उसी की है उसी से प्रभावित होकर मनुष्य इस जगत में प्रवृत्ति करता है । उसकी कृपा बिना किसी का भी मार्ग सरल नहीं हो सकता ।

भोजन का समय हो गया था । स्वामी जी ने मुझे भोजनालय में ले जाकर भोजन परोसने का आदेश कर्मचारी को दिया । वहाँ मुझे ज्ञात हुआ कि स्वामी जी केवल चना का उपयोग करते हैं अतः उनको भोजन को कोई जल्दी न थी । भोजन के उपरान्त मैं जब फिर उनके पास जाकर बैठा तब उन्होंने मुझे बहुत सी पुस्तकें दिखाई इनमें से बहुत सी तो मेरी पढ़ी हुई थीं फिर भी लगभग १५ पुस्तकें भेंट की और रामकृष्ण परमहंस एवं विवेकानन्द स्वामी के दो बड़े चित्र भी दिए जो आज भी उनकी स्मृति रूप में मेरे पास मौजूद है ।

सायंकाल की मोटर से उसी दिन मेरा सरोड़ा जाने का विचार था । माता जी उस समय सरोड़ा में थीं । अतएव हिमालय जाने के पूर्व उनसे बिदा लेना एवं उन्हें सारी परिस्थिति से अवगत कराने की आवश्यकता थी । मोटर लगभग चार बजे छूटती थी ।

समय कम था अतएव स्वामीजी से बिदा मांगने का विचार हुआ । जिस महापुरुष ने ईश्वर की कृपा से आवश्यकता के समय मुझे सहायता की है उसका आभार प्रगट करना आवश्यक है । स्वामी जी कार्यालय के अन्दर काम में व्यस्त थे, मैं उनके पास गया । उनका कर्मयोग सतत चल रहा था आराम की मानों उन्हें कोई चिन्ता ही न थी । कर्म-कर्म और निरंतर कर्म करना ही उनका अभीष्ट था । स्वामीजी की महान सफलता इसी के परिणाम स्वरूप थी । आज केवल उस कर्मयोग से ही उन्होंने अकेले परिश्रम कर एक बड़ी साहित्य संस्था का सृजन किया जिसके द्वारा गुजरात के सहस्रों घरों में अल्प मूल्य का शक्ति संचारक प्रेरक साहित्य

प्रसारित हुआ। इतनी बड़ी अवस्था और शरीरिक प्रतिकूलता होते हुए भी उन्होंने अपना पुरुषार्थ वैसा ही बनाये रखा।

उनको काम करते हुए देख, प्रसन्नता होती थी। उनकी ऐसी विकट कर्मठता देखकर उनके प्रति मेरा मान बढ़ गया। मैं उनके पास गया, वे एक साधारण कुर्सी पर बैठे थे। उन्होंने मेरी ओर देखा; मैंने उन्हें प्रणाम किया और अपने प्रस्थान की सूचना देकर बिदा की आज्ञा माँगी और कहा—“आपने मुझे जो सहायता की है वह मुझे हमेशा याद रहेगी अतएव…………” इतना कहने पर बीच ही में वे कुर्सी से उठ खड़े हुए उनकी मूलाकृति बदल गयी, स्वरूप ही बदल गया, बड़े क्रोध और आवेश आने के कारण उनका हाथ काँपने लगा। वे कम्पित स्वर में बोले “कैसी सहायता? किसको सहायता? कौन किसे सहायता देता है?”

उनको नमस्कार कर मैं खण्ड के बाहर निकल आया। उनके उस रौद्र स्वरूप के दर्शन का यह मेरा पहिला ही अवसर था परन्तु इस दर्शन से मेरा प्रेम-भाव उनके प्रति अधिक बढ़ गया। ऐसा देखा जाता है कि आजकल अधिक संख्या में मनुष्य कीर्ति प्राप्ति की इच्छा करता है। अपने कार्यों का गुणानुवाद अत्यधिक प्रमाण में गाया जाय और यत्र-तत्र प्रकाश हो यही सबको पसन्द है। किसी ने कुछ भी सहायता की, उसका यदि आभार न प्रगट किया जाय तो बात बिगड़ गयी। साधारण सभा में अपना दिया हुआ दान विदित किया जाय, उसकी प्रशंसा हो, कोई नूतन कवि अपनी टूटी फूटी भाषा की कविता में उनकी स्तुति गाये, भोज, कर्ण, रन्तिदेव जैसे दान वीरों के साथ समता की जाय और अन्त में गले में फूलों का हार डालते हुये उनकी फोटो भी ली जाय तो काम पूरा हुआ और तभी दान दी हुई रकम का सदुपयोग हुआ। इस प्रकार के विचार वाले व्यक्ति, अपनी उपरोक्त पूर्ण रूपेण ख्याति देखकर अधिक उत्तेजित होकर अन्य अवसरों पर दान

की मात्रा बढ़ा भी दिया करते हैं। ख्याति प्रिय, इस प्रकार के मनुष्य सम्भवतः स्वामी जी के व्यवहार को समझने में असफल होंगे। यदि कदाचित् समझ भी सके तो उनमें सहानुभूति एवं सम्मान की भावना न उत्पन्न हो सकेगी। सभी पुरुष माला के दाने के सामान एक से नहीं होते। संसार में सदाचारी, सच्चे और विवेकी पुरुष भी हैं। हो सकता है संख्या में वे अधिक न हों फिर भी ऐसे ही संत-पुरुष स्वामी जी को समझ सकते हैं इसमें सन्देह नहीं।

स्वामी जी की सभी सेवायें निष्काम भाव से होती थीं यहाँ तक कि उनकी सेवा की स्तुति भी उनको किञ्चित् मात्र में भी पसन्द न थी। केवल उनकी सेवा के लिए, अपना कर्तव्य समझकर सेवा करने का उनका स्वभाव था। गुप्त रूप से की गयी सेवा में उनकी मान्यता थी और उनके प्रकाश एवं गुणगान से वे सदैव दूर भागते थे। अपने-अपने प्रारब्ध के अनुसार सभी को वस्तुएं प्राप्त होती रहती हैं। देने वाला व्यक्ति तो निमित्त मात्र बनता है। अतएव “मैंने दिया” ऐसा अहंकार नहीं करना चाहिये, ईश्वर की लीला का एक पात्र बनकर अपने पार्ट को पूरा उतारना चाहिए और यही विचार करना चाहिये कि अमुक सहायता ईश्वर प्रदत्त है स्वामी जी की यही मान्यता थी। ऐसी उदार संस्था का संचालन करने के लिए यदि मैं उनका गुणानुवाद गाता तो वह भी उनको कटु प्रनीत होता, अस्तु इस बात का ध्यान रखना है कि काम और काम करने में विश्वास रखने वाले स्वामी जी केवल कर्मठ पुरुष ही न थे वरन् एक सच्चे कर्मयोगी थे।

इस भूमिका का आधार लेकर और कर्मयोगी की दृष्टि धारण कर यदि स्वामी जी का दर्शन किया जाय तो उनके शब्द पूर्णतया समझे जा सकेंगे। उनके तीन वाक्यों में अत्यन्त मूल्यवान् सन्देश निहित है।

वास्तव में उनके वाक्य विवेकी पुरुष के लिए सर्वदा स्मरणीय हैं, उनमें प्रेरणा का भण्डार है। इसमें सन्देह नहीं कि जो व्यक्ति इनको

सदा दूष्टि के सामने रखता रहेगा और हृदय में उतार लेगा उसको अतिशय लाभ होगा ।

स्वामी जी के पास कोई उनकी सेवा का आभार प्रगट करने जाय यह उनको मान्य न था, यही कारण था कि वे मेरे उस वाक्य को सुनकर आवेश में आकर विकल हो गये थे । क्रोध करने की बात कदाचित् सुन्दर न लगे परन्तु उसका कारण क्या है यही बात विचारणीय है ? व्यर्थ वाद-विवाद अहितकर होता है, उसकी आवश्यकता नहीं ।

स्वामी जी के विशाल व्यक्तित्व के अंतरंग स्वरूप का वर्णन इस छोटे से प्रसंग में उपलब्ध है । इससे मनुष्य मात्र को शिक्षा ग्रहण करनी चाहिये कि निष्काम कर्म कैसे करना चाहिए यदि स्वामी जी की तरह कर्म करना सीख लिया जाय तो सभी समाज के लोगों के साथ-साथ अपने को भी अत्यन्त लाभप्रद होगा ।

(६)

हिमालय से वापस आने पर मैंने स्वामी जी को पत्र लिखा था । उसमें मिलने का आयोजन भी बना रहा था कि इन्हीं दिनों स्वामी जी का शरीर शान्त हो गया । मेरे हिमालय प्रवास के उपरान्त उनका शरीर अधिक न चल सका अतएव उनके दर्शन की इच्छा पूरी न हो सकी । इसमें भी कोई ईश्वर का गूढ़ संकेत है यह समझकर मैंने भी शान्ति रखी । उनके शरीर शान्त होने के समय मैं भादरण में था । उनके महा प्रयाण का समाचार सुनकर मेरा हृदय हिल गया । उनके प्रसंग स्मृति पट पर फिर से आने लगे और अत्यन्त प्रेमाकुल होकर उस महापुरुष को आँसुओं की अञ्जलि दिये बिना मैं न रह सका । वास्तव में स्वामी जी एक सच्चे लोक सेवक थे । मेरे ऐसे कितने व्यक्तियों को उन्होंने गुप्त सहायता की थी इसकी गणना भगवान ही जान सकता है ?

भारतवर्ष के महापुरुषों की गणना में जो गौरव पूर्ण स्थान प्राप्त कर चुके हों ऐसे कुछ महापुरुष गुजरात में मध्य कालीन इतिहास के

अन्त समय उत्पन्न हुए हैं। उनमें स्वामी दयानन्द सरस्वती और महात्मा गाँधी जैसे महापुरुषों की तरह भिक्षु अखण्डानन्द का नाम भी उल्लेखनीय है। गुजरात में हीरा परखने वाले जौहरी बहुत हैं। वे दूसरे प्रान्त के हीरे को तुरन्त पहिचान लेते हैं और सम्मान भी देते हैं किन्तु आस-पास के हीरे को कई बार पहिचान नहीं पाते और उसको मान भी नहीं देते हैं, ऐसी कहावत प्रसिद्ध है। यह बात कहाँ तक सत्य है मैं नहीं कह सकता परन्तु इतना अवश्य है कि गुजराती भाषा जानने वाली जनता में इस महापुरुष का काम व नाम अमर है और अमर रहेगा इसमें कोई सन्देह नहीं।

आज इस अक्षर रूप में उसे साकार करने का प्रसंग यहाँ पूरा होता है। उस महापुरुष की स्मृति सदा रहेगी, अन्त में उस महान सन्त पुरुष को प्रेम से अप्लावित होकर फिर एक बार प्रणाम करता हूँ।

• • •

सन्यासी का दर्शन

बड़ीदा से दिल्ली पहुंच कर मैंने हरिद्वार की गाड़ी पकड़ी। इतनी लम्बी यात्रा का मेरा यह पहला अवसर था। हृदय में उत्साह होने के कारण मार्ग के कष्ट व थकान का भान न हुआ। मेरा चिरसेवित स्वप्न सत्य होने को था। हिमालय के पावन प्रदेश के निकट पहुंचता जाता था अस्तु मन की आकुलता एवं प्रसन्नता स्वाभाविक थी। हिमालय की मेरी कल्पना कैसी थी? मेरी धारणा थी कि गंगाजी के तट पर छोटी-छोटी पर्णकुटिया होंगी, जिनमें बड़े-बड़े ऋषि, मुनि एवं त्यागी पुरुष निवास करते होंगे। वे सब परमात्मा के चिन्तन, मनन में मग्न होंगे, उनके मुख पर परम शान्ति व प्रकाश प्रस्फुटित होता होगा। ऊंचे-ऊंचे हिमाच्छादित शिखर अनन्त काल से अपना मस्तक ऊंचा किये अतिथि सत्कार के लिए खड़े होंगे, जिनके दर्शन मात्र से ही साधक को परम शान्ति की अनुभूति होने लगती होगी। कितना भव्य व मंगलमय वह प्रदेश होगा? विचारों की यह शृंखला चलती रही और गाड़ी भी आगे बढ़ती रही।

मार्ग में अकस्मात् एक विचित्र प्रसंग उपस्थित हो गया। सहारनपूर के आगे एक छोटे स्टेशन को छोड़कर जब गाड़ी आगे बढ़ी तो उसी समय बाहर जंगल की ओर से दो सन्यासी आ पहुंचे और मेरे

डिब्बे के दरवाजे को बलात् खोल कर भीतर घुस आये । वे इतने जोर से बोलते थे कि यदि गाड़ी के कलरव से उसकी समानता की जाय तो अतिशयोक्ति न होगी । अन्दर मनुष्यों की भीड़ थी । कितने ही मनुष्य खड़े-खड़े यात्रा कर रहे थे । परन्तु उन महात्माओं को खड़े रहना पसन्द न था । उन्होंने हरिनाम बोल कर सेवा धर्म की महिमा बताई और मेरे पास वाली खिड़की के समीप जगह करा कर वहीं आसन जमाया । जीवन भर सेवा का व्रत लेने वाले और मनुष्य का जन्म सेवा धर्म से ही सफल होता है ऐसा भाषण देने वाले त्यागवीरों का वह व्यवहार देख कर मुझे बड़ा आश्चर्य लगा । उन दोनों महात्माओं का शरीर अत्यन्त हृष्ट पुष्ट और स्थूल था । तोंद फूला हुआ बाहर निकला था, अवस्था अधिक थी । बैठे हुये व्यक्तियों को उठाकर अपना आसन जमाना और फिर “ब्रह्म सत्यं जगत् मिथ्या” का वेदान्त प्रारम्भ कर देना कहां तक उचित था उन भीमकाय त्यागवीरों का यह व्यवहार देखकर मुझे आश्चर्य क्यों न हो ? हिमालय प्रदेश निकट आ गया था उस समय सन्यासियों का दर्शन पाकर और उनके इस व्यवहार को देख कर मेरे मन में यह विचार उत्पन्न हुआ कि क्या हरिद्वार और ऋषिकेश में भी इसी प्रकार के त्यागी महात्मा बसते होंगे ? क्या ये साधु उन्हीं का प्रतिनिधित्व तो नहीं करते ? सन्यासी, त्यागी, भक्त एवं सन्त पुरुष को तो त्याग की मूर्ति होना चाहिये निस्वार्थ सेवा भाव के लिए उनका जीवन हो, दैवी सम्पत्ति की वे प्रतिमा हों, ईश्वर के लिए उन्होंने अपना जीवन समर्पित किया हो, और सबमें ईश्वर का दर्शन करते हुए सबके प्रति प्रेममय व्यवहार हो, उनमें मनसा, वाचा, कर्मणा, प्रेम व मधुरता की झलक आती हो । इस प्रकार की धारणा मेरे अन्दर व्याप्त थी परन्तु उसके विपरीत उन महात्माओं को देख कर और वे हरिद्वार जा रहे हैं, यह जानकर मेरा आश्चर्य और भी बढ़ गया । मैं जानता था कि सन्यासी सब अच्छे और उच्चकोटि के ही होते हैं परन्तु मेरी यह मान्यता उचित न थी ऐसा मान लेना आवश्यक नहीं है । हिमालय में

प्रवेश के थोड़े ही समय पहिले इन सन्यासियों के दर्शन ने मेरे विचारों को द्विविधा में डाल दिया ।

हरिद्वार और ऋषिकेश

यूं ही विचार करते-करते कब हरिद्वार आ गया मैं जान न सका । हरिद्वार आते ही शीतल वायु का प्रारम्भ आभासित होने लगा । हरिद्वार पहुंच कर प्रत्येक दक्षिण या पूर्व के यात्री को ऐसा ही लगता है कि अब एक ठण्डे प्रदेश में आ पहुंचे । पवन की ठण्डी लहरें सबका स्वागत करने को प्रस्तुत रहती हैं । हरिद्वार हिमालय का प्रवेश द्वार है । यहाँ से हिमालय प्रारम्भ होता है । पर्वतीय शृङ्खलाओं से आती हुई गंगा हरिद्वार में अपने पर्वतीय बन्धनों को तोड़कर विस्तृत रूप धारण कर लेती है । अपने चिर-परिचित पर्वत प्रदेश को छोड़कर वह समतल भूमि पर प्रवाहित होती है और तब ऐसा आभासित होता है कि सम्भवतः उसके हृदय में द्विविध भाव उत्पन्न हो गये हैं । अपने पितृ प्रवेश को छोड़ने से और वहाँ के पूर्णकाम ऋषियों के सतसंग का स्मरण आने से उसकी प्रवाह की गति मन्द पड़ जाती है । आगे बढ़ना है कि नहीं इसी असमंजस में स्थिरता को प्राप्त हो जाती है; परन्तु स्वधर्म व लक्ष्य स्थान सागर का विचार आते ही वह मन्द-मन्द गति से फिर प्रवाहित हो जाती है । “तन आगे और मन पीछे” वाली कहावत पूर्णतया चरितार्थ हुई देखी जाती है । उसके पवित्र पानी में स्पर्श-स्नान कर वायु सम्पूर्ण रूप से संतुष्ट होकर ऐसी शीतलता धारण करती है कि उसके स्पर्श मात्र से प्रवासी पुलकित हो रोमाञ्च का अनुभव करने लगता है । हरिद्वार का स्थान अत्यन्त प्राचीन है । वहाँ से थोड़ी दूर पर एक स्थान कनखल है, जहाँ पुराण प्रसिद्ध दक्ष प्रजापति का यज्ञ हुआ था । हरिद्वार के समीप एक और सुन्दर स्थान सप्त-सरोवर नाम से प्रसिद्ध है । कहा जाता है जब गंगाजी सर्व प्रथम वहाँ पर

बहते-बहते पहुंची उस समय वहां पर सात बड़े बड़े ऋषियों की कुटिया मार्ग में बनी थीं। गंगा जी किस ऋषि के आश्रम के समीप हों और किसकी अवहेलना करें, इस कारण उन्होंने अपने को सात भिन्न-भिन्न धाराओं में विभाजित कर सबको आदर दिया, अस्तु उस स्थान को सप्त सरोवर के नाम से ख्याति मिली।

गंगा का जल कितना अधिक पवित्र है ? कौन कह सकता है ? वह तो तपस्या से पवित्र हुए तपस्वी के हृदय के समान निर्मल सुमधुर है। मुझे गंगाजी के दर्शन प्राप्त कर बड़ी प्रसन्नता हुई। घाट पर एक बड़ा घंटाघर उस स्थान की शोभा बढ़ाने में बड़ा सहायक है, मैं इसी घंटाघर के समीप जाकर गंगाजी के विशालकाय शांति प्रवाह को शांतिपूर्वक देखने लगा। पवित्र ऋषि-मुनियों का स्मरण मुझे बड़ा आनन्द देने लगा। उनकी चरणरज से पवित्र हुए इस प्रदेश में प्रभु ने मुझे पहुंचाकर कृतार्थ कर दिया। पूर्व दिशा में ऊषा ने अपने आगमन का संकेत दिया थोड़ी ही देर में सूर्य की स्वर्णिम रश्मियां गंगाजल पर नहाने-खेलने लगीं। उस समय का दृश्य बड़ा अलौकिक था। मुझे विचार आया कि मुझको भी अब स्नान कर लेना चाहिए, अस्तु कटि पर्यन्त वस्त्र पहन कर मैं स्नान करने लगा। उस समय का आनन्द अकथनीय था। मुझे ऐसा प्रतीत हुआ, कि बस आज जीवन कृतार्थ हो गया, जन्म मरण का पुनरावर्तन समाप्त हो गया, मुझे नया जन्म मिल गया, बंधन टूट गए, ग्रन्थि खुल गयी मैं मुक्त हो गया। मेरा अंतस्थल उत्साह से परिपूर्ण हो गया, उसमें प्रेम शांति का श्रोत निकल आया, और मेरा रोम रोम रसमय हो गया।

सूर्य-देवता के सामने आँखें बन्दकर थोड़ी देर मैंने ध्यान किया और फिर अधिक कालतक घाट पर बैठा रहा—घाट तब तक जन समूह से भर गया था। देश के अनेक प्रदेशों से आये हुए नाना जाति के

भांति-भांति के मनुष्यों का मेला सा लग गया था घाट का अपूर्व दृश्य देखने के उपरान्त मैंने स्टेशन का मार्ग पकड़ा ।

हरिद्वार की स्वच्छता व शोभा से मैं बड़ा प्रभावित हुआ, उसका वातावरण मेरे मन में बस गया परन्तु मैं तो परमार्थ पथ का राही था, इसका मुझे ध्यान था । मेरे प्रकाश का लक्ष्य हरिद्वार नहीं वरन् ऋषिकेश था । यदि हरिद्वार इतना अधिक सुन्दर है तो ऋषिकेश कितना सुन्दर होगा, यह विचार बराबर मन में घूम रहा था परन्तु निष्प्रयोजन हरिद्वार में अधिक समय बिताना उचित न था अतएव ऋषिकेश की गाड़ी पकड़ने के लिए मैंने रेलवे स्टेशन की ओर प्रस्थान किया ।

परमार्थ पथ के प्रवासी को यह बात निश्चित याद रखने की है कि उसे अपना गंतव्य स्थान कभी न भूलना चाहिये । प्रवास करते-करते पथ में सुन्दर स्थल आयें, ममता और माया प्रगट करने वाले मनुष्य मिलें, एवं नेत्र व चिन्ताकर्षक पदार्थ हों, तो भी उनसे डिगना अथवा भ्रान्ति में पड़ना नहीं चाहिये । विश्राम की यदि आवश्यकता पड़े तो उचित विश्राम अवश्य करलें ! सुन्दर स्थलों की सुन्दरता व मादकता को आंखों में भरले ! और आकर्षक पदार्थों के अञ्जन से उनको आंज ले; परन्तु किसी भी स्थिति में अपने को आसक्त करके अपने ध्येय को उसे न भूलना चाहिये । जब तक ध्येय की प्राप्ति न हो जाय तब तक उसको कहीं भी ममत्व की मृग-तृष्णा में सुख शान्ति की आशा लगाकर बैठना नहीं चाहिये । जिसका मनोबल दुर्बल एवं जिसका चित्त चञ्चल है वह ध्येय की निष्ठा को छोड़ कर मार्ग में पड़ने वाले आकर्षक स्थलों पर घर बनाकर बैठ जाता है । ईश्वर को भूलकर साधारण स्त्री पुरुषों में ममत्व करके आसक्ति की डोर में बंध जाता है, और ईश्वर के बदले आकर्षण करने वाले साधारण भौतिक पदार्थों पर न्यौछावर हो जाता है । परमार्थ के प्रकाश मय पथ का उनका प्रवास अधूरा ही रह जाता है ।

हरिद्वार के स्टेशन पर अधिक प्रतीक्षा न करनी पड़ी । थोड़ी देर के उपरान्त ऋषिकेश जाने वाली ट्रेन आ गयी । ऋषिकेश हरिद्वार से बहुत दूर नहीं है । गाड़ी प्रायः डेढ़ घण्टे में उधर पहुंच जाती है । मार्ग जंगल के बीच से जाता है । प्राकृतिक दृश्य बड़े सुन्दर और रमणीक हैं । पर्वत, पानी, पवन और वन के अतिरिक्त इस मार्ग में और कुछ नहीं मिलता है । हिमालय के प्राकृतिक सौन्दर्य से परिपूर्ण प्रदेश के दर्शन करने की इच्छा वाले प्रवासी को यहां पर अपूर्व आनन्द प्राप्त होता है । ज्यों-ज्यों गाड़ी इस मार्ग की रमणीकता के अन्तरगत अग्रसर होती है त्यों-त्यों प्रवासी का मन भी कल्पना के क्षेत्र में अग्रसर होता जाता है ।

अन्त में ऋषिकेश आ ही गया । स्टेशन छोटा है गाड़ी यहाँ से और आगे नहीं जाती है । स्टेशन से शहर जाने का रास्ता बिल्कुल सूना है सामने ऊंचे-ऊंचे पर्वत शिखर यात्रियों को स्वागत करने के लिए न जाने कब से प्रतीक्षा में खड़े दिखाई देते हैं । दृश्य की सुन्दरता प्रवासी के चित्र को लुभाये बिना नहीं रहती । अंग्रेजी कवि "वर्ड्स वर्थ" का हृदय जिस प्रकार इन्द्र धनुष को देखकर उछल पड़ता था उसी प्रकार यह सरस दृश्य हृदय को उछालने लगता है । ऋषिकेश और हरिद्वार की पारस्परिक स्थिति बिल्कुल ऐसी है जैसे गोकुल और मथुरा अथवा बेट और द्वारिका । ऋषिकेश का वातावरण गाँव जैसा है और हरिद्वार का नागरिक ।

ऋषि, मुनियों का स्मरण कराने वाली उस ऋषिकेश की पवित्र भूमि को मैंने प्रणाम किया । इस भूमि का स्पर्श कितना पावनकारी था । हो भी क्यों न ? जिस भूमि ने अपनी गोद में अनेकों तपस्वी, योगी, राजर्षि और महर्षियों को आश्रय देकर पोषण किया, जो अनेकों प्रस्थान और महा प्रस्थानों की साक्षी थी, जिसने आत्मिक उन्नति करने वाले अनेकों पुरुषों को शान्ति प्रदान किया, जिसमें

कितने ही महानुभाव जीवन के अन्तिम काल में परमात्मा से साक्षात्-कार करने व शान्ति पाने के लिए आये थे, जो व्यास, वाल्मीकि, शुकदेव, दत्तात्रेय, भगीरथ, शंकर, पाण्डव और शंकराचार्य जैसे पुण्य पुरुषों की चरणरज से पवित्र होकर अतीत काल से आज पर्यन्त अनेकों सन्तों, महात्माओं और साधारण पुरुषों के आकर्षण का केन्द्र बनी हुई है। जिसके दर्शनार्थ भारत के अतिरिक्त बाहर के लोग भी लालायित होकर दौड़े आते हैं। उसके अञ्चल में “गंगा और हिमालय” का जादू साधक को ही नहीं अपितु सर्व साधारण जन को भी आकर्षित करता है।

गंगा और हिमालय इन दो शब्दों के साथ भारत और उसकी संस्कृति का प्राचीन इतिहास ओत-प्रोत है अस्तु इन दोनों से सुशोभित ऋषिकेश की उस पवित्र भूमि में प्रवेश करते ही मेरा हृदय उमड़ पड़ा। जिसके दर्शनों का स्वप्न देखा करता था और नानाप्रकार की कामनायें किया करता था। आज ईश्वर की कृपा से उसे प्राप्त कर मेरे अमृतस्थल में आनन्द ही आनन्द छा गया। जीवन के मंगल महोत्सव में मैं पदार्पण कर रहा था, प्राचीन ऋषियों की परम्परा को जीवित रखने की योजना बना रहा था, मेरा हृदय भावना व महत्वाकांक्षा से परिपूर्ण था अस्तु नानाप्रकार के भावों का समागम हो रहा था।

स्टेशन से शिवानन्द आश्रम का मार्ग लम्बा था। उत्साह के कारण भूख व थकान की चिन्ता न थी इसलिये वह मार्ग सरलता से कट गया और अन्त में मैं शिवानन्द आश्रम पहुँच गया। मार्ग में कई सन्त साधुओं के मठ व आश्रम दिखाई पड़े एवं अनेकों साधु पुरुषों के दर्शन का लाभ भी मिला। ऋषिकेश के अन्तरगत अधिकाँस साधु पुरुषों के ही निवास स्थान हैं ऐसी धारणा मेरे मन में दृढ़ता प्राप्त कर गयी, गंगा के समानान्तर अङ्कित पगपथ अधिक सुन्दर जान पड़ा उसी पर मैं बढ़ता चला गया और अन्त में स्वामी शिवानन्द के आश्रम पहुँच गया।

इस आश्रम का स्थान एकान्त एवं रमणीक था। गंगा तट होने के कारण उसकी शोभा और भी बढ़ गई थी। किसी नवागन्तुक को प्रथम दर्शन में आकर्षित करने की क्षमता इस स्थान में निश्चयात्मक थी। आश्रम उस समय छोटा था। चार या पाँच मकानों के उस समुदाय को देखकर मुझे प्रसन्नता हुई। आश्रम के आफिस में प्रवेश कर मैंने एक सन्यासी महात्मा से वार्तालाप किया। स्वामी शिवानन्द जी के दर्शन हेतु मेरा मन आतुर था, परन्तु दर्शन व मिलन का समय ५ बजे सायंकाल के बाद ही था। समय का इतना अन्तर सुगमतापूर्वक आश्रमवासी संत महात्माओं के साथ वार्तालाप में बीत गया।

•••

स्वामी शिवानन्द से सम्पर्क

गंगा के पवित्र तट पर एक छोटा सा मकान था। उसकी बाहर की दालान में स्वामी शिवानन्द जी चक्कर लगा रहे थे। वहाँ जाकर मैंने उनका दर्शन किया। उनका मुख कुछ गम्भीर था। ऐसा जान पड़ता था कि वे कोई गहरी चिन्ता में डूबे हैं। उनका व्यक्तित्व अत्यन्त प्रभावशाली था। पहिली बार मैं ही देखने से मन पर प्रभाव पड़ा। उनको प्रणाम कर मैं उनके पास खड़ा रहा। उन्होंने मुझे पहिचान लिया। मेरे सविस्तार लिखे हुये पत्र का उन्हें स्मरण था। मैं उनके आश्रम में इतनी जल्दी आ पहुँचूँगा इसकी उनको कल्पना भी न थी। वे प्रसन्न तो अवश्य हुये परन्तु साथ ही साथ उनके मुख पर कुछ अन्यमनस्कता सी छा गयी। मेरे पत्र के उत्तर में उन्होंने मुझे उत्साहवर्धक पत्र लिखा अवश्य था, परन्तु उसमें अभी थोड़ी प्रतीक्षा करनी होगी। इस प्रकार का संकेत था और उचित समय आने पर वे मुझे बुलायेंगे, यह सूचना भी थी। “योग्य समय” कब और कैसे आयेगा? मेरा ध्यान इन शब्दों पर केन्द्रित न था। ये शब्द मुझे विवादास्पद प्रतीत होते थे। मुझे निश्चय था कि योग्य समय आ गया है, तदनुसार दीर्घकाल से जागृत रहकर मैं जीवन शुद्धि की साधना में रत हूँ इस बात का भान सुदूर के अपरिचित व्यक्ति को कैसे हो सकता है। पत्र द्वारा उसका दिग्दर्शन पूर्ण-

रूपेण हो जाना असम्भव था, अतएव ऋषिकेश पहुंचकर स्वामी शिवानन्द जी को अपनी परिस्थिति का अपरोक्ष ज्ञान कराने का मेरा विचार हुआ था। मुझे ऐसा विश्वास था कि मेरी मनोदशा व जीवन शुद्धि की साधना का परिचय पाने के उपरान्त स्वामी जी मुझे अपने आश्रम में रहने की अनुमति दे देंगे और “योग्य समय” आ गया है इसका भी विश्वास उनको तभी हो जायगा।

मेरा यह विचार सत्य नहीं था ! इसका आभास मुझे स्वामी जी के शब्दों से तब प्राप्त हुआ जब उन्होंने कहा “आप आ गये ? आपने बड़ी शीघ्रता की ! पत्र में मैंने आपको अभी प्रतीक्षा करने की सूचना दी थी।” मैंने उत्तर दिया “ठीक है, मुझे उसकी याद है। परन्तु मुझे इधर आये बगैर रहा न गया मुझे परमात्मा से साक्षात् करने की लगन लगी है और इसके लिए मैं सतत प्रयत्न किया करता हूँ—जगत में सब जगह मुझे परमात्मा की झाँकी हुआ करती है। परन्तु उसे साकार रूप में मैं देखना चाहता हूँ। समाधि दशा का अनुभव प्राप्त करके उसे अपने अन्दर प्रत्यक्ष करने की अथवा अनुभव करने की इच्छा पूर्ति के बिना मुझे शान्ति मिलना सम्भव नहीं। मेरा किसी अन्य विषय में मन नहीं लगता। यदि शान्त वातावरण में कुछ समय मुझे रहने को मिले तो मेरी इच्छा की पूर्ति हो सकती है और मुझे शान्ति मिल सकती है। अतएव यहाँ रहने का निश्चय करके ही मैं इधर आया हूँ।”

उनके चेहरे की गम्भीरता कुछ कम हो गई। उन्होंने मेरी बात को शान्तिपूर्वक सुना और उत्तर दिया, “आपकी बात समझ में आती है परन्तु यहाँ आश्रम में इस समय पूरी व्यवस्था नहीं है। इसलिए अभी थोड़ा समय आप गुजरात में व्यतीत कीजिये फिर बाद में मैं आपको बुला लूंगा।”

मेरे मन में यह विचार आया कि हो सकता है कि प्रभु मेरी

परीक्षा करते हों ? हिमालय में निवास का निश्चय करके मैं इधर आया अब खाली हाथ वापस जाऊँ यह कैसे हो सकता है ? रण में उतर आने के पश्चात् शत्रु की शक्ति का विचार कर पीछे हट जाना, और अन्त में नष्ट हो जाने की बात शूरवीर सैनिकों को शोभा नहीं देती । रण स्थल में अनेकों कठिनाइयों का सामना करना पड़ता है, विभिन्न अस्त्र शस्त्रों के प्रहार को दृढ़तापूर्वक रोकना पड़ता है । जो विपत्ति से डरे अथवा घाव देखकर घबरा जाय और वेदना का विचार कर जिसके पाँव काँपने लगें वह युद्ध किस प्रकार कर सकता है ? उसको विजय कैसे प्राप्त होगी ?

आत्मिक उन्नति का मार्ग भी इसी प्रकार ही समझना चाहिये उसमें भी विपत्ति, वेदना और कठिनाइयों का सामना करना पड़ता है । बाह्य शत्रुओं के स्थान पर अत्यधिक प्रबल आन्तरिक शत्रुओं का सामना करना पड़ता है । युद्ध से अधिक वीरता की आवश्यकता है । का-पुरुषों का इसमें काम नहीं । सुदृढ़ मनोबल वाले मानव ही इस अध्यात्मिक रण में विजय प्राप्त कर सकते हैं अस्तु कठिनाइयों का विचार कर वापस जाने की बात अनुपयुक्त है । कठिनाइयाँ हों तो भी धैर्य धारण कर साधक को आगे ही बढ़ना चाहिये । कवि की यह पंक्ति “न फिर हटेगा कभी जमीं से, कदम जो आगे बढ़ा चुके हैं” सूक्ष्म रूप से हृदय में लिख लेना चाहिये ।

स्वामी जी की वापस जाने की सलाह मुझे अच्छी न लगी, कुछ करुण स्वर में मैं उनसे कहने लगा, “मेरी भावना पूर्ण न हो और मन को शान्ति न मिले तब तक किसी भी संयोग में मेरा वापस जाने का विचार नहीं है । यहाँ पर मैं भावावेश में आकर, अथवा मन की तरङ्गों की कोई अन्य कल्पना के कारण नहीं आया हूँ ।” “माँ रूपी ईश्वर की कृपा प्राप्त करने के हेतु आये बिना रहा नहीं गया । कठिनाइयों का सामना करने की मेरी तैयारी है । अव्यवस्था ढूँढ़ निकालने

का प्रयत्न करता हूँ इसी लिए तो आश्रम में आया था यदि मुझे यहाँ स्थान न मिला तो आगे पहाड़ पर जाऊंगा और कहीं न कहीं स्थान ढूँढ़ कर ईश्वर की कृपा प्राप्त करने का प्रयास अवश्य करूँगा ।

“पहाड़ में कहाँ जाइयेगा, पहाड़ में आपको खाने को कौन देगा” ?
स्वामी जी तुरन्त बोल उठे ।

मैंने कहा “भोजन की मुझे कोई चिन्ता नहीं मैंने अपने को ईश्वर के हाथ में सौंप दिया है वही मेरी देखभाल करेंगे । इसका मुझे विश्वास है । जहाँ वह ले जायगा वहाँ जाऊंगा और यदि उसने खाने को न दिया तो भूखा रहूँगा और जब तक मेरे ध्येय की पूर्ति न होगी अपने विचारों पर अडिग रहूँगा ।”

मेरी बातों का स्वामी जी पर क्या असर पड़ा यह तो भगवान ही जाने परन्तु उन्होंने कहा “ठीक है अभी आराम करिये फिर देखा जायगा”, इसके उपरांत हम लोग अलग हो गए ।

ऋषिकेश में जाड़े की ऋतु में सायंकाल आते देर नहीं लगती अतः थोड़ी देर के उपरांत आकाश विभिन्न रंगों से युक्त हो गया — उस समय आश्रम में स्वामी कृष्णानन्द जी टाइप का काम करते थे, उन्होंने मुझे देखा और स्नेह पूर्वक मुझे अपने पास बुलाया । स्वामी जी एक अच्छे लेखक थे । धार्मिक व आध्यात्मिक प्रचार में उनको विश्वास था । वे एक अंग्रेजी मासिक पत्रिका निकालते थे और आश्रम की विभिन्न प्रवृत्तियों में उनका पूरा सहयोग था । मेरे साथ बातचीत कर स्वामी जी बड़े प्रसन्न हुए । उन्होंने अपने जीवन प्रवाह को कुछ बातें मुझे सुनाई । स्वामीजी मद्रास के युवक थे । उनके विचार व संस्कार बड़े ऊँचे थे उनके साथ स्नेह का नाता जोड़ने में मुझे अधिक देर न लगी । आश्रम में एक और मद्रासी युवा सन्यासी थे उनका नाम रामचन्द्र था । वे भी बड़े संस्कारी व पवित्र प्रकृति के महात्मा थे । उनसे

भी मेरा परिचय व स्नेह हो गया था उन्होंने भी मुझे प्रोत्साहन दिया ।

स्वामी शिवानन्द के जीवन का एक प्रसंग आश्रम वासियों से मुझे ज्ञात हुआ अभी थोड़े दिन पूर्व ही वह घटना हुई थी । बात यह थी कि स्वामी जी को, आश्रम संचालन व्यवस्था, अथवा अन्य किसी कारण द्वारा सहसा प्रबल वैराग्य उत्पन्न हो गया । अस्तु वे एक दिन बगैर किसी को कुछ सूचित किए आश्रम त्याग कर अज्ञातवास करने निकल गये । इस आकस्मिक घटना के कारण आश्रम के मन्त्री व अन्य सदस्य बड़े चिन्ता में ग्रस्त हो गये । उन्होंने एक विज्ञप्ति समाचार पत्रों में स्वामी जी के चित्र के साथ निकाली और अपना महान क्लेश स्पष्ट रूप से वर्णन करते हुये स्वामी जी का सविस्तार परिचय दिया, तत्पश्चात् सर्व साधारण जनता से विनती की कि जिसे स्वामी जी का दर्शन प्राप्त हो जाय अथवा जो उनके समागम में आ चुका हो वह कृपा करके तुरन्त अपना पता देकर आश्रम को सूचना भेज दे । उस विज्ञप्ति द्वारा स्वामी जी के प्रति प्रगाढ़ प्रेम का प्राकाट्य होता था ।

स्वामी जी आश्रम से बिना कहे सुने क्यों चले गये ? यदि इस बात पर विचार करें तो कहना होगा कि सम्भवतः वे आश्रम के वातावरण से खिन्न हो गये थे अथवा प्रवृत्ति-मय आश्रम का एक प्रकार का सांसारिक जीवन त्याग कर हिमालय में किसी विशेष साधना के निमित्त एकान्त का आश्रय लेने की इच्छा से आश्रम छोड़ कर चले गये थे । क्या सत्य था, यह तो स्वयं वही कह सकते थे, परन्तु यह प्रसंग अधिक काल न चला और आश्रमवासियों के सद्भाग्य से एक दिन स्वामी जी स्वयं ही आश्रम में वापस आये और उसका संचालन पूर्ववत् करने लगे । जब मैं आश्रम में पहुँचा था तब उपरोक्त प्रसंग को हुये थोड़ा ही समय व्यतीत हुआ था ।

आश्रम में अनेकों प्रवृत्तियाँ चलती थीं । उन सबको वहाँ पर

एकत्र देखकर मुझे यह विचार हुआ कि इस प्रकार का कार्यक्रम तो घर रहकर भी हो सकता है; उसके लिए आश्रम की क्या आवश्यकता है ? आश्रमों का जीवन केवल साधनामय होना चाहिये । इन विचारों के कारण सर्वप्रथम, आश्रम के प्रति मेरी धारणा, प्रतिकूल हुई—बाद में मुझे आभास हो गया कि ये विचार पूर्णतया परिपक्व नहीं हैं । साधक सब समय साधना में रत रहें यह प्रायः सम्भव नहीं है अतएव शेष समय का सदुपयोग यदि शुभ कार्यों में किया जाय तो कोई दोष नहीं । इससे दूसरों को लाभ ही होगा । निरन्तर साधना में रत रहने वाले उच्च कोटि के साधकों को छोड़कर यदि अन्य साधक समय का सदुपयोग करने के निमित्त प्रवृत्ति-परायण बने तो अच्छा है । इस विषय की अधिक चर्चा न करते हुये यहाँ पर केवल इतना ही कहना पर्याप्त होगा, कि स्वतन्त्र रूप से या आश्रम में रहकर, यदि कोई साधक प्रवृत्ति करता है तो इसे अनुचित नहीं समझना चाहिये, परन्तु यदि प्रवृत्ति के पाश में बंधकर उसने आत्मिक विकास की साधना की उपेक्षा की तो सभी व्यर्थ हो जायगा । आत्मिक-विकास का स्थान सर्वप्रथम है यह उसको सदैव स्मरण रखना चाहिये ।



अलौकिक अनुभव

अनेकों लोग आध्यात्मिकता के आधार पर प्रारम्भ किये गये आश्रमों की अन्य प्रवृत्तियों को देखकर मुँह बनाते हैं और टीका करते हैं, उनकी यह पद्धति उचित नहीं है। आश्रम, आध्यात्मिक साधकों को सर्वोत्तम अनुकूलता देने के उपरान्त यदि अपनी-अपनी क्षमता के अनुसार विभिन्न सामाजिक सेवा के केन्द्र भी बन जाय तो इसमें दूसरों को किस बात की आपत्ति हो सकती है। यदि साधकों के अतिरिक्त बाहर की जनता, कार्यक्रम के अनुसार, आश्रमों में सत्संग अथवा प्रवचनों के निमित्त जाय, तो वास्तव में यह अत्यन्त लाभदायक सिद्ध होगा और कोई कारण नहीं कि ऐसे कार्यों पर कोई मुँह बनाये अथवा टीका टिप्पणी करे। स्वामी शिवानन्द के आश्रम का विचार भी इसी दृष्टि-कोण से करना होगा।

गुजरात की भूमि छोड़कर इस आश्रम के लिए कितने उत्साह के साथ मैंने प्रस्थान किया था। कैसी-कैसी आशा लेकर ऋषिकेश की भूमि में आकर इस आश्रम में प्रवेश किया था परन्तु स्वामी जी के साथ वार्तालाप होने के पश्चात् मुझे प्रतीत हुआ कि परिस्थिति मेरी कल्पना-नुसार पूर्णतया अनुकूल नहीं है। फिर भी मुझे निराशा न हुई, मेरा उत्साह अखण्ड बना रहा। आश्रम में रहने का स्थान न मिले तो भी,

ईश्वर की कृपा प्राप्त करने के लिए सतत् प्रयत्न करने का निश्चय अटल था ।

हिमालय के पावन प्रदेश में आने की आज्ञा हुई है, तो जब तक शान्ति नहीं प्राप्त होती, तब तक वापस नहीं जाना है, यह मेरा अन्तिम निर्णय था, हृदय ईश्वर के अनुराग से परिपूर्ण था । शान्ति याचना चालू थी, उसी की पिपासा थी, उसकी तृप्ति के बिना छुटकारा न था ।

प्रारम्भ में आश्रम का वातावरण मुझे बहुत अच्छा न लगा परन्तु स्वामीजी व आश्रम के दो तीन अन्य सदस्यों के व्यक्तित्व से मैं प्रभावित होकर आश्रम में ही रहने लगा । अधिक समय तक वहीं पर रहने का लेख मेरे ललाट में लिखा न था । थोड़े दिनों बाद अपनी इच्छा से आश्रम से विदा लेकर गुजरात की पुण्य भूमि में मैंने फिर प्रवेश किया इस समय यहाँ पर यह कह देना अनुपयुक्त न होगा कि स्वामी जी के आश्रम की उस समय प्रारम्भिक अवस्था थी । साधकों को एक बार भोजन प्राप्त होता था और सायंकाल के भोजन के लिए नैपाली क्षेत्र में जाना पड़ता था ऐसी विषम परिस्थिति में भी, मेरे लिए दोनों समय भोजन की व्यवस्था थी । यह बात अवश्य उल्लेखनीय है कि स्वामी जी की अतिथि सत्कार की भावना अत्यन्त प्रशंसनीय थी ।

आश्रम निवास के दूसरे या तीसरे दिन सायंकाल, भोजन के उपरान्त मैं कीर्तन में शामिल हुआ । कीर्तन के लिए एक स्वतंत्र कमरे की व्यवस्था थी । उसमें भगवान श्रीकृष्ण का एक बड़ा तैलचित्र स्थापित था वहीं पर प्रतिदिन आश्रम के सदस्य रात्रि में एकत्रित होकर कीर्तन करते थे । स्वामी जी भी उस समय वहाँ पर उपस्थित रहते थे । कोई-कोई साधक भजन भी गाया करते थे । भजन-कीर्तन का वह कार्यक्रम बड़ा ही सुन्दर प्रतीत होता था । एकान्त एवं शान्त गंगा के तट पर भजन व कीर्तन का समागम श्रोताओं के हृदय में विभिन्न भावों की उद्भूति करता है । मुझे इसी कीर्तन कक्ष में रहने का स्थान

मिला था। अस्तु कीर्तन समाप्त होने के उपरान्त उसी खण्ड में मैं रात्रि को विश्राम भी करता था।

एक रात्रि को ऐसा प्रतीत हुआ कि आज हृदय की दशा कुछ भिन्न है। प्रेम और भक्ति के भावों से हृदय भर गया था। और मेरी लगन बार-बार मुझे प्रेरित करती थी कि जैसे भी हो शान्ति प्राप्त होनी चाहिये, और ईश्वर की कृपा का अनुभव करना चाहिये। समय बीतता जा रहा है, परन्तु इच्छा अभी ज्यों की त्यों है। आश्रम में अधिक रहने का विचार न था अतः सम्पूर्ण रात्रि जागरण करके प्रार्थना करने का मैंने निश्चय किया। प्रार्थना की शक्ति का मुझे विश्वास था। प्रभु के पास पहुंचने का और परमात्मा के साथ आत्मा का अनुसंधान करने का अमोघ साधन, मेरे पास केवल प्रेम था। उसी का आधार लेकर प्रतिदिन बार बार मैं प्रार्थना किया करता था और उससे अपने आप मेरी अनेक समस्याओं का समाधान सरल हो गया था।

मुझे आभासित होता था कि माता के रूप में ईश्वर मेरी रक्षा को सदैव तैयार है, मुझे किसी प्रकार की चिन्ता करने की कोई आवश्यकता नहीं है उसके समक्ष अपने हृदय को प्रार्थना के द्वारा प्रगट करने में मुझे आनन्द आता था। मैंने जान लिया था कि इस असार संसार में मैं असहाय व अकेला नहीं हूँ। मेरे ऊपर माँ के रूप में ईश्वर का वरद हस्त हमेशा रहता है मुझे सहायता करने को वे सदैव तत्पर रहती हैं और वही मेरा योगक्षेम वहन करती हैं; वे प्रतीक्षण मेरे पास रहती हैं। मुझे हियालय प्रवास की प्रेरणा प्रदान करने की शक्ति, वे ही हैं।

मेरा ऐसा विश्वास था कि अन्ततोगत्वा मुझे शान्ति अवश्य प्राप्त होगी, इसी कारण से उस दिन रात भर जागरण कर प्रार्थना करने का निर्णय कर लिया था। कार्तिक मास होने के कारण जाड़ा विशेष था और मेरे पास ओढ़ने का वस्त्र पर्याप्त न था। परन्तु रामचन्द्र नामक स्नेही व साधू पुरुष ने मेरे पल्ले साधारण कम्बल के ऊपर

एक और अच्छा कम्बल लगाने को दिया जिससे पूरी तरह शीत का निवारण हो गया—भजन खण्ड में एक छोटा सा दीपक जलता था उसके प्रकाश में भगवान् कृष्ण का चित्र एक अन्य रंग धारण करता था। उसे देख-देख कर मैंने उत्कट प्रार्थना प्रारम्भ कर दी उस समय की मेरी दशा क्या थी ? कोई विशेष शक्ति तो थी ही नहीं, साथ-साथ ज्ञान, भक्ति, योग, सात्विकता संयम सबका अभाव था। मेरी अवस्था भी कम थी अतएव अनुभव भी कच्चा था। फिर भी मैं ईश्वर की कृपा की कामना करता था और मुझे विश्वास था कि मैं अबोध बालक हूँ अस्तु मैं अपना कार्य अवश्य करेगी और मेरी इच्छा की पूर्ति होगी; यदि मैं ज्ञानी योगी या भक्त बनकर ईश्वर की कृपा की याचना करता तो शायद मेरी अभिलाषा की पूर्ति न होती। परन्तु मैं तो निर्बल और निराधार था और यह भी सुना था कि “निर्बल के बल राम” हैं। यह मानते हुए मैंने केवल प्रार्थना का आधार लिया था। कोई योग्यता न होते हुये मेरी श्रद्धा अडिग थी। क्योंकि योग्यता का विचार आते ही मेरी स्मृति-पट पर तुलसीदास की उन प्रसिद्ध पंक्तियों का भाव उपस्थित हो जाता था—

अजामिल, गीध, व्याध, इनमें कहो कौन साध,
पंछी को पद पड़ात, गणिका को तारी।
दीनन दुख हरन देव, सन्तन हितकारी ॥

अजामिल, गीध, व्याध और गणिका जैसे कितनों को प्रभु ने तारा है, कितनों को उन्होंने शान्ति दी है तो क्या मुझे न देंगे ? मेरा हृदय बार-बार यही प्रश्न करता था और उत्तर भी तुरन्त मिलता था। “अवश्य देंगे” प्रभु की कृपा निश्चय होगी। वे तो दीन दुखी को मदद करने वाले और सबके हितकारी हैं।

इस प्रकार की विभिन्न भावनाओं और प्रार्थनाओं से मन ओत-प्रोत था। प्रेम की प्रबलता के कारण नेत्रों में अवरल अश्रुधारा बहती थी।

अत्यन्त करुण अवस्था थी, दीपक भी इसी समय बुझ गया। तदुपरान्त मैं निद्रा देवी की गोद में चला गया। कितनी देर तक मैं सोता रहा मैं नहीं कह सकता, परन्तु जब आँख खुली, तो बाहर देखा तो अंधकार छाया हुआ था और पवन की साधारण सनसनाहट के अतिरिक्त नीरवता थी, लगभग रात्रि के दो या तीन बजे होंगे। कम्बल ओढ़कर पद्मासन लगाकर प्रार्थना व ध्यान करना मैंने फिर से प्रारम्भ कर दिया। अभी शान्ति मिली न थी। कब मिलेगी यही चिन्ता मन में व्याप्त थी! थोड़ी देर ध्यानावस्था में रहने के उपरान्त मुझे शरीर का भान न रहा। कितने समय मैं इस अवस्था में रहा, कुछ ज्ञात नहीं, परन्तु शरीर भान भूल जाय ऐसा अनुभव जीवन में मुझे प्रथम बार वहीं पर हुआ। उस साधारण समाधि के अनुभव से जब मैं सचेत हुआ तब मन बिल्कुल शान्त था अभी मैं पद्मासन लगाये शान्ति का अनुभव कर ही रहा था कि एक अन्य अलौकिक अनुभव प्राप्त होने लगा। मुझे ज्ञात हुआ कि जैसे कोई हृदय के भीतर से बोलता है परन्तु शब्द सुमधुर व स्पष्ट बाहर के आने वालों सदृश थे। कौन बोलता है? मुझे इसका कोई ज्ञान न था, इतना अवश्य प्रतीत होता था कि शब्द अन्तस्थल की गहराई से आते थे। मैंने सुना “आप नित्य सिद्ध हैं, नित्य बुद्ध, हैं नित्य मुक्त हैं, संसार के जिस स्थल पर आपकी इच्छा हो जाय, जहाँ चाहें रहें और जो चाहें वह काम करें माया अपना कुछ भी बिगाड़ नहीं सकती माया के बन्धनों में आप कभी न पड़ेगे। अतएव चिन्ता छोड़ दीजिए और जहाँ चाहे विचरण करिये।” शब्द कितने कर्ण-प्रिय थे। बुद्ध भगवान् के दर्शन के पश्चात् जागृत अवस्था का यह दूसरा अनुभव था इस अनुभव के कारण मन को अखण्ड और अपार शान्ति मिली। अन्तस्थल में असीम अद्भुत आनन्द प्रस्फुटित हो गया। मुझे आभास हो गया कि जीवन धन्य हुआ और हिमालय की यात्रा सफल हो गयी। ईश्वर ने मेरे ऊपर कृपा की वर्षा करदी। यह अनुभव मेरे लिए बिल्कुल नया था। शास्त्रों में मैंने

आकाशवाणी और आत्मा की आवाज के बारे में पढ़ा था। क्या यह अनुभव भी उसी प्रकार का है ? उसे जैसा चाहे वैसा कहें उससे उसकी वास्तविकता में कोई अन्तर नहीं पड़ता। उसका प्रभाव पूर्ण रूपेण स्थित रहता है। उस समय उससे मुझे जो आनन्द प्राप्त हुआ उसका वर्णन करने को मेरे पास शब्द नहीं हैं। अन्तस्थल में ईश्वर की कृपा की वर्षा हुई उसी प्रकार बाहर भी वही अनुभूति हुई। मैंने उसको डायरी में नोट करके ऊषा के प्रकाश की प्रतीक्षा में प्रातः काल के आगमन का शेष समय उसी प्रकार बैठे बैठे अत्यन्त शान्ति पूर्वक बिताया।

• • •

ऋषिकेश से प्रस्थान

प्रकाश हो जाने पर मैं कमरे का दरवाजा खोलकर बाहर निकला, ब्राह्ममुहूर्त का वह अलौकिक अनुभव अभी ताजा ही था। ऐसा प्रतीत होता था कि मानों मेरा नया अवतार हुआ हो। अंग-अंग में आनन्द व्याप्त था। ईश्वर ने हिमालय की पवित्र भूमि में प्रवेश करते ही मेरे ऊपर कृपा की, उससे मेरा जीवन धन्य बन गया। हृदय गद्गद् हो उठा। पिछले दिनों की चिन्ता उद्विग्नता एवं आकुलता सभी मिट गयी थीं और शान्ति एवं निश्चिन्तता का प्रादुर्भाव हो गया था कितनी अधिक मधुर और मञ्जुल थी वह अवस्था ?

बाहर निकल कर मैंने गंगाजी की ओर दृष्टि डाली। सामने दृश्य अत्यन्त आकर्षक था। मेरे ऐसे न जाने कितने साधक उसके तट प्रदेश में निवास कर शान्ति प्राप्त कर चुके होंगे। परमार्थ के पवित्र पथ के न जाने कितने प्रवासियों को उसने प्रेरणा दी होगी और उसके सेवन करने वाले न जाने कितने श्रेयमार्गी पूर्णता में प्रतिष्ठित हुये होंगे। युगों से उसका प्रवाह अनवरत चल रहा है और वे माता बन कर अपने बालकों को बुलाकर पाल रही हैं। उसमें ईश्वरीय शक्ति का दर्शन कर मैंने उसे मन ही मन प्रणाम किया। फिर आनन्द के प्रवाह में आकर वर्षा ही में टहलते-टहलते आत्मा व परमात्मा की एकता का गीत गाना

प्रारंभ कर दिया। स्वामी जी संयोग से उस समय मेरे पास आ पहुँचे। प्रतिदिन प्रातःकाल खड़े-खड़े वे मेरी खोज खबर ले जाया करते थे परन्तु आज की मेरी दशा में उनको विशेषता अवगत हुई। इतने बड़े आनन्द का उदय कहाँ से हो गया? यह बात उनकी समझ में न आ सकी। उनकी जिज्ञासा की पूर्ति का प्रयत्न करते हुये मैंने कहा—“आज इस स्थान में ब्राह्ममुहूर्त के लगभग एक अपूर्व अनुभव हुआ है, और समाधि दशा का भी स्वाद मिला है उससे मुझे विश्वास हो गया कि मैं मुक्त और बुद्ध हूँ मुझे कोई प्रकार का बन्धन नहीं है। उस अनुभव के आनन्द में मैं ओतप्रोत हूँ।”

मेरा कथानक सुनकर स्वामी जी बड़े प्रसन्न हुए और थोड़ी सी बातचीत करके वे चले गये। मुझसे स्नेह करने वाले दो तीन सन्यासी महात्माओं ने जब मेरे अनुभव की बात सुनी तो वे आश्चर्य चकित हो गये। वे बहुत काल से भजन खण्ड में बैठते थे और वर्षों से आश्रम में रहते थे फिर भी आज तक वे ऐसे अनुभव से वंचित रहे थे। मुझे आश्रम में केवल दो दिन रहने का अवसर प्राप्त हुआ था इतने थोड़े समय में ऐसा अनोखा अनुभव कहाँ से प्राप्त हो गया यह उनके लिए एक जटिल प्रश्न बन गया जो बहुत समय तक ज्यों की त्यों रहा। समस्या में जटिलता कुछ भी न थी। बात सीधी है कि आश्रम में आने के बहुत पहिले से मेरी मन में शान्ति की भावना जाग्रत थी और अधिक समय से मेरी साधना चल रही थी हृदय शुद्धि का प्रयास बहुत पहिले प्रारम्भ हो चुका था अस्तु मुझे उस दिन का अपूर्व अनुभव आकस्मिक न था, उसके पीछे काफी तैयारी एवं भूमिका प्रस्तुत थी। आज तक के कथानक का स्मरण करने से इस बात की पुष्टि हो जायगी। साथ ही साथ ईश्वर की महिमा का पार कौन पा सकता है? उसकी लीला अनन्त है। वह, जिसे चाहे उसे, जैसा चाहे वैसा, अनुभव, जब चाहे तब दे सकता है। वह अकारण कष्ट, कब किसे और क्यों, क्या करता है? यह कौन कह सकता है।

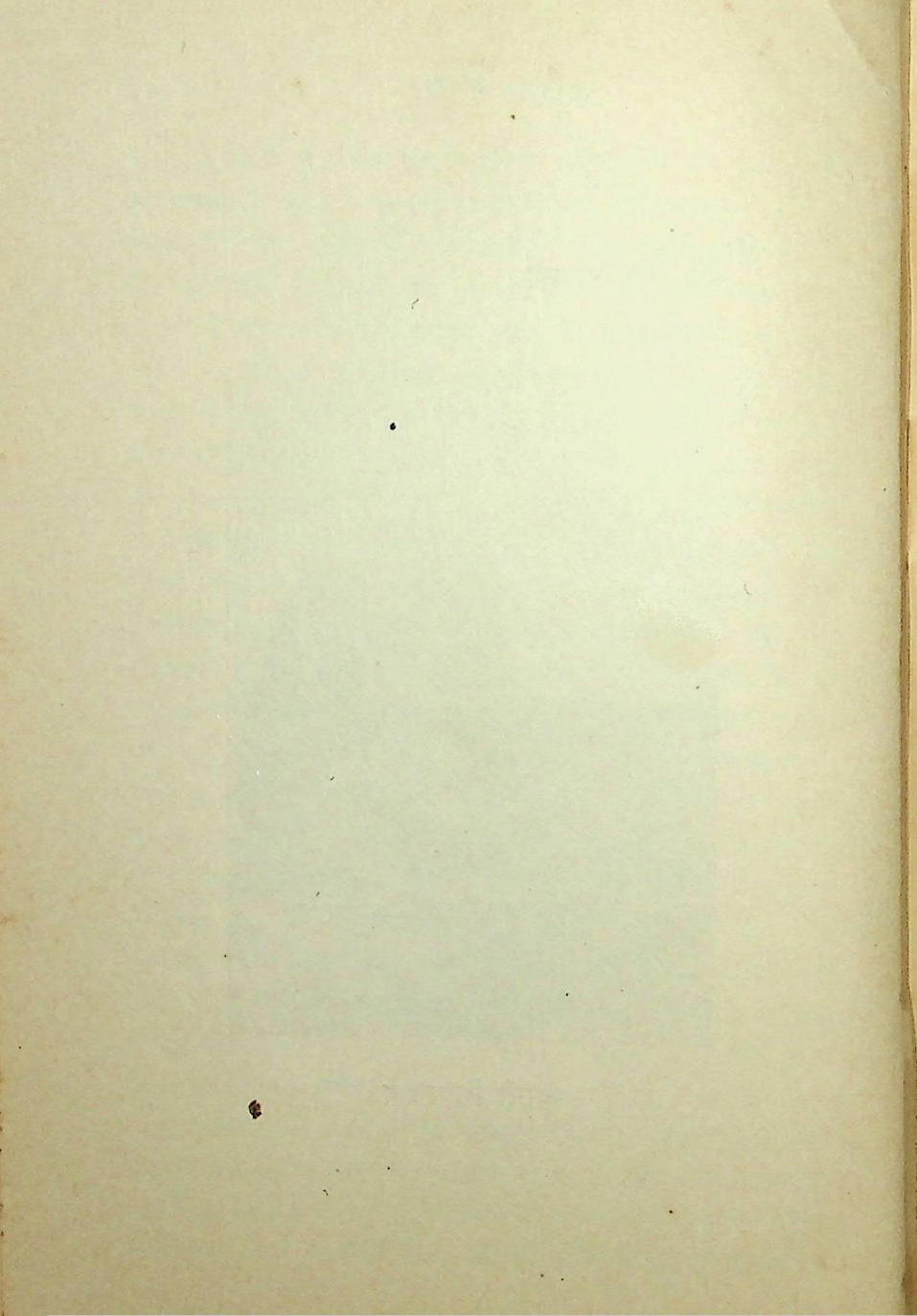
मुझे प्रतीत हुआ कि इस अलौकिक अनुभव में मेरे जीवन का कायाकल्प हो गया है। आश्रम का वातावरण अधिक अनुकूल न था। स्वामीजी के साथ पहिले दिन का वार्तालाप अधिक उत्साहवर्धक न था। फिर भी महत्व की बात तो यह थी कि मुझे शान्ति की प्राप्ति हुई। आश्रम में आने का प्रयोजन भगवत् कृपा से सफल हुआ ज्ञात होता था अतः आश्रम में अधिक रहने की आवश्यकता न थी। अस्तु बड़ौदा के रमण भाई को पत्र द्वारा सारी स्थिति अवगत करा कर वापस बड़ौदा जाने के लिए आवश्यक धन मंगाया। मनीआर्डर मिलने तक आश्रम में ही प्रतीक्षा करने का मैंने निर्णय किया। दो तीन सन्यासी जो मुझसे पहिले बहुत प्रसन्न न थे अब मुझसे बड़ा प्रेम करने लगे उनकी इच्छा थी कि मैं आश्रम में ही रहूँ तदनुसार वे समझाने लगे "ऐसे सुन्दर वातावरण में रहने से आपको आनन्द मिलेगा। यहां रहने से आपको हर प्रकार का लाभ होगा। भविष्य में आप स्वामी विवेकानन्द की तरह विदेशों में जाकर धर्म प्रचार कर सकेंगे और यशस्वी बन सकेंगे।" इस प्रकार के आदरणीय सुझाव अन्य आश्रम के कर्मचारी भी देने लगे। परन्तु मेरा विचार दृढ़ था। ईश्वर की इच्छा थी कि मुझे गुजरात प्रदेश में वास करना है तभी तो वह ऐसे विचार उत्पन्न करता है। यही मेरी धारणा थी। जब अन्न जल गुजरात का लिखा हो तो ऋषिकेश में रहना क्यों कर सम्भव हो सकता है। यदि ऋषिकेश के शिवानन्द आश्रम में ही मुझको रहना होता तो आज मेरी कोई दूसरी दशा होती। क्या होती? यह कौन कह सकता है? परन्तु आश्रम जीवन से मुझे मुक्त करने की ईश्वर की इच्छा थी और वही मेरे लिए हितकर सिद्ध हुई।

शिवानन्द जी के आश्रम के निकट एक रामतीर्थ लाइब्रेरी है, जब तक मैं उधर आश्रम में रहा, तब तक बराबर मैं उस वाचनालय में जाकर बैठा करता था। वहाँ पर बैठते ही स्वामी रामतीर्थ के जीवन प्रसंग याद आया करते थे और तब मेरा हृदय अनुराग में आप्लावित

श्रेय और साधना



स्वामी शिवानन्द



होकर विचित्र प्रवाह की अनुभूति करता था ।

[२]

अन्त में मनीआर्डर आ गया । स्वामी जी ने अन्तिम बार मुझसे आश्रम में रहने का आग्रह किया, किन्तु मेरी इच्छा प्रतिकूल थी अतएव मैंने उत्तर दिया—“यहां आने का मेरा उद्देश्य पूरा हुआ इसमें मुझे सन्देह नहीं मुझे सन्तोष है अस्तु अब तो मैं गुजरात ही वापस जाऊंगा । मुझे प्रत्येक स्थल में एवं प्रत्येक वस्तु में परमात्मा की अनुभूति हो रही है अतः अब जहाँ रहूंगा वहाँ मुझे आनन्द रहेगा ।” स्वामी जो मेरे उत्तर से कुछ खिन्न से हो गए उन्होंने कहा—“तो फिर यह धन संग्रह किस लिए करते हो रुपयों को गंगा जी में फेंक दो” । स्वामी जी के इस दुराग्रह को देखकर मैंने उत्तर दिया—“रुपये, गंगा जी एवं फेंकने वाला सब एक ही है फिर कौन, किसको कहाँ फेंके । और फेंके भी तो किस उद्देश्य से । यह रुपया “ब्रह्म” तो बड़ौदा पहुंचायेगा उसे फेंक देने से उसका अनादर होगा और भेद भाव की प्रतीति होगी ।” स्वामी जी के चेहरे पर मुसकान दौड़ गयी उनका स्वभाव बहुत सरल व नम्र था वे एक संतपुरुष व सन्त थे आगे चलकर उनकी ख्याति और अधिक बढ़ गयी । उनका आश्रम अनेक जिज्ञासुओं के आकर्षण का केन्द्र बन गया भारत में ही नहीं अपितु विदेशों में भी उनकी ख्याति फैल गई । भारत के सन्त पुरुषों की गणना में उनका विशेष स्थान था ।

आश्रम के जीवन में लगभग मेरे १५ दिन व्यतीत हो गये परन्तु यह १५ दिन मेरे लिये विशेष महत्व के साबित हुये । इन्हीं दिनों के अन्तर्गत मैंने बहुत कुछ देखा, सुना व जाना । और अब मैं एक शक्ति सम्पन्न सफल प्रवासी के समान वापस जा रहा था । आज वर्षों बाद मैं यह दृढ़ता पूर्वक कह सकता हूं कि उन दिनों के मेरे वे अनुभव बहुत उत्तम थे परन्तु अन्तिम न थे ।

ईश्वर का साक्षात्कार और पूर्ण दशा की प्राप्ति के लिए मुझे विशेष साधन और अनुभव प्राप्त करने की आवश्यकता थी, यह बात मुझे पूर्णतया अवगत थी फिर भी उस अलौकिक अनुभव का प्रभाव मेरे ऊपर अत्यधिक हुआ था । जिस शुभ दिन मुझे यह सौभाग्य प्राप्त हुआ उसी दिन मैंने उसकी स्मृति में एक कविता बनाई । काव्यकला का प्रदर्शन करने में असमर्थ, मेरा वह गीत, कम से कम मेरे उस समय के हृदयोद्गारों का प्राकट्य करने में अवश्य सफल होगा । उस गीत को गुनगुनाते मैंने ऋषिकेश की पुण्य भूमि से प्रस्थान किया, यह रहा वह गीत—

परमानन्द

हता संशयो सर्व उड़ी गया रे ,
छुट्या सर्व जुठां हतां ते बड़ो रे ।
रह्यो जंगले के महेले भले ने ,
सदा मुक्त मूर्ति मने बंधना छे ।

(२)

सदा मुक्त ने बुद्ध चैतन्य मूर्ति ,
स्वरूपस्थ कूटस्थ ने शान्ति मूर्ति ।
रह्यो जंगले के महेले भले ने ,
सदानन्द मूर्ति मने बंधना छे ।

(३)

हतो सृष्टि आरम्भ माने छुं आजे ,
थई भिन्न ने भिन्न पाछो रहीश ।
रह्यो जंगले के महेले भले ने ,
सदा मुक्ति मूर्ति मने बंधना छे ।

(४)

मथे फैंक योगीन्द्र जे शोधवाने ,
वली भक्त , ते छे शरीरे महारे ।
रह्यो जंगले के महेले भले ने ,
सदानन्द मूर्ति मने बन्ध ना छे ।

(५)

न छे मृत्यु मारे न थी बन्धनो ये ,
न थी लेपनो भिन्न, मारां थकी रे ।
हूं तो सच्चिदानन्द दैवी सदाये ,
सदा मुक्त मूर्ति मने बन्ध ना छे ।

(६)

लई गेरुवा घूमूं शाने गुफाये ,
रही आश्रमे सेवुं शाने रूपों ने ।
सदा शुद्ध छे, सर्व साथे ज ऐक्य ।
मने आत्म थी, अन्य लागे हवेना ।

• • •

शांताश्रम से सम्पर्क

उन दिनों रात दिन यही भावना रहती थी कि सिद्ध योगी बनना है। उत्कटता पूर्ण सिद्ध योगी बनने के लिए मन्थन व साधन की खोज जारी थी। जन्म, मृत्यु, जरा और व्याधि से परे होना है, पञ्च महाभूत का स्वामी बनना है, अखण्ड आत्मानन्द में प्रतिष्ठित होना है। यदि इसकी पूर्ति के लिए भगीरथ प्रयत्न करना पड़े अथवा दीर्घकाल तक कोई साधना करनी पड़े तो भी क्या हानि ! उसे करना ही है ? मेरी तैयारी अब इसी प्रकार की थी। गंगा को धरातल पर अवतरित करने के निमित्त भगीरथ का असाधारण प्रयत्न था। उसी प्रकार साधना की सिद्धि रूपिणी भागीरथी को अपने जीवन में प्रवाहित करने के हेतु यदि कठिन तपस्या करनी पड़े और विपत्ति भी सहना पड़े तो क्या हताश होना अथवा डिग जाना चाहिये ? नहीं कदापि नहीं।

वास्तव में बात यह थी कि उस समय तक मुझे समाधि अवस्था की सिद्धि प्राप्त न थी। मां का साक्षात् दर्शन अभी तक दूर था। प्राप्त हुई शक्ति नितान्त सीमित थी इस त्रुटि को मैं जानता था अतः उसे दूर करने की मेरी प्रबल इच्छा थी। यही कारण था कि विशेष साधना की ओर मेरा ध्यान आकर्षित हो गया था। परन्तु केवल आकर्षण से क्या हो सकता है। योग की उच्च प्राणायाम इत्यादिक क्रियाओं के अभ्यास के लिए, एक ऐसे महान् योगी की जो उन सब योगिक

क्रियाओं में पारंगत हो, इस समय बड़ी आवश्यकता थी। उसी के पथ-प्रदर्शन के अनुसार कार्य करने पर सिद्धि प्राप्त हो सकती थी और योग की प्राप्ति भी तभी हो सकती थी। श्रीरामकृष्ण देव जैसे महापुरुष की आवश्यकता थी। मैंने इसी खोज में काफी प्रयास किया। जितने भगवा वस्त्रधारी दिखाई पड़े उनसे मिलने का मेरा स्वभाव हो गया था। परन्तु आँख ठहरे या चित्त प्रसन्न हो जाय ऐसी विभूति के दर्शन न हो सके। योग की कठिन साधना के लिए प्राणायाम की बड़ी आवश्यकता थी। परन्तु इसका ज्ञाता कहाँ किस प्रकार मिले ?

यह प्रसिद्ध है कि प्रत्येक रोग के साथ-साथ उसकी औषधि का भी जन्म होता है तदनुसार मेरी चिन्ता अधिक समय न चली। यद्यपि मुझे रामकृष्ण जैसे सिद्ध पुरुष से भेंट नहीं हुई फिर भी मेरी भावनाओं को समुचित संतोष दे सकें, ऐसे एक महात्मा मुझे ठीक समय मिल गये।

एक बार बड़ौदा में चौखंडी योगाश्रम के संचालक श्री गिरधर भाई के साथ मैं योग विषय पर यूँ ही वार्तालाप कर रहा था उस समय वहाँ एक अपरिचित बालक आया और कहने लगा—“यहाँ रणमुक्तेश्वर महादेव में एक सन्यासी महात्मा रहते हैं, वे प्राणायाम बहुत अच्छी तरह जानते हैं।” इतना कह कर वह चला गया, एक क्षण भी न रुका।

यह बालक कौन होगा पहिले तो इसे कभी नहीं देखा था, कोई भी हो इस समय तो उसने मेरे लिए देवदूत का काम किया। जीवन में जब निराशा के बादल घिर आये तो उस समय वह बालक आशा का दूत बनकर आ गया। भगवत् कृपा इसी प्रकार अलौकिक और आकस्मिक होती है और उसकी वर्षा उचित समय पर होती है। जो व्यक्ति उस कृपा की कामना करते हैं और ईश्वर के चरणों में मन

लगाकर हृदय के अन्तस्थल में उससे प्रेम करते हैं वे ही उसकी कृपा के पात्र बनते हैं और उसी पर कृपा की वर्षा भी होती है। शरणागत को संभालना भगवान् का सर्वप्रिय प्रथम उद्देश्य है। यही सब विचार करते हुये मैंने पास में स्थित रणमुक्तेश्वर महादेव के मन्दिर का मार्ग पकड़ लिया, उस समय मेघ आच्छादित थे, वर्षा भी पड़ रही थी, भीगते-भीगते मैं उसी मार्ग पर चल दिया। बालक के बताये हुये उस महात्मा पुरुष के दर्शन को मेरा हृदय व्याकुल था।

[२]

रणमुक्तेश्वर महादेव का स्थल गोयागेट की ओर था वहाँ पर पहुँचने में मुझे अधिक विलम्ब न हुआ, स्वामी जी मन्दिर की एक कोठरी में रहते थे। उनका नाम शांताश्रम था परन्तु अधिकांश लोग उनको मगर स्वामी जी के नाम से जानते थे। वे देखने में शान्त और तेजस्वी मुखाकृत के थे। भगवा वस्त्र से ढके हुये एक बिछौने पर उनका आसन लगा था।

शरीर पर भगवा वस्त्र धारण किये थे परन्तु ऊपर का अंग खुला था, पीछे कोने में दण्ड स्थापित था। प्रथम दर्शन से ही वे दण्डी स्वामी हैं यह बोध हो जाता था। उनके सामने लकड़ी की एक छोटी पेटी थी और बगल में थोड़ी पुस्तकें भी थी जिससे अनुमान होता था कि वे विद्वान हैं एवं अध्ययन में रुचि रखते हैं। उनके पीछे कमण्डल रखा था। वातावरण बिल्कुल साधारण, शान्त और प्रेरणात्मक था। प्रथमतः स्वामी जी ने मेरे रहने का स्थान पूछा फिर उस समय और कोई विशेष वार्तालाप न हुआ। थोड़ी देर में संध्या आ गयी तब उन्होंने कहा—“अब सायंकाल का समय हो गया घर जाकर संध्यावन्दनादि से निवृत्त होना चाहिये।”

स्वामी जी गुजराती जानते थे। बंगाल में जन्म होने पर भी गुजरात

अधिक काल से निवास कर रहे थे अतः गुजराती भाषा बोलने का उनको पूर्ण अभ्यास था परन्तु फिर भी उनकी बात चीत हिन्दी भाषा में होती थी ।

उस समय बाहर आकाश में संध्या के स्वर्णिम रंग प्रस्फुटित हो रहे थे पक्षी अपने-अपने नीड़ों की ओर त्वरित गीत से प्रस्थान कर रहे थे, स्वामी जी भी अपने पड़ोस वाले कमरे में नित्य कर्म करने की तैयारी करने लगे अस्तु मैंने उन्हें प्रणाम करके विदा माँगी ।

मेरा स्वामी जी के साथ यह पहिला साक्षात्कार था । वर्षा बिल्कुल समाप्त हो गई थी । आकाश निर्मल होने लगा और मेरी चिंता भी स्वामी जी के दर्शन पाकर कुछ कम होने लगी थी । मेरे अन्तस्थल में आशा का एक विचित्र अभिनय होने लगा उसमें से पैदा होने वाले जगत का दर्शन भविष्य में होना था परन्तु अभी तो उस जगत की केवल कल्पना मात्र ही करनी थी । बीज छोटा और साधारण होता है, परन्तु उसी में से आश्चर्यचकित करने वाले विशालकाय वृक्ष की उद्भूति होती है । अग्नि की एक छोटी चिनगारी कितनी साधारण होती है परन्तु उसमें से ज्वलन्त ज्वालाओं की सृष्टि होती है — अनेकों बार बड़े-बड़े दावानल भी उसी से उत्पन्न हो जाते हैं इसी प्रकार सतसंग प्रथमतः थोड़ा व साधारण भी हो, तो भी भविष्य में जीवन को परिवर्तित कर देने में अत्यन्त प्रभावशाली सिद्ध होता है ।

अनुभवी पुरुषों का यह कथन ध्रुव सत्य है । स्वामी जी के इस प्रथम परिचय से मेरा उत्साह बढ़ गया । आत्मिक उन्नति में विश्वास करना अब मेरे लिए सुगम हो जायगा ऐसा मुझे विश्वास हो गया । अगर भगवत की कृपा न होती तो इतनी शीघ्रता से महान पुरुष का परिचय न प्राप्त हो सकता था । इसी उमंग में चलता चलता बड़ा लम्बा रास्ता समाप्त हो गया । कब घर आ गया मुझे जान न पड़ा ।

[३]

उसके उपरान्त रणमुक्तेश्वर महादेव में प्रतिदिन स्वामी जी से समागम करने का मैंने नियम बना लिया था। प्रतिदिन एक बार और कभी-कभी तो दो बार उधर अवश्य जाता, स्वामी जी अधिक बात न करते थे। बात करने की अपेक्षा शान्त बैठे रहने का उनका स्वभाव अधिक था फिर भी प्रेम, उत्साह और आशा के कारण मैं उनके पास प्रतिदिन जाता और शान्तिपूर्वक बैठा रहता था। मौन रहने का कार्य सरल नहीं है। अधिकतर मनुष्य मौन से घबराता है और वार्तालाप पसन्द करता है। एक जगह मौन बैठे रहना शायद ही किसी को रुचिकर हो, परन्तु मुझे अकेले रहने, फिरने और बैठने का अभ्यास पहले से ही था अतएव जो काम अन्य लोग तपश्चर्या का समझते थे वह मेरे लिये सरल था। यह बात सत्य है कि मौन में आनन्द और आकर्षण दोनों का समावेश होता है।

स्वामी जी का मौन मुझे आकर्षक लगता था। उनके पास चुप-चाप बैठे रहने में आनन्द आता था। स्वामी जी के सम्बन्ध में एक बात बड़ी आश्चर्यजनक सुनाई दी और स्वामी जी से पूछने पर उन्होंने उसका समर्थन भी किया। स्वामी जी मगर स्वामी के अद्भुत नाम से प्रसिद्ध थे उसका कारण यह था कि एक बार सिनोर में नर्मदा नदी में वे स्नान करने गये, नर्मदा नदी के तट पर एक महादेव जी के मन्दिर में वे वर्षों से रहते थे और प्रति दिन स्नान वहीं करते थे। एक दिन ऐसी विचित्र घटना उपस्थित हो गयी कि स्नान करते समय स्वामी जी कुछ आगे निकल गये ! नर्मदा नदी का जल वहाँ पर बहुत गहरा था और उसमें अनेकों मगर रहते थे सहसा एक मगर ने स्वामी का हाथ पकड़ लिया। साधारण मनुष्य ऐसी दशा में बहुत घबड़ा जायगा परन्तु स्वामी जी न डरे उनको तैरना आता था और प्राणायाम के तो पूर्ण अभ्यस्त थे ही। वे मगर के साथ लड़ते-लड़ते अदम्य साहस पूर्वक

किनारे की ओर आने लगे । किनारे पर मनुष्यों को भीड़ यह कौतुक देख रही थी । तट पर पहुँच कर मगर ने हाथ छोड़ तो दिया परन्तु सारा मान्स नोच ले गया । स्वामी जी वच गये परन्तु शरीर में मगर का विष फैलने लगा और उनकी दशा चिन्ताजनक हो गयी । उनको अस्पताल में भरती कराया गया वहाँ बहुत दिनों तक उनकी परिचर्या होती रही, और अन्त में वे अच्छे हो गये परन्तु हाँथ में दोष आ गया वह एक ठूँठ जैसा वेकार हो गया था । यह कहा जाता है कि इस घटना के उपरान्त गांव वालों ने उस मगर को समाप्त कर दिया । ईश्वर की कृपा से स्वामी जी के प्राण वच गये परन्तु उसके बाद भाग्यवशात् एवं शरीर रक्षा के हेतु उन्होंने नर्मदा का तट छोड़ दिया । मगर की इस घटना के उपरान्त उनका नाम “मगर स्वामी” पड़ गया ।

• • •

दीक्षा

नर्मदा तट पर निवास करने के प्रथम, मगर स्वामी हिमालय में ऋषिकेश, उत्तर काशी आदि स्थानों में रहते थे। कभी-कभी वे उनकी चर्चा कर देते थे। उनके भोजन का प्रबन्ध मन्दिर में था अतएव वे भिक्षा को नहीं जाते थे।

एक बार स्वामी जी ने अपने स्थान पर मुझे अपने पीछे की तरफ रखी हुई किसी वस्तु को लाने का आदेश दिया। मैं तुरन्त खड़ा हो गया और उसे लाने के लिए आगे बढ़ा, स्वामी जी का विस्तर बीच में था उसे बचाकर बगल से मैं जा सकता था परन्तु जल्दी में मैंने सीधे स्वामी जी के विस्तर पर पैर रख कर आगे निकल जाने का प्रयत्न किया। मेरी यह क्रिया देखकर स्वामी जी आवेश में आकर बोले “अरे यह क्या ? आप किस आश्रम में हैं और मेरा कौन सा आश्रम हैं ? इतना भी आपको ज्ञात नहीं ?”

उनको क्रोधित देखकर मैंने विचार किया कि वे कुछ अभिमानी हैं इस कारण उनका वह व्यवहार मुझे अच्छा न लगा किन्तु बाद में जब मुझे आध्यात्मिक अनुभव और व्यवहार के क्षेत्र में अधिक जानकारी प्राप्त हुई तो मुझे स्पष्ट हो गया कि मेरे विचार उचित न थे।

संत महत्माओं के समागम में आकर उनकी बाह्य क्रियाओं की

गतिविधि को देखकर मनुष्य कई बार अनुचित धारणा बना लेता है जिसे वह जीवन पर्यन्त दृढ़ता से पकड़े रहता है, यह बात नितान्त अनुचित है। महात्माओं की कोई भी क्रिया देखकर उस पर अनुचित धारणा बना लेने के प्रथम उसका स्पष्टीकरण कर लेना परमावश्यक है। उनके वर्तवि अथवा उनके वचनों में यदि कभी कोई शंका का समावेश हो जाय तो उसका तुरन्त समाधान कर लेना परमावश्यक है। इस पद्धति का आधार बहुत थोड़े ही व्यक्ति लेते हैं, अधिकांश तो अपनी पूर्व निर्धारित धारणानुसार निर्णय करके द्वेष करने लगते हैं और परिणाम स्वरूप अपनी ही हानि करते हैं।

महात्माओं के छोटे व्यवहारों को देखकर उससे विभिन्न निष्कर्ष निकाल कर किसी भी धारणा को स्थान देने के पूर्व, विवेक द्वारा उसके रहस्य को समझने का प्रयास करना चाहिए। यदि इसी घटना में विवेक द्वारा फिर विचार करें तो स्वामी जी के शब्दों को सहानुभूति का आश्रय लेकर समझ सकते हैं और तभी उचित निष्कर्ष भी निकाला जा सकेगा। जिसकी परम उच्च अवस्था में स्थिति हो अथवा जो विधि निषेध के ज्ञान से परे हों ऐसे महात्मा उपरोक्त घटना के प्रसंग में कोई शब्द विरोध में न प्रगट करेंगे। जड़ भरत जैसे ब्राह्मनिष्ठ संत के व्यवहार में यही दृष्टिगोचर होगा परन्तु यदि कभी वे मर्यादा स्थापित करने के निमित्त कोई विरोधाभास की प्रक्रिया का प्रदर्शन कर भी दें तो उनके लिए वह अशोभनीय नहीं कहा जा सकता है इसमें कोई सन्देह नहीं है। संत महात्मा इस प्रकार के व्यवहार अपनी प्रतिष्ठा, पूजा या बड़प्पन के विचार से नहीं करते, उनका ध्येय तो मर्यादानुसार आचार विचार की शुद्धि तथा व्यवहार में सुव्यवस्था की जाग्रति उत्पन्न करने का होता है। इसमें कोई सन्देह नहीं कि संत महात्माओं का यह भी एक कर्तव्य है कि समाज और संस्कृति के संरक्षक की तरह यदि कहीं व्यवहार में त्रुटि अथवा अवगुण दिखाई पड़े तो उनके निराकरण की वे चेष्टा करें। इसी उत्तरदायित्व के कारण उनको गुरुदेव, जगत

गुरु इत्यादि नामों से विभूषित किया जाता है। कितने ही मनुष्य संत महात्मा या बड़े मनुष्यों के आसन पर स्वतन्त्रता पूर्वक बैठे जाते हैं और उनकी आज्ञा लिए बिना उनके व्यवहार में आने वाली वस्तुओं को अपने प्रयोग में लाते हैं। उनके वस्त्र तथा बर्तनों का उपयोग करते हैं यह प्रथा अनुचित है, इसमें बहुत बड़ा व्यवहार दोष है। यह बात एक विवेकी मनुष्य को समझ लेना चाहिए कि संत महात्मा या आध्यात्मिक विकास सम्पन्न मनुष्य उच्च है, पूज्य है, और उसका स्थान विशिष्ट है, उसके साथ व्यवहार के नियम भी भिन्न हैं, उनके पालन में धर्म की मर्यादा निहित है। अगर इस दृष्टिकोण से देखा जाय तो स्वामी जी के आसन पर पैर रखना मेरे अथवा किसी के लिए भी उचित नहीं कहा जा सकता।

परमार्थ पथ के प्रवासी साधकों अथवा अन्य साधारण मनुष्यों को भी शीघ्रता पूर्वक कोई उतावला निर्णय नहीं लेना चाहिये, जिससे वे स्वयं भ्रांति में पड़ जाय। यहाँ पर इस प्रसंग का उल्लेख करने का अभिप्राय यह है कि छोटी-छोटी बातों का अनादर नहीं करना चाहिये क्योंकि कभी-कभी छोटी बातों में बड़े-बड़े रहस्य समाये रहते हैं, साधक या विवेकी पुरुष को प्रत्येक छोटे या बड़े प्रसंग का भली प्रकार मन्थन कर उसमें से नवनीत ढूँढ़ निकालना चाहिये, तभी जीवन की साधना भी विकसित होगी और सफल बनेगी।

स्वामी जी को संस्कृत तथा अंगरेजी का समुचित ज्ञान था। वे योग/भ्यासी थे। उन्होंने योग के ऊपर एक ग्रंथ भी लिखा था। सब कुछ होते हुये भी स्वामी जी निराभिमान और प्रेम की मूर्ति थे। योग की विविध क्रियायों को सीखकर उनमें पारंगत होने का मेरा विचार था। इस सम्बन्ध में कई बार स्वामी जी से वार्तालाप भी हो चुका था योगशास्त्र में मैंने खेचरी मुद्रा के विषय में पढ़ा था अतः उससे प्राप्त होने वाले लाभ का भी मुझे थोड़ा बहुत ज्ञान था यही कारण था कि मैं खेचरी मुद्रा सीखने के लिए बड़ा लालायित था।

खेचरी मुद्रा से समाधि सरल हो जाती है और अखण्ड यौवन एवं आकाशगमन इत्यादिक क्रियायें भी उसी के उपरांत सिद्ध होती हैं। ये सारी बातें मुझे अवगत थीं अस्तु एक दिन मैंने स्वामी जी से इस विषय की चर्चा छेड़ दी। उन्होंने बातों-बातों में कहा “मैंने खेचरी मुद्रा का अभ्यास किया है किसी समय आपके सामने करके बतलाऊंगा तब आप को विश्वास होगा, उसी समय समाधि भी लगाकर आपको दिखाऊंगा।”

उसके थोड़े दिनों के उपरांत उन्होंने मेरे सामने खेचरी मुद्रा करके बताया तब मुझे उसका रहस्य अवगत हुआ परन्तु समाधि की अवस्था देखने का सौभाग्य उस समय मुझे प्राप्त न हो सका। इस प्रसंग से मुझे पूर्णतया आभासित हो गया कि स्वामी जी का स्वभाव साधना के प्रयोग को प्रथमतः दिखाकर फिर उसे समझाने का था। ऐसा स्वभाव बहुत ही कम देखने में आता है।

[३]

स्वामी जी का स्वभाव बहुत ही शांत था। योगाभ्यास सीखने की मेरी लगन को वे जानते थे। अचानक एक दिन वे इस प्रकार बोले “आप को दीक्षा देने का विचार करता हूं। “नवरात्रि” की पञ्चमी ? का दिन बहुत अच्छा है उस दिन प्रातःकाल आइयेगा।” अकस्मात् उनके श्रीमुख से ऐसे वाक्य सुनकर मुझे अपार आनन्द हुआ कथनानुसार यह स्मरण नहीं कि वह तिथि पञ्चमी थी या अन्य कोई अस्तु इसी कारण से पञ्चमी शब्द के आगे ? प्रश्न का चिन्ह लगा है।

नवरात्रि के आगमन की प्रतीक्षा न करनी पड़ी। एक दिन पूर्व स्वामी जी ने मुझे सूचना दी। दीक्षा समय कुछ न कुछ साथ में लाना चाहिये ऐसा प्रमाण है। फल अथवा फूल से भी काम चल जायगा। आप क्या लाइयेगा, दो फल लेते आइयेगा वस इतना पर्याप्त होगा।

दूसरे दिन प्रातः काल लगभग एक दर्जन फल लेकर मैं स्वामी जी के पास गया। उनको प्रणाम करके उनके पास बैठ गया। कुछ समय के उपरान्त उन्होंने मुझे अन्दर के कमरे में बुलाया वहाँ अपने सामने पड़े हुए एक आसन पर मुझे बैठने का संकेत किया। दीक्षा की क्रिया तीन बार मंत्र सुना कर सम्पन्न हुई तत्पश्चात् उन्होंने प्राणायाम की विधि बताई और अन्त में मुझसे एक मुद्रा करा कर प्रश्न किया—“कैसा अनुभव होता है?” मेरा उत्तर था—“प्रकाश केवल प्रकाश दिखाई देता है।” यह सुनकर स्वामी जी बोल उठे—“तब तो तुम्हारी कुण्डलिनी जाग्रत है, फिर क्या बात है, अब सब काम बन जायगा।” मुझे स्वामी जी के इन शब्दों से प्रसन्नता तो हुयी परन्तु उसका तात्पर्य क्या है और उसमें क्या रहस्य है यह समझ में न आया। जो भी हो मैं नहीं कह सकता पर इतना तो अवश्य हुआ कि मेरा उत्साह साधना की प्रगति में दूना बढ़ गया।

दीक्षा के पहले, तीन चार मास से, मैंने हल्दी व नमक का सेवन बन्द कर दिया था। तेल, मिर्च, इमली तो पहिले से ही व्यवहार में न लाता था। पानी का उबला हुआ शाक खाता था। दूध या घी यदि गाय का प्राप्त होता तो लेता अन्यथा उसके बिना ही काम चलाता था। स्वामी जी के कथनानुसार प्राणायाम के लिए आहार में इस प्रकार का संयम अत्यन्त आवश्यक था।

दीक्षा के उपरान्त अधिक परिश्रम से मैंने साधना करना प्रारम्भ कर दिया। एक नई आशा, नवजीवन, तथा योगी जीवन की प्रेरणा की नई किरण मुझे प्राप्त हुई थी। ईश्वर पर अवलम्बित होकर मुझे भविष्य का मार्ग तय करना था। यह पंथ प्रकाश मय एवं अपने मूल स्वरूप के पूर्णत्व को अधिक से अधिक प्रकाशित करने वाला अथवा प्रकाश के प्रकाश से भी परे परमात्मा की प्राप्ति कराने वाला निश्चयात्मक

था । इसमें कोई विवाद नहीं । धैर्य, साहस और उत्साह से महत्वा-
कांक्षा युक्त ध्येय को लेकर इस पंथ पर अग्रसर होना चाहिये, जब
तक पूर्ण सन्तोष की प्राप्ति न हो और जब तक परमात्मा की पूर्ण
कृपा की वर्षा न हो ।

...

पुनः ऋषिकेश

मगर स्वामी की आज्ञा थी कि मुझे प्रतिदिन एक हजार जप अवश्य करना चाहिये । ऐसा न करने से पाप लगेगा । उनका कहना था कि जप बहुत उत्तम और उपयोगी होता है । अधिक से अधिक मात्रा में उसका लाभ लेना चाहिये । उससे बड़ी सहायता प्राप्त होती है । हजारों की संख्या में जप करना बड़ा ही उत्तम होता है । संख्या की चिंता किये बिना, यदि ऐसी अवस्था की अभिलाषा, भगवत् कृपा के आशीर्वाद रूप में प्राप्त हो जाय कि जप स्वतः सतत् हुआ करे तो अति उत्तम है । उपरोक्त सभी बातें तो समझ में आ गयीं परन्तु पाप की बात समझ में न आयी । यदि किसी दिन उसकी एक हजार की संख्या पूरी न हुई तो उसको पाप किधर से लग गया पाप लगने की कल्पना भी ठीक नहीं परन्तु न जाने क्यों पाप का विचार प्रगट कर स्वामीजी क्या कहना चाहते थे ? समझ में न आया यह बात तो बुद्धि के अन्तरगत आती है कि जीवन अमूल्य है अस्तु प्रत्येक दिन वर्ष मास व प्रति पल भी अमूल्य हुआ अतएव समय का समुचित सदपयोग कर प्रभु के स्मरण में अधिकांश अपने मन को लगाना चाहिये । प्रभु के स्मरण के समय का सदपयोग होता है इसके अतिरिक्त का समय व्यर्थ चला जाता है । अतएव बुद्धिमान पुरुष को जीवन की प्रत्येक स्वर्णिम पल को प्रभु परायण करने का अभ्यास करना चाहिये । इस प्रकार करते-करते मन स्थिर और

एकाग्र हो जाता है अन्तःकरण की शुद्धि होती है और उसमें प्रभु प्रेम की पवित्र ज्योति प्रकाशित हो जाती है। प्रेम का बाहुल्य होने से प्रभु का दर्शन हो जाता है और जीवन कृतार्थ हो जाता है। इस प्रकार के यथार्थ विवेक द्वारा प्रतिपादित साधन के लिए नाम स्मरण या अन्य कोई पद्धति का आधार लेने की आवश्यकता होती है। तभी साधक साधना का मूल्य समझ सकेगा और उसमें उसकी रुचि बढ़ेगी, तभी वह अपनी समग्र शक्ति उसकी सिद्धि प्राप्त करने में लगा देगा। नानाप्रकार के प्रलोभनों से विचलित न होकर विभिन्न कठिनाइयों का सामना करते हुए वह अपने पंथ पर तभी अग्रसर हो सकेगा।

अतएव यह नितान्त आवश्यक है कि भय अथवा प्रेम या प्रलोभन को साधना का निमित्त न बनाकर केवल पवित्र विवेक को ही प्रेरणात्मक पृष्ठभूमि बनाने की आवश्यकता है। भय अथवा प्रलोभन की दुर्बल नींव पर आधारित कोई भी कला मन्दिर सुदृढ़ नहीं बन सकता उसकी अवधि अल्पकालीन होती है। इस पर भी कितने ही बड़े साधक इन दुर्बल स्तम्भों का आधार लेने में नहीं हिचकते हैं। कितने आश्चर्य का विषय है ? “अमुक धर्म का काम न करने से, अमुक बात में विश्वास न रखने से हानि होगी, अपराध होगा और पाप के भागी होंगे। इतना ही नहीं वरन् नरक की यातनातें सहनी पड़ेगी। अमुक काम करने से स्वर्ग या वैकुण्ठ की प्राप्ति होगी” इस प्रकार की अच्छड़ी और बुरी सूचना पद्धति से प्रेरित होकर वे लाभ-हानि के दृष्टिकोण को ही धर्म व साधना का मुख्य उद्देश्य समझते हैं। मुझे इस प्रकार की विचार पद्धति बिल्कुल पसन्द नहीं है। लोगों को धर्म व साधना के उपकारी काम में लगाना है, यदि हो सके तो प्राणिमात्र को प्रभुपरायण बना देना है, परन्तु उसके निमित्त धाक, धमकी, अत्याचार इत्यादि का आधार नहीं लेना है। भय, क्रोध और धिक्कार के राक्षसी उपकरणों से उस पवित्र हेतु की सिद्ध नहीं करनी है। इस प्रकार के साधन से प्राप्त

हुई सिद्धि की अवधि ही क्या ? ऐसी दुर्बल नींव पर स्थित वह “सिद्धि-मन्दिर” न जाने कब और किस समय गिरकर धूलि-धूसरित हो जाय ।

साधक को तो प्रेम और विवेक का आश्रय लेना चाहिए और निर्भीकता की भूमि पर धर्म एवं साधना के पाये बनाने चाहिये तभी उन पायों पर रुकी हुई इमारत मजबूत होगी, अडिग होगी और अक्षय होगी, इसमें कोई सन्देह नहीं । उस समय के मेरे जीवन में इसी प्रकार के विचार उठा करते थे । पाप लगने के भय की मान्यता को मिथ्या मानकर जीवन को प्रभु परायण बनाने का एक पवित्र कर्तव्य समझ कर मैंने अपने मन को नाम-जप और ध्यानादि की साधना में पिरो दिया ।

[२]

मेरी दशा भी कुछ विचित्र सी थी ! जप द्वारा निश्चयात्मक क्या प्राप्त हो सकेगा इसका मुझे आभास न था । ईश्वर को माँ के रूप में स्मरण करने की मेरी विशेष रुचि थी अतएव माँ के साक्षात् दर्शन के लिए किसी अमोघ मंत्र की मुझे आवश्यकता थी ।

“मगर स्वामी” का दिया हुआ मंत्र निर्गुण उपासना का था मुझे प्रथमतः इस विषय में विचार हुआ था, फिर बाद में मैंने सोचा कि ईश्वर की इच्छानुसार जो मंत्र मिला वही अच्छा है । उसी को जपते-जपते माता के दर्शन और समाधि के अनुभव प्राप्त किये जा सकेंगे । माँ की कृपा प्राप्त करने के लिए मेरा मन व्यग्र था और समाधि के अनुभव की भी इच्छा थी । ध्यान के अन्तरगत मेरा मन स्थिर व शान्त रहता था, उसमें दूसरे विचारों का समावेश नहीं होता था और मन भटकता भी नहीं था, परन्तु फिर भी शरीर का भान अवश्य रहता था, यह भान यदि न रहे और मन ध्येय में अथवा परमात्मा में डूब जाय

तो समाधि हो गयी, ऐसा कहा जाता है, और ऐसा ही मैंने भी सुना था। मन की शान्त अवस्था का साधारण अनुभव मुझे ऋषिकेश में स्वामी शिवानन्द जी के आश्रम में एक बार प्राप्त हो चुका था परन्तु वह चिरस्थायी न था। उसको स्वाभाविक व चिरस्थायी करने का मेरा अनवरत प्रयास था और इसी निमित्त मैं यथासम्भव परिश्रम किये जा रहा था। ऋषिकेश का प्राकृतिक सौन्दर्य से परिपूर्ण प्रदेश मुझे बार-बार याद आता था। मुझे यह आभासित होता था कि यदि इस प्रदेश में रहने का और साधना करने का सौभाग्य प्राप्त हो जाय तो जीवन की गति पलट जाय और इच्छित वस्तु की प्राप्ति अवश्य हो जाय। हिमालय के पावन प्रदेश में बार-बार जाना कहां हो सकता है। भगवत् इच्छा से ही हिमालय प्रवास व निवास का भाग्योदय हो सकता है।

भगवद् इच्छा प्रतिकूल न थी ऐसा ज्ञात होता था कि मानों उन्होंने मुझे फिर से हिमालय प्रदेश में जाने के लिए योजना बनायी हो। बात ऐसी थी कि ऋषिकेश में देवकी बाई की एक गुजराती धर्मशाला है। उसकी संचालिका श्रीमती देवकी बाई का निधन कुछ समय पूर्व हो गया था। धर्मशाला के ट्रस्टी बम्बई में रहते हैं उनको जबसे यह समाचार ज्ञात हुआ तब से धर्मशाला का प्रबन्ध करने के लिए एक सुयोग्य मैनेजर ढूँढ़ निकालने का उत्तरदायित्व उन लोगों के सिर आन पड़ा। उन ट्रस्टियों में से एक का परिचय लोहाण बोर्डिंग के मैनेजर शास्त्री जी से बहुत अच्छा था। उन्होंने शास्त्री जी को, एक सुयोग्य विश्वासी व्यक्ति जो मैनेजर का काम कर सके, खोजकर सूचित करने को लिखा। मैं उस समय शास्त्री जी की अध्यक्षता में काम करता था अस्तु शास्त्री जी को मेरा ध्यान था और उनसे पारस्परिक स्नेह भी था। मैं एक बार ऋषिकेश होकर आया हूँ, यह उन्हें ज्ञात था अतः साधारणतया सर्व प्रथम उनको मेरा ही विचार आया। उन्होंने अपना प्रस्ताव मेरे सामने रखा और मेरी सम्मति माँगी, उत्तर में मैंने “हाँ” कहकर अपनी अनुमति दे दी।

ईश्वर की कृपा बिना ऐसा अनुकूल अवसर अनायास कैसे उपलब्ध हो सकता है ? ऋषिकेश में नौकरी मिल जाने से दो कार्य एक साथ बनते थे । प्रथमतः आजीविका का प्रश्न हल होता था दूसरे साधना के लिए अनुकूल स्थान तथा वातावरण की समस्या भी हल होती थी फिर यदि इसको ईश्वर की कृपा न कहा जाय तो और हो भी क्या सकता है ? शास्त्री जी ने बम्बई के ट्रस्टियों को सूचना भेज दी और मुझे बम्बई में उनके सामने उपस्थित होने का समाचार प्राप्त हो गया । इस प्रकार के संयोग द्वारा एक बार फिर, बहुत समय उपरांत, बम्बई के दर्शन हुए । बम्बई में महालक्ष्मी पर एक ट्रस्टी श्री मंगल सेठ के निवास स्थान में मैं ठहरा । मुझे देखकर सेठ जी बड़े प्रसन्न हुए । दूसरे ट्रस्टियों से भी मेरा परिचय हो गया । धर्मशाला के बहीखाते के सम्बन्ध में उन्होंने मुझे बहुत सी बातें बताई । ऋषिकेश जाने का मार्ग व्यय अन्तिम दिन मुझे मिल गया, प्रस्थान का दिन भी निश्चित हो गया । तब मैंने सबसे बिदा ली और बम्बई से चल दिया ।

बड़ौदा वापस आकर मैं माता जी से मिलने गया । उनको सभी बातें अवगत कराई । यह बात न थी कि इतनी दूर जाने की उनको सरलता से अच्छी लगती परन्तु फिर भी उन्होंने कोई विरोध न किया यह उनकी विशेषता थी । मेरे कोई निर्णय का अभी तक उन्होंने विरोध नहीं किया है । मैंने उनसे कहा—“ऋषिकेश बहुत सुन्दर स्थल है अस्तु कोई चिन्ता की बात नहीं कुछ समय के उपरांत वहाँ के वातावरण से परिचित होने पर आपको भी वहीं पर बुला लूंगा ; वहाँ आपको बड़ा आनन्द मिलेगा । ”

इस सम्बन्ध में मैंने “मगर स्वामी” से भी बातचीत की वे अत्यन्त प्रसन्न हुये, उन्होंने कहा — “ऋषिकेश बहुत उत्तम स्थान है वहाँ रह कर प्रेम से साधना करिये, मैं ऋषिकेश और उत्तर काशी में बहुत दिन रह चुका हूँ यदि जाने का संयोग हुआ तो मैं अपने निवास स्थलों

को दिखाऊंगा ।” उन्होंने मुझे हिम्मत दिलाते हुए कहा—“आप प्रसन्नता से प्रस्थान करिए ।”

मेरी यात्रा का निर्णय हो चुका था । दीपमालिका के उग्रान्त मैंने यात्रा आरम्भ कर दी, आनन्द समाता न था । यह सोचकर कि अब मैं फिर ऋषिकेश जा रहा हूँ । पहिले केवल साधक के रूप में गया था अबकी बार साधक का ही रूप नहीं है अपितु सेवा का भाव भी साथ में है । ईश्वर की कृपा कितनी अपार थी । आश्चर्य यह था कि दोनों समय शीतकाल के प्रारम्भ में ही मुझे हिमालय जाना पड़ा । भगवान कब किससे क्या कराते हैं कौन जान सकता है ।

बसुधारा का वैरागी

ऋषिकेश में एक दिन जब मैं भोजन के उपरान्त कुछ विश्राम कर रहा था तो सहसा मेरे कमरे का दरवाजा खुला और एक काले कलूटे युवा साधू ने अन्दर प्रवेश किया। मैंने उन्हें आदरपूर्वक आसन दिया। मैंने विचार किया कि वे गुजराती होंगे इसलिए इस धर्मशाला में किसी के बताने पर चले आये हैं और मुझे मैंनेजर समझ कर मुझसे बातचीत करना चाहते हैं।

उनसे वार्तालाप होने पर ज्ञात हुआ कि मेरी कल्पना सत्य थी। वे महात्मा मूल सौराष्ट्र के निवासी थे। वाल्यकाल में ही घर बार छोड़ कर निकल गये थे। उस समय उनकी अवस्था अधिक से अधिक २० वर्ष की होगी। उनके शरीर पर केवल एक लगोटी थी जिसके ऊपर काली कफनी थी। सिर पर छोटी जटा और कान में कुण्डल उनकी शोभा बढ़ाते थे। मुखाकृति काली थी परन्तु उनके नेत्र बड़े तेजस्वी थे। थोड़ा परिचय होने के उपरान्त मैंने उनसे प्रश्न किया—“इस समय आप का निवास कहां है, आप कहाँ से आते हैं।” उन्होंने उत्तर दिया—“बसुधारा रहता हूँ और वहीं से आ भी रहा हूँ।” बसुधारा बद्रीनाथ धाम से ६ मील दूर है। “वहाँ किस तरह पहुँच गये”—मेरी जिज्ञासा बढ़ी। “संस्कार के कारण”—उन्होंने उत्तर दिया। “धूमते-धूमते बद्रीनाथ

पहुँचा। वहाँ की सुन्दरता को देखकर वहाँ रहने की इच्छा हुई। मन्दिर के पट बन्द हो गये थे फिर भी वहीं रुका रहा। दो तीन दूसरे साधू मिल गये जो उधर रहते थे उनकी सूचना से उनके साथ मैं वसुधारा गया और पास की एक गुफामें रहने लगा।” “वहाँ तो बड़ी ठण्ड होगी, खाने पीने का साधन भी कुछ नहीं वहाँ गुजर कैसे होती होगी”—मैंने प्रश्न किया। “वात सत्य है” वे कहने लगे “परन्तु ऐसी कोई विशेष कठिनाई नहीं है। वसुधारा के समीप एक प्रकार की जड़ी बूटी उपलब्ध है जिसके सेवन से ४० दिन तक भूख नहीं लगती है वहाँ के अनुभवी महात्माओं ने मुझे वह बूटी बताई और उसकी सेवन विधि का ज्ञान भी कराया अतएव मेरी चिन्ता दूर हो गयी। बद्रीनाथ के प्रवेश में ऐसी विभिन्न प्रकार की बूटी पायी जाती हैं। एक और बूटी है जिसकी भस्म बनाकर सेवन करने से और रस का लेप शरीर में लगाने से इतनी अधिक गर्मी उत्पन्न होती है कि बरफ पर नंगे पैर चलने से भी शीत का असर नहीं होता है यदि बरफ पर सो जाय तो भी ठण्ड न लगे। इसी बूटी की सहायता से अनेकों सन्त महात्मा सीधे बर्फालि मार्ग से होकर बद्रीनाथ से केदारनाथ आते जाते हैं।” इस प्रकार अपने कथन को समाप्त कर उन्होंने कन्धे पर लटकती हुई एक थैली निकाली और मुझे दोनों प्रकार की जड़ी बूटियाँ दिखाई। मैं बड़ा प्रसन्न हुआ। उन्होंने कहा कि बूटी के सेवन से भूख तो अवश्य नहीं लगती परन्तु अधिक समय के उपरान्त शरीर में कुछ दुर्बलता अवश्य आ जाती है। अतएव बिल्कुल एकान्त प्रदेश में निरुपाय होने से ही उद्योग करना चाहिए। उन्होंने फिर मुझसे कहा, “आप मेरे साथ चलिए हम लोग वसुधारा में रहेंगे मैं आपको जड़ी बूटियाँ बता दूँगा।” मैंने कहा—“अभी तो अनुकूलता नहीं यदि भगवान ने चाहा तो भविष्य में उस ओर जाने पर आपसे अवश्य मिलूँगा।” मेरे मन में साधारण औषधि के अन्यथा ईश्वर के प्रेम रूपी औषधि का मूल्य अधिक था और उसी की मुझे आवश्यकता थी उसी को पाकर जीवन धन्य बन

जाता है इसकी मुझे जानकारी थी ।

अत्यन्त आग्रह के उपरान्त मैंने उनको लगभग पाव भर दूध पिलाया फिर उसके बाद वे विदा हुए । आज तक मुझे तीन बार वद्री-नाथ जाने का सौभाग्य प्राप्त हो चुका है, एक बार वसुधारा भी गया था परन्तु उस आकर्षक, तेजस्वी युवा विरक्त के दर्शन प्राप्त न हो सके । इस समय उनका शरीर है या नहीं, यदि है तो कहाँ है ? इस बात को भगवान ही जाने, परन्तु उस बालयोगी को स्मरण कर अन्तस्थल में अपार आनन्द उमड़ आता है । प्रभु की कृपा बिना ऐसे बाल ब्रह्मचारी योगी पुरुष का दर्शन इस युग में असम्भव है, दुर्लभ तो है ही ।

त्रिकालज्ञ महात्मा से भेंट

भारतवर्ष में वालयोगी की बात कोई नवीन नहीं है। संस्कृति के ऊषाकाल के आरम्भ से आज तक इस देश में वाल ब्रह्मचारी और योगी पुरुष होते रहे हैं। संसार के पदार्थों में मन न लगाकर बाल्यावस्था में ही प्रभु से प्रीति करने वाले भाग्यवान इस देश में असंख्य होते रहे हैं। भारत की आत्मिक साधना का यह एक उज्ज्वल प्रकरण है। सनकादि ऋषि से लेकर नारद, शुकदेव, जड़भरत दत्तात्रेय, अष्टावक्र और गार्गी इत्यादिक प्राचीन काल के एवं आधुनिक युग के शंकराचार्य, ज्ञानेश्वर और उनके भाई बहन, और एकनाथ, वर्तमान समय के विवेकानन्द इत्यादि अनेक उदाहरण इस प्रकरण में लिखे जा सकते हैं। उनके नाम तो बहुत प्रसिद्ध हैं परन्तु जिनका उल्लेख हमारे पिछले प्रकरण में किया गया है वैसे अन्य कितने प्रसिद्ध वालयोगी पुरुष इस देश में विचरण तथा निवास करते होंगे इसकी संख्या प्राप्त करना कठिन है। जिस देश में ध्रुव व प्रह्लाद जैसे भक्त व धर्मपरायण बालक उत्पन्न होते हों उस देश पर परमपिता जगदीश्वर की अनुकम्पा है ; उसकी संस्कृति का विनाश कभी न होगा यह निश्चित है।

प्रभु की कृपा बिना ऐसे वालयोगी सन्तों के दर्शन का सौभाग्य मिलना कठिन है। मेरे हृदय में सच्चे सन्तों के प्रति अपार प्रेम है। सच्चे सन्तों के दर्शन की इच्छा मेरे मन में सदैव रहती है। मैं यहाँ तक कह

सकता हूँ कि प्रभु की कृपा से मुझे सन्त समागम का लाभ अनेकों बार आज तक मिलता रहा है। किसी कवि ने कहा है “साचा सन्तो ना दर्शन दो ह्यलारे” परन्तु मेरे लिए वह सदा से सरल रहा है। प्रभु की कृपा से प्राप्त हुए इसी प्रकार के एक सन्त समागम का उल्लेख यहाँ पर किया जाता है।

[२]

मुझे देवकी बाई की धर्मशाला का भार सम्भाले अभी कुछ महीने हुए थे। मेरा समय साधन भजन में सुख पूर्वक व्यतीत हो रहा था। अपने नियमानुसार प्रातःकाल मैं काम काज से निपट कर गंगा किनारे जाता था। बाहर जाते समय किवाड़ में ताला लगाने के बजाय केवल सिटकिनी लगाने की मेरी आदत थी एक दिन जब मैं गंगा तट पर कुछ समय व्यतीत कर धर्मशाला वापस आया तो मुझे बड़ा आश्चर्य हुआ कि कमरा खोला गया है। भीतर जाकर आश्चर्य और अधिक बढ़ गया वहाँ पर देखा कि भगवा वस्त्रधारी साधुपुरुष बैठने की सतरंजी के समीप जमीन पर विराजमान हैं उनकी अवस्था अधिक न थी, लगभग ५०-५५ के होंगे, रंग काला था। मुखाकृति में कोई विशेष आकर्षण न था, हाल में मुण्डन कराने के कारण मस्तक चमकता था, आंखें तेजस्वी थी।

ऐसे अनजान व्यक्ति को, मेरी स्वीकृति के बिना कमरे का बन्द किवाड़ खोलकर अन्दर बैठा देख मुझे आश्चर्य हुआ परन्तु जो वास्तविकता थी उसका स्वीकार व सामना करने पर ही छुटकारा था, वे कोई सामान्य व्यक्ति न थे। उनका स्वरूप सन्यासी का था अस्तु मैंने प्रणाम किया और पधारने का प्रयोजन पूछा उन्होंने आकर्षक व मधुर बाणी में उत्तर दिया—“आप से मैं पहिली बार मिला हूँ। फिरते-फिरते इधर आ पहुँचा, गुजराती धर्मशाला है इसलिए कभी-कभी आ जाता हूँ”,

उनकी भाषा शुद्ध गुजराती थी अतएव मुझे उनका परिचय प्राप्त करने की उत्कण्ठा उत्पन्न हुई। “आप गुजराती हैं”—मैंने प्रश्न किया। उन्होंने उत्तर दिया “हाँ मैं गुजराती हूँ। अफ्रीका में कुछ काल नौकरी करने के उपरांत इधर कई वर्षों से मैंने सन्यास धारण किया है। यहीं पर मायाकुण्ड के पास मेरी पर्णकुटी है। ६ महीना इधर रहता हूँ बाद में पंजाब चला जाता हूँ। पंजाब की जनता बड़ी भावुक है और सेवापरायण है—सन्त महात्माओं का सत्कार वे बड़े प्रेम से करते हैं। इतना कहने के उपरांत वे रुक गए। वातावरण मौन हो गया उसमें नीरवता आ गई। बाहर रास्ते पर आते जाते मनुष्यों की बातचीत कभी-कभी सुनाई देती थी। मेरे पास राम कृष्णदेव व स्वामी विवेकानन्द की फोटो थी। उनकी ओर देखकर मैं उस साधु पुरुष के शब्दों पर विचार करने लगा। सहसा उन्होंने प्रश्न किया—“क्यों यहाँ अच्छा लगता है?” “यह स्थान कैसा है?”

“अच्छा लगता है”—मैंने तुरन्त उत्तर दिया, “ऐसा पवित्र तीर्थ, गंगा का तट, धर्मशाला का शान्त और सुन्दर स्थान प्राप्त कर क्यों न अच्छा लगेगा। साधन भजन में समय आनन्द से व्यतीत होता है। यहाँ आशा है, अनुकूलता सदैव रहेगी अतः थोड़े समय के उपरान्त माता जी को भी इधर बुला लूँगा। यहीं पर वे भी प्रभु स्मरण करेंगी और आनन्द में रहेंगी।”

थोड़ी देर तक वे चुप रहे फिर दाहिने हाथ की उँगली को दूसरे हाथ में लगाकर कहने लगे—“ऐसा नहीं हो सकेगा, ईश्वर की इच्छा ऐसी नहीं है। आप यहाँ केवल एक वर्ष रह सकेंगे, न इससे अधिक न इससे कम।” मुझे उनकी बात बड़ी विचित्र लगी। वह सत्य मानी जाय या असत्य। “मेरी इच्छा तो इधर अधिक समय तक रहने की थी मेरे हृदय में सच्चा वैराग्य और प्रभु प्रेम भरा है। मुझे ऐसे एकान्त स्थान को त्याग कर संसार के कोलाहल पूर्ण वातावरण

में नहीं जाना है। मुझे संसार में रहकर कोई विशेष प्रवृत्ति या व्यवसाय करने की भी इच्छा नहीं है।” मैंने अपने विचारों को पूर्णतया स्पष्ट कर दिया जिससे वे मेरी परिस्थिति को समझ सकें।

“यह तो मैं समझता हूँ”—वे कहने लगे—“कहां कहता हूँ कि आप संसार की माया में पड़ने वाले हैं। मैं तो केवल इतना ही कहता हूँ कि आप इस स्थान पर सब मिलाकर एक वर्ष रह सकेंगे फिर आपको जल के पास शान्त और सुन्दर जगह मिलेगी। वहाँ आप रहेंगे और आपका ठीक विकास वहीं होगा। वहाँ पर आप अपना महत्वपूर्ण विकास कर सकेंगे। जीवन में आप अनेक प्रकार की साधना का आधार लेंगे। और अच्छे-अच्छे अनुभव प्राप्त कर सकेंगे। परन्तु जब तक काली या हनुमान का इष्ट नहीं करेंगे। तब तक आपको शान्ति नहीं प्राप्त होगी यह निश्चय है।”

“तो फिर धर्मशाला का क्या होगा?”—मैंने पूछा। “धर्मशाला का केस चलेगा और बराबर डेढ़ वर्ष तक चलता रहेगा अन्त में टूट्टी जीत जायेंगे, परन्तु उस समय आप यहाँ न होंगे। आप तो खूब साधना करेंगे। साधना के ऊँचे से ऊँचे शिखर पर पहुँच जायेंगे और महान् वन जायेंगे। आपकी इस समय की साधना का कोई मूल्य नहीं, असली साधना तो तब होगी। एक समय ऐसा आयेगा जब दुनिया के लोग आपकी पूजा करेंगे और आपके द्वारा शान्ति का मार्ग अपनायेंगे। उस समय मैं आपसे फिर मिलूँगा आप मुझे पहिचान लीजियेगा। मुझे भूलियेगा नहीं। कारण यह है उस समय आपके पास अनेकों लोग फिरते होंगे।”

यह भविष्यवाणी मेरे लिए बिल्कुल नई थी। ईश्वर की कृपा अथवा साधना की शक्ति से महापुरुष इस तरह भूत भविष्य और वर्तमान जान सकते हैं इस बात का मुझे विश्वास था परन्तु यह भविष्य दर्शन कितने

अंश तक सत्य होगा इसको निर्णय करना मेरे लिए अत्यन्त कठिन था । मेरी प्रशंसा करने की इच्छा तो नहीं है ? परन्तु ऐसा करने से उनको क्या मिलना था इस प्रकार का विचार मेरे मन में आया, अतः कुतूहल व्यक्त करते हुए मैंने पूछा, “आपको ऐसी शक्ति कहाँ से प्राप्त हुई ?” उन्होंने उत्तर दिया, “प्रभु की इच्छा और गुरु कृपा से”, मेरे गुरु समर्थ पुरुष थे, उन्होंने मुझे मंत्र देकर “हनुमान” की साधना बतायी उन दिनों मेरा वैराग्य अत्यन्त प्रबल था । रात भर जगकर गंगा किनारे मैं जप करता था ऐसा करते-करते एक दिन मुझ पर हनुमान जी की कृपा हुई । यह उन्हीं की कृपा का प्रभाव है कि मैं जिसके सामने जाता हूँ भूत भविष्य और वर्तमान सब जान लेता हूँ । दर्पण में जिस तरह प्रतिबिम्ब पड़ जाता है उसी तरह मेरे मन में सबका प्रतिबिम्ब पड़ जाता है ।” मैंने कहा—“आपके ऐसे मनुष्य यदि बम्बई जाकर निवास करें तो अपार धन और यश कमा लें । मनुष्यों को पागल बना दें ।”

उन्होंने सरल एवं मधुर शब्दों में उत्तर दिया “मुझे धन की कामना होती तो लगी लगाई नौकरी क्यों छोड़ता ? साधना द्वारा अर्जित शक्ति क्या मदारी की विद्या है ? यह जन रंजन या स्वार्थ साधन के लिए नहीं है । मुझे उसका प्रदर्शन करना पसन्द नहीं और धन संग्रह को भी मैं ठीक नहीं समझता । यदि किसी समय अनायास स्वाभाविक रूप से प्रदर्शन हो जाय अथवा मैं प्रयोग में लाऊँ तो यह बात भिन्न है । शेष, तो उसको गुप्त रखना अवश्य आवश्यक है । मुझमें ऐसी शक्ति है इस बात की खबर भी किसी को न हो । मैं इस मामले में बड़ी सावधानी रखता हूँ । यह भी ईश्वर की इच्छा है कि आपके पास मैं विक सा गया हूँ । आप को देखकर आप से प्रेम उत्पन्न हो गया है तभी इस प्रकार का वार्तालाप करता हूँ ।”

वास्तव में उनकी वार्ता सुमधुर थी । उनसे मिलकर मुझे बड़ी प्रसन्नता हुई । मेरा हृदय अनोखे भावों से पूर्ण होकर उछल रहा था ।

मैं प्रेम पूर्वक कहने लगा—“आपके समान सच्चे सन्तों का दर्शन अब तो अत्यन्त दुर्लभ हो गया है। आपके विचार बड़े उत्तम हैं आपसे मिल कर मुझे बड़ा आनन्द प्राप्त हुआ। आपकी निस्पृहता और आपकी शक्ति आश्चर्य चकित करने की क्षमता रखती है।”

थोड़े समय तक कमरे में शान्ति का वातावरण रहा। गोस्वामी तुलसीदास ने लिखा है, “विनि हरि कृपा मिलहि नहि संता” अतः मेरे ऊपर ईश्वर की कृपा हुई नहीं तो ऐसे महापुरुष से भेंट क्यों कर होती? वार्तालाप करते समय उनको नाक पर हाथ लगाने की आदत थी अधिक नहीं केवल एक या आधा सेकन्ड वे नाक पर हाथ लगाते थे। प्रथमतः मेरा विचार हुआ कि वे स्वरोदय शास्त्र के ज्ञाता हैं और उसी के आधार पर भूत भविष्य की बातें बताते हैं परन्तु जब उन्होंने इष्ट और गुरु की कृपा की व्याख्या कर उसी के प्रसाद रूप में विद्या की प्राप्ति बताई तो मेरा वह विचार जाता रहा। यह अवश्य है कि स्वरोदय शास्त्र से मनुष्य त्रिकालज्ञ हो सकता है, ऐसे प्रमाण मिलते हैं। इष्टदेव की कृपा से तो सब कुछ सम्भव है, जिसको उसकी प्राप्ति हो जाय वह पूर्ण शान्ति और सिद्धि प्राप्त कर लेता है। मुझे भी इष्ट की कृपा की आकांक्षा थी। परन्तु वह मिले किस प्रकार? और इष्ट करना किसका? जगदंबा पर मुझे प्रेम था परन्तु हनुमान जी की बात नवीन थी।

मेरे विचारों को उन्होंने जान लिया और उत्तर देते हुये वे बोले—“काली माता का एक मंत्र है, वह बहुत अमोघ है, उसका विधि पूर्वक जप करने से सातवें दिन माँ काली का दर्शन हो जाता है। देखिये यह मंत्र है “:-काली काली महाकाली, दोनो हांथ बजावै ताली।

ब्रह्मा की बेटी, इन्द्र की साली, बैठी पीपल की डाली।

पठाऊ तहां जा, मेरा वचन पाल के आ

शब्द सांचा, गुरु वाचा, गुरु वचन आदेश।”

इसके उपरान्त उन्होंने मंत्र जप करने की विधि बताई और बड़ी श्रद्धा और गम्भीरता के साथ कहा, “सातवें दिन सायंकाल को ५ हजार जप पूरा करके पीपल के पेड़ के पास घट रखने से पीपल की डाली पर बैठी हुई माता का दर्शन अवश्य होगा। इस कथानक को हुये बरसों हो गये हैं परन्तु वह अनुष्ठान करने की कभी इच्छा न हुई।

सात दिन के अन्दर साक्षात् हो जाने की आशा कोई कम न थी परन्तु जब मंत्र के प्रयोग का विचार ही न हुआ तो प्रयोजन ही क्या रहा ? मंत्र न जाने कैसा अटपटा सा लगता था विशेष कर “ब्रह्मा की बेटी” और इन्द्र की साली” का प्रयोग बड़ा ही विचित्र ज्ञात होता था। माता इन शब्दों को सुन कर प्रसन्न होने की अपेक्षा क्रुद्ध तो न होंगी इस प्रकार के विचार का भी महत्व कम न था। मंत्र के सुनते ही उस समय भी विरोधी भाव उत्पन्न हो गये थे। जब मंत्र के प्रति ऐसे विचार हों तो उससे प्रेरित होकर जप या अनुष्ठान यदि किया भी जाय तो वह कहां तक सफल हो सकेगा ? उससे क्या शक्ति मिल सकेगी ? प्रेम और श्रद्धा की न्यूनता में कोई भी साधना फलीभूत नहीं हो सकती।

मैं यह कह सकता हूँ कि मंत्र को पढ़कर या सुनकर बहुत लोग हंसेंगे, परन्तु किसी भी मंत्र को उसकी शाब्दिक रचना से सस्ता व चलताऊ मान लेना ठीक नहीं। भारतवर्ष में ऐसे अनेकों साधक व सिद्ध आज भी देखे जाते हैं जिनको संस्कृत का ज्ञान कुछ भी नहीं उनको गुरु परम्परा से अनेकों मंत्रों की प्राप्ति हुई है। वे मंत्र प्रायः इसी शैली के होते हैं परन्तु उनके प्रभाव की अवहेलना नहीं की जा सकती श्रद्धा व विश्वास द्वारा वे मंत्र सिद्ध हो जाते हैं। ऐसे मंत्र एक नहीं अनेकों हैं, और उनके मानने वाले भी अनेकों हैं। मंत्र की भाषा कुछ भी हो उसमें भाषा के कारण कोई दोष उत्पन्न नहीं होता केवल श्रद्धा का होता अनिवार्य है। और उसके पोछे गुरु परम्परा भी होनी चाहिये।

गुरु परम्परा के बल से साधक के हृदय में श्रद्धा बलवती होती है। अगर वास्तविकता देखी जाय तो श्रद्धा ही साधना का मुख्य प्राण है। एकलव्य को मिट्टी की प्रतिमा से सफलता प्राप्त हुई। किसको किस नाम या रूप में श्रद्धा होगी यह कौन कह सकता है? अपनी श्रद्धा यदि किसी उपचार में नहीं है तो वह व्यर्थ है, इस प्रकार का विचार ठीक नहीं, उसको हास्यप्रद अथवा नगण्य समझ कर उसकी अवहेलना करना ठीक नहीं। अनेकों मनुष्य इस समय भी हैं जो इसी प्रकार के मंत्रों में श्रद्धा व विश्वास रखकर जीवन को उन्नत करने की साधना करते हैं। इस विषय को सहानुभूति से समझने की अपने में शक्ति होनी चाहिए। यदि पाठक इसी प्रकार से उपरोक्त मंत्र की विवेचना करें तो उस महात्मा की बात का रहस्य समझ सकेंगे और अन्य मंत्रों के समझने की शक्ति भी प्राप्त होगी।

[३]

मंत्र का रहस्य समझाकर वे महापुरुष खड़े हो गये, इतने अल्प समय में ही उनका प्रेम मेरे प्रति प्रबल हो गया था अतएव चलते-चलते उन्होंने मुझे अपनी पर्णकुटी का परिचय दिया और मुझे वहाँ आने का अनुरोध किया। मैंने उसकी बात स्वीकार कर उनको आदर पूर्वक विदा किया। तदुपरान्त हमारा सम्बन्ध बड़ता ही गया, मैं कई बार उनकी पर्णकुटी गया, मुझे देखकर वे बड़े प्रसन्न होते थे, स्नेहपूर्वक सत्कार करते थे और प्रत्येक बार दूध पिलाते थे। यदि किसी समय दूध की मात्रा कम होती थी तो मेरे सामने वे उसमें गंगाजल डालकर उसकी पूर्ति कर देते थे। उनकी सरलता प्रशंसनीय थी। इतनी बड़ी त्रिकालज्ञ की शक्ति रखते हुये भी उनको किसी प्रकार अहंकार या गर्व लेशमात्र भी न था। एक अबोध बालक के समान उनकी सरलता सराहने योग्य थी। भिक्षा के हेतु वे क्षेत्र में दोनों समय जाते थे। सायंकाल को जब भिक्षा के लिए वे इधर से निकलते थे तो उन्हें देखकर मेरे मन में

यह विचार आता था कि न जाने कितने ऐसे गुप्त रत्नों का जीवन भिक्षा वृत्ति पर निर्भर है। आजकल भिक्षा वृत्ति के कारण साधु सन्तों में अनेकों अवांछनीय तत्वों का समावेश होता है, यह ठीक है परन्तु यह बात सर्वथा सत्य नहीं है अनेक स्थलों पर इस वृत्ति के गुणों का भी प्राकाट्य देख पड़ता है। मैं उनकी इस वृत्ति को देखकर विचार करता था कि यदि वे किसी बड़े शहर में जाकर निवास करें और अपनी शक्ति का थोड़ा सा प्रयोग लोगों को दिखायें तो क्या उनको किसी बात की कमी रहेगी, परन्तु वे तो भिक्षा वृत्ति से ही बड़े प्रसन्न होते हैं। जो संतुष्ट और निस्पृह है उसे किसी की भी परवाह नहीं होती। इन्द्र और कुवेर का वैभव भी उसके लिए तृणवत् है कबीरदास जी ने उस परम धन्य दशा की अनुभूति प्राप्त कर उसका वर्णन इस प्रकार किया है।

मन लागो मेरो यार फकीरी में,
जो सुख पायो राम भजन में,
सो सुख नाहिं अमीरी में,
मन लागो मेरो यार फकीरी में ॥

प्रातः स्मरणीय ऐसे संत पुरुष परम धन्य व वन्दनीय हैं।

[४]

माता जी सरोड़ा में थीं, एक बार ऐसा हुआ कि जो मनीआर्डर मैंने उनको सरोड़ा के पते से भेजा था उसकी पहुंच करीब २० दिन तक न प्राप्त हो सकी मुझे कुछ चिन्ता हुई, उसी समय मुझे उस त्रिकालज्ञ महापुरुष का स्मरण हो आया। मैंने सोचा कि चलें और महापुरुष की शक्ति का परिचय लें और उससे लाभ उठायें।

गंगा तट पर उनकी पर्णकुटी में पहुंचकर मैंने उन्हें प्रणाम किया और उनको सारी बात अवगत करा दी। मैंने फिर कहा कि मनी-आर्डर की कुछ चिन्ता अवश्य हो गयी है, क्या आप कह सकते हैं कि

उसका क्या हुआ होगा ? अपने लक्षण के अनुसार उन्होंने अपनी नाक पर हाथ फिराया और तुरन्त ही उत्तर दिया, “चिन्ता न करिये आपका मनीआर्डर पहुंच गया है। माता जी गांव के बाहर चली गई थीं इसलिए पोस्ट मास्टर ने उसे रोक लिया था, पैसा अब उन्हें मिल गया है। आज से सातवें दिन आपके पास उसकी रसीद आ जायगी और माता जी का पत्र भी उस समय आ जायगा।” “माता जी इस समय क्या करती हैं ?”—मैंने प्रश्न किया। उन्होंने तुरन्त उत्तर दिया—“घर में हैं, चक्की चलाती हैं और गा रही हैं।” यह सब सुनकर मेरे मन में विचार हुआ कि सात दिन तो बात की बात में निकल जायेंगे, मेरे भविष्य की बात तो दूर की है परन्तु यह तो अत्यन्त निकट में होने वाली घटना है, इसी से उनकी बातों की सत्यता प्रगट हो जायगी। मैं इसी प्रतीक्षा में रहा कि देखूं तो भविष्य की उनकी बात सच उतरती है अथवा नहीं।

महात्मा जी की भविष्यवाणी का प्रत्येक शब्द सत्य घटित हुआ। ठीक सातवें दिन मनीआर्डर की रसीद आ गयी उसी दिन माता जी का पत्र भी मुझे मिला उसमें उन्होंने अपने नगर बाहर जाने एवं पोस्ट मास्टर द्वारा मनीआर्डर रोक रखने की बात भी लिखी थी। पोस्ट मास्टर उसी नगर के शिक्षक थे। जान पहिचान होने के कारण उन्होंने मनीआर्डर रोक लिया यह बात तो समझ में आती है परन्तु अन्य सभी बातोंको घटित होते देखकर मैं बड़ा प्रभावित हुआ और इस प्रत्यक्ष प्रमाण के कारण इस महापुरुष की शक्ति में मेरा विश्वास और अधिक बढ़ गया। ऐसे पुरुष का परिचय पाने में मैंने ईश्वर का उपकार माना। ऐसे छिपे हुए पुरुष रत्न इस देश में कितने और कहाँ हैं कौन कह सकता है ? ईश्वर के अतिरिक्त और कोई नहीं।

थोड़े समय के बाद वे महात्मा ऋषिकेश छोड़कर किसी दूसरी जगह चले गये। सन १९४४ ई० में बद्रीनाथ धाम की यात्रा समाप्त

कर जब मैं ऋषिकेश वापस आ रहा था तो मार्ग में अचानक उनसे भेंट हो गयी। उन्होंने चाय पीने के लिए कुछ पैसे माँगे, चंपक भाई से कह कर मैंने थोड़े पैसे उनको दिला दिए। मेरी आर्थिक स्थिति उस समय ठीक न थी अतः मैं उनकी कोई विशेष सेवा न कर सका यद्यपि इच्छा बहुत थी। इसके उपरांत फिर उनके दर्शन न हो सके।

उनकी भविष्य वाणी सच निकली, केवल दुनिया में प्रसिद्ध होने की, दुनिया को शान्ति मार्ग बताने की। और बाद में उनसे मिलने की बात बाकी रह गयी है। उनका दर्शन फिर से प्राप्त हो जाने पर मुझे अपार आनन्द रहेगा।

• • •

दशरथाचल पर्वत पर

दशरथाचल पर्वत का वातावरण साधना के लिए अत्यन्त अनुकूल था। वहाँ के शांत वातावरण में काफी समय रह कर साधना करने की मेरी इच्छा थी। अस्तु उसे फलीभूत करने का प्रयास मैंने प्रारम्भ कर दिया। दशरथाचल जाने के पूर्व दो प्रकार के विचार मेरे मन में उठा करते थे। एक भगवत् के साकार स्वरूप का दर्शन करने का और दूसरा समाधि दशा का अनुभव प्राप्त करने का था। इन दोनों संकल्प में से कोई भी एक की पूर्ति के बिना पर्वत पर से न उतरा जाय और जितना भी परिश्रम करने की आवश्यकता हो किया जाय। ऐसा मेरा विचार था और इसके निमित्त भारी साधना की आवश्यकता थी। उत्कण्ठा, श्रद्धा और लगन भी आवश्यक थे। मुझे पूर्ण आशा थी कि उत्साह पूर्वक दिन रात परिश्रम करने से मेरी इच्छा पूरी हो जायगी और अधिक समय न लगेगा। ऋषिकेश में एक वर्ष की सतत् साधना के फलस्वरूप इस विषय में मेरी श्रद्धा और अधिक बलवती हो गई थी।

दशरथाचल पर्वत पर पहुँच कर मैंने परिधान वस्त्रों का परित्याग कर दिया। केवल एक लंगोटी लगाए रहता था। पानी की कमी के कारण प्रतिदिन कपड़े धोने की असुविधा थी इसी कारण से कपड़े उतार दिए गए ऐसी बात न थी। केवल एक लंगोटी में काम चलाने

की भावना, मुझे प्रथम से थी। शीत की बाहुल्यता थी अस्तु केवल लंगोटी मात्र से काम चलाना कठिन था। सूर्य-किरणों का लाभ पर्वत पर सभी जगह अधिक प्रमाण में उपलब्ध होता है अतएव कोई विशेष चिन्ता न थी। बिछाने के लिए एक मृगचर्म और एक शतरञ्जी थी ओढ़ने के लिए चक्रधर जी का दिया हुआ मोटा कम्बल था।

मेरा नियम रात्रि को अधिक मात्रा में ध्यान में बैठने का बना था। सम्पूर्ण रात्रि कम्बल ओढ़कर ध्यान में बैठे रहने का अभ्यास हो गया था, अधिक शीत के कारण रात में सोने का मन भी नहीं होता था और सारी रात, शान्तिपूर्वक, कहां गई इसकी मुझे खबर भी न होती थी।

चम्पक भाई भी मेरे साथ रहते थे। उस समय उनकी सच्ची एवं कठिन परीक्षा हो रही थी। शीत, उनको अधिक सताता था उस पर यह विशेषता कि उनके पास वचाव के साधन भी पर्याप्त मात्रा में न थे। जेल से भाग कर उत्तराखण्ड में आ जाने से उनके पास पहिने ओढ़ने का अभाव था ऐसी दशा में दशरथाचल का निवास उनके लिए कठिन कसौटी का विषय बन गया था। उनके पास एक कन्टोप व एक कम्बल था। इसके उपरान्त चक्रधर जी ने उन्हें एक गर्म लम्बा कोट भी दिया था जिससे उनका काम, येन केन प्रकारेण चलता था। दिन में अधिकतर वे धूप में ही बैठे रहते थे। मुझे सतत् साधना में रत देख कर वे भी साधना करने को तत्पर हुए और अपनी रुचि के अनुसार जप व प्रार्थना करने लगे, इस प्रकार उनका समय भी आनन्दपूर्वक व्यतीत होने लगा। प्रथमतः मुझे प्रतीत हुआ कि संभवतः चम्पक भाई को पर्वत पर रहना कष्ट कर होगा और मुझे हठात् विवश होकर नीचे उतरना पड़ेगा परन्तु उनमें सहन-शक्ति, उत्साह और धैर्य प्रचुर मात्रा में थे अतएव वे बिला आनाकानी मेरे साथ रहे और मेरे प्रति सब प्रकार से अनुकूलता दिखाई। दशरथाचल पहुँच कर मेरा मौन व्रत प्रारम्भ हो गया अतएव चम्पक भाई की कठिनता कुछ बढ़ गयी

इस पर्वत पर हम दोनों के अतिरिक्त और कोई न था अस्तु बात हो तो किससे हो। किसी समय यदि कोई आवश्यकता पड़ती तो मैं संकेत द्वारा उनसे बात करता था। सात आठ दिन में एक आध शब्द बोल भी देता था इस प्रकार स्वभावतया मौन ही रहना पड़ता था। अपना सब समय और पूर्ण शक्ति का उपयोग साधना के लिए करने का निर्णय कर मैंने मौन व्रत धारण किया था। मुझे प्रत्येक पल ध्यान, जप और साधना के उत्तमोत्तम अनुभव की प्राप्ति करने में लगाना था। अस्तु मौनव्रत स्वतः होगया था परन्तु चम्पक भाई के लिए निस्सन्देह वह केवल एक कठिन परीक्षा रूप में ही था, फिर भी बड़े उत्साह से सब प्रकार मुझसे अनुकूल होकर मेरे साथ रहते थे इसके लिए उनके जितने गुणगान करें और जितना धन्यवाद दें सब थोड़ा है। वहाँ के रहने का निवास स्थान पुराना और साधारण था। उसमें तीन कमरे थे, जिसमें से दो बिल्कुल खुले थे तीसरा जो बन्द था उसमें मकान मालिक का सामान पड़ा था। दो कमरों में से एक छोटे कमरे में मैं रहता था और दूसरे में जो कुछ बड़ा था चम्पक भाई रहते थे। कमरे के दरवाजे बिल्कुल वेकार थे। रात्रि में अकेले रहने में काफी हिम्मत की आवश्यकता थी; उस पर्वत पर वाघ और रीछ अधिक संख्या में रहते थे। हमलोगों को नया अतिथि जानकर मिलने आना उनके लिए स्वाभाविक था। कई बार रात में बाहर जंगली जानवरों के शब्द सुनायी पड़ते थे। चम्पक भाई ने इस सम्बन्ध में अनेकों बार चर्चा भी की, फिर भी वे डरते न थे, वे बहादुर थे। मैं उनको हिम्मत देता रहता था और कहता था—“हम लोग इधर ईश्वर के भरोसे बैठे हैं। यह उसी की इच्छा है कि छोटी मोटी सभी व्याधियाँ स्वतः दूर हो जाती हैं वही हम लोगों की रक्षा भी करता है, चिंता अथवा डरने का कोई कारण नहीं। यदि हम लोगों का किसी से द्वेष भाव नहीं तो कोई हम लोगों से भी क्यों द्वेष करेगा? जंगली जानवर हमारी किस लिए हानि करेंगे?”

[२]

पर्वत पर जल की न्यूनता और शीत की बाहुल्यता थी अतः पूर्ण-स्नान अधिकांश न हो सकता था। अधिकतर पंचस्नान होता था। पवन का स्नान पर्याप्त मात्रा में था। खाने पीने में पानी की आवश्यकता पड़ती थी, अतः अनुकूलता होने पर पास वाले झरने से आवश्यकतानुसार जल ले आते थे। सात आठ दिन में एक पर्वतीय लड़का एक आध बार आवश्यक सामग्री देव प्रयाग से ला देता था वह कभी-कभी जल भी दे देता था। जल संग्रह के लिए मकान में पड़े हुये फालतू डब्बों का उपयोग किया था। भोजन बनाने का काम चम्पक भाई ने अपने ऊपर कर रखा था इस कार्य में यद्यपि वे प्रवीण न थे फिर भी बनाते-बनाते अम्यास हो गया था। अधिकांश खिचड़ी बनती थी। कभी-कभी बाटी या हलुवा भी बन जाता था। रात्रि में किसी समय भी बना लेते थे। जो वस्तु बनती थी वही केवल एक मात्र भोजन में होती थी कारण यह था कि दाल, शाक या अचार की अनुकूलता न थी। प्रातःकाल अरुणोदय के उपरान्त हम लोग बाहर निकलते थे और मैं थोड़ी देर घूमने के बाद एक टीले पर ध्यान में बैठ जाता था। चम्पक भाई भी जप और ध्यान करने के बाद भोजन बनाते थे। कभी-कभी मुझे ध्यान में इतना आनन्द प्राप्त हो जाता था कि उठने का मन नहीं होता था और घंटों उसी प्रकार बैठा रहता था बाद में शरीर का भान भी नहीं रहता था। चम्पक भाई मेरी प्रतीक्षा में बैठे रहते थे और कई बार भोजन की सामग्री लेकर मेरे पास आ जाते थे फिर जब मेरा ध्यान पूरा हो जाता था तब हम दोनों वहीं पर भोजन करते थे। मैं उनको बार-बार प्रतीक्षा न करने की सलाह देता था। भोजन बन जाने के उपरान्त वे खा पी कर निश्चित हो जाय और मेरा भाग रख दें यही आग्रह मैं उनसे बार-बार करता रहा परन्तु उनका विशेष प्रेम एवं एकाकी भोजन करने की नीरसता उन्हें विवश कर देती थी अस्तु वे सदैव मेरी प्रतीक्षा करके साथ-साथ भोजन करते थे।

आज उन दिनों का स्मरण करके मेरा हृदय गद्गद् हो जाता है। वास्तव में चम्पक भाई की सेवा और प्रेम दोनों सराहनीय थे। उनको जो आर्थिक सहायता प्राप्त होती थी उससे हम दोनों का काम चलता था। उनका सेवाभाव वास्तव में अनन्य था। उस समय के मेरे जीवन प्रवाह को प्रत्यक्ष रूप से निश्चिन्त बनाने का कार्यभार उन्होंने उठा लिया था। वे मेरे उस समय के साधनामय जीवन के एकमात्र साथी थे अतः हम लोगों का प्रेम उत्तरोत्तर बढ़ता गया। उनको उस समय डायरी रखने की आदत थी। वे प्रतिदिन, दशरथाचल के अनुभव उसमें लिखते जाते थे। साधन द्वारा क्रमानुसार जो मुझे अनुभव प्राप्त होते थे उन्हें मैं उनके सम्मुख प्रगट करता था उसे वे डायरी में अंकित कर लेते थे इसमें उनको बड़ा आनन्द मिलता था। दोपहर में भी मैं ध्यान में बैठता था। प्रातःकाल लगभग ३-४ घण्टे ध्यान करने की मेरी आदत थी। सायंकाल को हमलोग टहलने निकल जाते थे। प्रार्थना के बाद अन्धेरा होते-होते हमलोग पर्वत के असंख्य चीड़ के पेड़ों की सूखी लकड़ियाँ इकट्ठी करके अलाव बनाकर तापते थे। इस प्रकार कुछ समय के लिए शीत दूर हो जाता था। फर्श खुरदरी और पुरानी थी उसमें पिस्सू भरे पड़े थे। उनसे बचने के लिए चम्पक भाई ने पुराने टीन के डिब्बों पर टूटे दरवाजे रखकर तख्त सा बना दिया था उसी पर बिछावन लगाया जाता था। इस प्रकार के कष्टमय, वहाँ के जीवन में, उत्तरोत्तर आनन्द की वृद्धि होती जाती थी।

ऋषिकेश छोड़ने के बाद साधना में रत रहने के कारण मैंने पत्र लिखना बन्द कर दिया था। आवश्यक पत्रों का उत्तर माता जी को तथा बम्बई के नारायण भाई को मेरी ओर से चम्पक भाई लिख दिया करते थे। नारायण भाई का प्रेम अकथनीय था। प्रारम्भ से ही उनको मेरे विचारों व व्यवहार में प्रसन्नता होती थी। मेरी भावनाओं

को वे पूर्णतया समझते थे। आज भी मेरे प्रति उनका प्रेम पूर्ववत् अनन्य बना है। उनका हृदय प्रेमपूर्ण और पवित्र है। पत्र द्वारा मेरे समाचार जानकर उनको तथा माता जी को बड़ा आनन्द होता था। चम्पक भाई द्वारा यह कार्य सम्पादित होता था। उनकी यह सेवा भी अमूल्य थी।

...

दशरथाचल के अनुभव

समाधि का अनुभव

प्राकृतिक सौन्दर्य से परिपूर्ण दशरथाचल के अञ्चल में हम लोगों के दिन शान्तिपूर्वक व्यतीत होते जाते थे। उस समय “जगद्गुरु आदि शंकराचार्य” के सुन्दर ग्रंथ विवेक चूड़ामणि के अध्ययन में मुझे बड़ा आनन्द आता था। उनके अन्य मौलिक स्तोत्रों को भी मैं पढ़ता था। विवेक चूड़ामणि की सूचना के अनुसार स्वरूप का निर्णय करने के उपरान्त उसका प्रत्यक्ष अनुभव करने के लिए समाधि की प्राप्ति करने का मैं प्रयास करता था। शंकराचार्य जी ने कहा है कि विचार द्वारा जिसको अपने स्वरूप का ज्ञान हो गया हो उस साधक को किसी शान्त व एकान्त स्थान में बैठकर निर्विकल्प समाधि की प्राप्ति के लिए प्रयत्न करना चाहिये। निर्विकल्प समाधि की प्राप्ति हो जाने के उपरान्त उसको आत्मा का अपरोक्ष अनुभव करना चाहिये। यह प्रक्रिया ज्ञान मार्ग की है उसमें मुझे रस मिलने से उसको अमल में लाने के लिए मैं तैयारी करने लगा। दशरथाचल का वातावरण बहुत सुन्दर था वहाँ के परमाणु पवित्र थे। उस वातावरण में स्वतः अन्तस्थल में आनन्द उभर आता था। उससे अधिक उत्तम और अनुकूल वातावरण दूसरी जगह कहां ढूँढा जाय ? गीता जैसे ज्ञान के और

अन्य योग के ग्रंथों में साधना के लिए पवित्र प्रदेश को अधिक महत्व दिया गया है। ऐसे पवित्र, शान्त और एकान्त प्रदेश में ध्यानादि करने से मन शीघ्रता पूर्वक एकाग्र हो जाता है। अतएव दशरथाचल पर रहकर मैं दिन और रात का अधिकांश समय ध्यान में ही बिताने लगा। जैसे भी हो समाधि का अनुभव प्राप्त करने की लगन लगी थी, अतः अन्य सब बातों से चित्त को उपराम कर उसे केवल ध्यान परायण करने के लिए मैं सतत प्रयत्न करने लगा।

जिनको समाधि की साधना के उत्तम अनुभव प्राप्त करने की अभिलाषा हो उनको यह बात समझ लेनी चाहिए और हृदय में अंकित कर लेनी चाहिए कि अकथ परिश्रम वगैर उनकी इच्छा की पूर्ति होना असम्भव है। उत्साह, हिम्मत और श्रद्धा की मात्रा को बढ़ाना पड़ेगा। मनुष्यों में अधिकतर उत्साह की कमी होती है, वे साधन के लिए पर्याप्त मात्रा में सहयोग देने में असमर्थ होते हैं। पुरुषार्थ का भी अभाव रहता है, अनुभव के क्षेत्र में यथेष्ट प्रगति का न होना इसका मुख्य कारण है और अत्यन्त महत्वपूर्ण है।

मेरा हृदय अपूर्व उत्साह से परिपूर्ण था, वातावरण भी अनुकूल था अतः श्रम से मैं घबरा कर उदासीनता अपना लूँ यह सम्भव न था। दशरथाचल के प्रदेश में बाहर और कमरे के भीतर भी प्रत्येक स्थान पर एक प्रकार का अनहद नाद चला करता था। नादानुसंधान में अग्रेसर उच्च साधकों को वह नाद उनके अन्दर से ही प्रस्फुटित होता है, परशु पर्वत एवं वन प्रदेशों में अनेकों स्थान ऐसे होते हैं जहाँ प्राकृतिक नाद चलते रहते हैं। ध्यान करने वाले साधकों को ऐसे स्थलों पर प्राकृतिक अनवरत नाद द्वारा बड़ी सहायता मिलती है। योग शास्त्र में इस प्रकार का लेख है कि कुण्डलिनी जाग्रत होने के उपरान्त नाद के साधक को इस प्रकार की ध्वनि सुनाई देती है। अधिकांश उसी से मिलता जुलता हुआ नाद कहीं-कहीं पर पर्वतीय स्थलों में बराबर

२४ घण्टे चलता रहता है। दशरथाचल में इसी प्रकार के नाद की ध्वनि के कारण मन उसमें सुगमता पूर्वक एकाग्र हो जाता था।

भगवद्कृपा और वातावरण की अनुकूलता एवं स्थान विशेष की महत्ता के कारण मुझे समाधि का अनुभव प्राप्त करने में अधिक समय न लगा। मन के उस पार का प्रवेश द्वार सहज में खुल गया, शान्ति प्रस्फुटित होने लगी और अन्तरात्मा आनन्द-सागर में निमग्न हो गई।

शरीर-विस्मृति का अनुभव प्रथमतः लगभग आध घण्टा, तदुपरान्त ४ या ५ घण्टे तक निरन्तर स्थित रहने लगा। मेरी इस प्रगति से चम्पक भाई को बड़ी प्रसन्नता हुई।

विवेक चूड़ामणि में शंकराचार्य ने समाधि के महत्व को स्वीकार किया है। परन्तु समाधि कितने समय की होनी चाहिये इस बात पर उन्होंने अपना कोई निर्णय नहीं दिया है। जिसका मन एक क्षण के लिए भी परब्रह्म परमात्मा में लीन हो जाय तो उसका जीवन धन्य हो गया, कुल पवित्र हो गया, जननी कृतार्थ हो गयी और पृथ्वी भी उस वड़भागी महापुरुष का स्पर्श पाकर पुण्यवती हो गयी। इस प्रकार की अंजली देकर उन्होंने समय का मूल्याङ्कन त्यागकर आत्मानुभव वाले पुरुष के गौरव की विस्तृत व्याख्या की है। समाधि का समय चाहे जितना हो इसकी कोई महत्ता नहीं परन्तु साधक को समाधि अवस्था प्राप्त कर लेने के पश्चात् सभी में परमात्मा की सत्ता का दर्शन होना चाहिये, महत्व इसी बात का है। सृष्टि की दिव्यता को देखकर अन्दर-बाहर सभी में परमात्मा का दर्शन कराने वाली एक क्षण की समाधि उस घण्टों, महीनों वाली समाधि से परम श्रेष्ठ है जो सर्वत्र परब्रह्म परमात्मा की सत्ता का दर्शन न करा सके अथवा दिव्य-दृष्टि न प्रदान कर सके। शंकराचार्य का अभिप्राय भी यही है—दूसरे प्रकार की समाधि से कालान्तर में अनेकों सिद्धियाँ प्राप्त होती हैं इसमें सन्देह नहीं। परन्तु ध्येय अथवा लक्ष्य की प्राप्ति तो परमात्मा

का दर्शन है उसी में साधक की सफलता मानी जायगी न कि भौतिक सिद्धियों में। शंकराचार्य की इस बात पर विचार कर, सचराचर में परमात्मा के दर्शन कराने का पहिले से ही पड़े अध्यास को मैं बढ़ाने लगा। उससे मुझे बहुत आनन्द प्राप्त हुआ। अद्वैत के अनुभव से मेरा हृदय परिपूर्ण हो गया। दशरथाचल जाने का एक उद्देश्य इस प्रकार सफल हो गया।

मेरी माला खो जाती है

पर्वत पर पहुंचने के उपरान्त का एक अपूर्व प्रसंग सहसा स्मरण हो आया है जिसका वर्णन इस प्रकार है। ऋषिकेश में रहने के समय मैं एक माला रखता था उसी से जप किया करता था। पर्वत पर पहुंचकर एक रात्रि को जप के उपरान्त मैंने माला को बिछौने के पास रख दिया। दूसरे दिन जब माला की खोज की तो वह न मिली। रात में माला किधर चली गयी, बड़ा आश्चर्य हुआ? अन्दर से कमरा बन्द था अतएव किसी पुरुष या जानवर के अन्दर आने की कोई बात न थी तब माला भला किधर गई, कैसे गुम हो गई, यह प्रश्न था। पर्वत पर चूहे बहुत होते हैं परन्तु हम लोगों को उधर कभी एक भी न देख पड़ा, फिर चूहा बन्द कमरे में कैसे आ सकता था कमरे में कोई नाली या गढ़ा न था? और सब वस्तुयें ज्यों की त्यों रखी थीं केवल माला का पता न था। चम्पक भाई को मैंने यह बात बताई, उन्होंने भी खोजा, उनको भी बड़ा आश्चर्य हुआ, सारी घटना हमलोगों को बड़ी अद्भुत लगी। मुझे ऐसा प्रतीत हुआ कि ईश्वर की इच्छा से माला गुम हुई है। उसकी इच्छा है कि अब माला के बिना मैं अपनी साधना जारी रखूं। अस्तु मैंने माला के बगैर जप करने की प्रेरणा को भगवत्-इच्छा समझा, यही कारण हो सकता है; यही इस प्रसंग का रहस्य होगा। अन्य कोई बात समझ में न आई। चम्पक भाई के पास एक माला थी परन्तु उसका प्रयोग मैंने न किया और उस दिन से ईश्वर की इच्छा को मान्यता देकर बिना माला के जप

करना प्रारम्भ कर दिया। मुझे इस विधि में बड़ा आनन्द आया। माला की अनुपस्थिति से मुझे कोई व्यतिक्रम न पड़ा, ईश्वर की इच्छा सदा मंगलकारी होती है, यह ध्रुव सत्य है। उसमें श्रद्धा रखने से वास्तव में लाभ होता है।

रीछ से मुलाकात

दशरथाचल पर्वत पर शेर और रीछ अधिक संख्या में थे इसका उल्लेख पहिले कर चुका हूँ। ईश्वर की कृपा से उनके द्वारा हम लोगों को कोई व्यतिक्रम न हुआ। एक या दो बार के अतिरिक्त उनसे मुलाकात होने का अवसर भी न आया। कदाचित् उनको भी यह विचार हो कि ये लोग पर्वत पर रहकर आत्मोन्नति की साधना करते हैं किसी का कुछ नहीं बिगाड़ते और किसी से द्वेष भी नहीं करते फिर इन लोगों को क्यों छेड़ा जाय, उनके मार्ग में क्यों बाधा डाली जाय, और उनकी शान्ति व्यर्थ में क्यों भंग की जाय ?

केवल एक बार हम लोगों की एक रीछ से मुलाकात हो गई। जंगल में सायंकाल को हम लोग टहलने जा रहे थे। मैं प्रतिदिन की तरह केवल लंगोटी लगाये था। हाथ मे एक लकड़ी थी। चम्पक भाई कोट पतलूम पहिने थे। पगडंडी के रास्ते चलते-चलते हम लोग काफी दूर निकल गये। मैं आगे था, चम्पक भाई पीछे। सहसा चम्पक भाई ने सूचना दी। कि सामने से रीछ आ रहा है मैंने भी देखा कि बात सत्य है परन्तु फिर भी मैंने उसी दिशा में चलना जारी रखा।

चम्पक भाई को खतरा जान पड़ा फिर भी मैंने उनसे ईश्वर पर श्रद्धा रखकर अपने पीछे-पीछे आने को कहा। वे बड़े साहसी और हिम्मत वाले व्यक्ति थे फिर भी घटना चक्र इतना विकट था कि वे बड़े साहसी पुरुषों की हिम्मत भी उस समय हार जा सकती थी। पतली पगडंडी का एक ही रास्ता था, उसके दोनों ओर बड़ी गहरी खाई थी। यदि जायें तो किधर जायें ? रीछ हमारी

ओर आ रहा था थोड़ी ही देर में बिल्कुल सामने आ जायगा ऐसा प्रतीत होने लगा । ईश्वर में श्रद्धा व विश्वास की कमी न थी इसीलिए हिम्मत भी साथ में थी, रीछ अब केवल १५ फुट की दूरी पर था, अनायास पास के पत्थर पर हाथ की लकड़ी को मैंने मारा और जोर से ॐकार का उच्चारण किया। इन दोनों शब्दों के साथ साथ रीछ झिझका और घबड़ाकर कूदता फांदता खाई की ओर मुड़ गया । हम लोग उसकी गति विधि देख रहे थे इस अचानक घटना और उससे रक्षा हो जाने के कारण चम्पक भाई बड़े प्रसन्न हुये, मैं भी बड़ा प्रसन्न था । अंधेरा आने वाला था हम लोग वापस, मकान की ओर लौट पड़े । ईश्वर ने इस प्रकार हम लोगों की परीक्षा और रक्षा किया । पर्वत के निवासी रीछ से बहुत डरते हैं इतना वे शेर से नहीं डरते । हमारे पास काम करने जो लड़का सप्ताह में एक बार आता था, वह जब पानी लेने जाता था तब बराबर एक टीन के डब्बे को बजाता जाता था। वह प्रयोग जंगली जानवर को भगाने की चेतावनी के लिये होता है । हम लोगों को अकेले उधर रहते देख उस लड़के को बड़ा आश्चर्य होता था । कभी-कभी वह जिज्ञासा भी करता था, तो उत्तर में हम लोग उससे कहते थे—“भाई जिसे एकान्त में रहना है उसे भय क्या ? ईश्वर हम लोगों की रक्षा के लिए हर समय हर जगह उपस्थित है ।” अतएव सब प्रकार के भय को त्याग कर उसके ध्यान में मगन रहने की आवश्यकता है ।”

वह बालक हम लोगों की भाषा को भली प्रकार समझता था । उसने उपरोक्त सिद्धान्त को भी समझ लिया, उसने हम लोगों को धन्यवाद दिया, फिर भी उसे ऐसा प्रतीत होता था कि हम लोग बड़े पराक्रम में व्यस्त हैं अतः वह हम लोगों को हमेशा आश्चर्य चकित दृष्टि से देखता था ।

हम लोगों का इस प्रकार का एकान्त वास यदि दूसरों को आश्चर्यजनक लगे तो उसमें आश्चर्य ही क्या है ?

भगवान् राम का दर्शन

दशरथाचल पर्वत पर कविताओं की रचना प्रचुर मात्रा में हुई। कविता करने की शक्ति मुझे स्वभाव से प्राप्त थी। कविता पढ़ने और लिखने की रुचि भी पहले से ही थी। हिमालय आने के बाद भी वही रुचि रही, वह क्रम चलता ही रहा। यदि कोई ऐसा विचार करे कि दशरथाचल के निवास काल में तो साधना सतत रूप से चलती थी, आत्मोन्नति की उत्कट इच्छा की तृप्ति के लिए उस समय प्रयास चलता था, हिमालय के अन्य स्थलों में रहने का कारण भी आत्मोन्नति ही था उसी के अन्तरगत कविता करना कैसे सम्भव हो सकता था ? ऐसी शंका होना स्वाभाविक है, परन्तु इसका समाधान सरल है। वास्तव में बात यह है कि कविता मेरे लिए, कोई कल्पना की उड़ान, मनोरंजन या अन्य कोई व्यवसाय का साधन नहीं है, केवल लिखने के लिए कविता करना मुझे पसन्द नहीं। कविता मेरे लिए एक कला है, साधना है, पुरुष अपने हृदय के गूढ़ भावों को अभिव्यक्त कर परमात्मा के सामने अपने व्यक्तित्व को स्पष्ट करता है। परमात्मा के साथ बात करता है और परमात्मा की कृपा का अनुभव कर सकता है, व्यक्ति और समष्टि के पोषण में, सुधार में और प्रेरणा देने में उसका पूर्ण सहयोग प्राप्त होता है।

व्यक्ति, उसी प्रकार समष्टि, की आत्मिक उन्नति के साथ-साथ, सामाजिक और राष्ट्रीय उन्नति में कविता के महत्व का पूर्ण भाग है। अभी मैं अपनी ही बात करता हूँ। मेरे मन के भावों को व्यक्त करने में और उन्हें ईश्वर के समक्ष प्रस्तुत करने में कविता ने सदैव मेरी सहायता की है। और मेरे साथ वह साधना की सहचरी बन कर जीवित है। यदि वह जीवन के विकास की निश्चय की हुई साधना का विरोध करे और साधना के साथ उसका तारतम्य न बैठे तो उसको त्याग देने का प्रश्न होता है, परन्तु वस्तुस्थिति इसके विपरीत थी अतः साधना के दिनों में भी कविता प्रवाह जारी रहा। उससे नाता तोड़ देने का कोई प्रश्न ही न हुआ, कविता अथवा साहित्य इस प्रकार जीवन का पोषक बने तो वह आशीर्वाद रूप हो जाती हैं, इसमें सन्देह नहीं।

हम लोगों को चाहिये कि तुलसीदास, सूरदास, मीरा, नरसी और तुकाराम जैसे भक्तों की कविता का अध्ययन कर यह देखें, कि किस प्रकार उनकी कविता परमात्मा के साथ सम्बन्ध जोड़ने में, उनके लिए सरल साधन बनी, उनके लिए कविता जप, ध्यान और अनुष्ठान के समान मूल्यवान हो गयी।

जिस प्रकार एक पक्षी सागर के विशाल सलिल के साथ अपने पंखों द्वारा सम्बन्ध स्थापित करता है, उसी तरह आध्यात्मिक आकाश में उड़ने वाले उन भक्तों ने कविता के पंख से परमात्मा के विशाल स्वरूप का स्पर्श किया है। उनके लिए कविता मंत्र के समान मूल्यवान है। मेरे सम्बन्ध में यही बात अंश रूप में सत्य हैं। अतएव साधना की उत्कटता के अतन्त्रगत् कविता का प्रवाह कम या ज्यादा चलता ही रहा। परन्तु हिमालय में आने के पश्चात् उसका स्वरूप कुछ बदल गया है। मनुष्य जैसा जीवन यापन करता है, जैसे जीना चाहता है, जैसे विचार व भाव

सेता है और जिस आदर्श को प्रिय बनाता है, उसकी छाया उसकी कविता में अवश्य प्रगट होती है। उसकी रचना गद्य में हो अथवा पद्य में इसमें कोई अन्तर नहीं पड़ता, परन्तु उसके अनुभव की झलक दोनों में दिखाई पड़ेगी। उसके चिन्तन, मनन निदिद्यासन का असर अवश्य होता है। इस सिद्धान्त में अपवाद रूप एक या दो उदाहरण मिल सकते हैं परन्तु साधारणतया उपरोक्त कथन बिल्कुल ठीक है। इसीलिए साहित्य को जीवन का दर्पण कहा गया है। गांधी जी, विनोबा, टैगोर, टाल्सटाय, मैक्समुलर और अरविन्द जैसे महामानवों के साहित्य इसी दृष्टिकोण से विचारना चाहिए। हिमालय जाने के उपरान्त मेरे जीवन में आत्मोन्नति की साधनाओं का प्रमुख स्थान है। उससे मेरा जीवन पूर्णतया आध्यात्मिक बन गया है। मेरा प्रेम व श्रद्धा भी आध्यात्मिकता की ओर बढ़ती गयी अस्तु मेरे लेखों में भी उसका असर है, उसकी छाप है, और उसका प्रतिबिम्ब देखने को मिलता है। दशरथाचल निवास के अन्तरगत जो कवितायें लिखी उनमें उस समय के मनोभाव और उस समय के जीवन प्रवाह की झलक है। इसमें सन्देह नहीं।

उस समय लगभग १०० से अधिक कविताएँ लिखी गयी थीं कभी-कभी मैं चम्पक भाई से उनमें से एक आध सुनाने का आग्रह करता था। चम्पक भाई को साहित्य का बड़ा शौक था। उन्हें कविता पढ़ने में बड़ी प्रसन्नता होती थी। इस प्रकार एकान्त जंगल में हम लोग मंगल मनाते रहते थे चम्पक भाई के पास एक सूरदास की पुस्तक भी थी, कभी-कभी वे उसमें से पद गाते थे। सप्ताह में प्रायः एक आध बार गीत गान का मनोरंजन हो जाता था।

[२]

समाधि के अनुभव के प्रारम्भ से ही मेरे आनन्द की सीमा न रही।

मेरी श्रद्धा बढ़ गयी मुझे ज्ञात हो गया कि ईश्वर की कृपा हो गयी और तदनुसार मुझे अन्य अनुभव भी प्राप्त होने लगे। मेरे हृदय में ईश्वर के साकार दर्शन की भावना बहुत समय पूर्व से थी। उसकी पूर्ति के लिए मैं यथासम्भव प्रार्थना किया करता था। प्रार्थना ही मेरा बल था और जिस अनुभव या वस्तु की आवश्यकता होती थी उसके लिए मैं ईश्वर से प्रार्थना किया करता था। प्रार्थना द्वारा अपने दिल को ईश्वर के सामने खोल देता था और उसकी कृपा की याचना करता था। जिस प्रकार बालक माता के लिए विकल होता है, रोता है, उसी प्रकार ईश्वर के लिए मैं रोता था और बेचैन होता था। इस बेकली में दिन किस प्रकार समाप्त हो जाता था, कौन जाने ?

उसके बाद के और आज तक के मेरे जीवन का मुख्य बल प्रार्थना ही है। इच्छानुसार सिद्धि के लिए आज भी मैं प्रार्थना का आधार लेता हूँ। प्रार्थना मेरे लिए मंत्र का काम करती है। प्रार्थना ने मुझे आज तक मदद किया है। प्रार्थना के परिणाम स्वरूप ईश्वर ने समय-समय पर मेरे ऊपर कृपा की वर्षा की है और साधना के विभिन्न अनुभव देकर मुझे कृतार्थ किया है।

ईश्वर के साकार दर्शन के लिये मैं प्रति दिन प्रार्थना किया करता था। ध्यान में बैठने के लिए जब प्रातःकाल दरवाजा बन्द करता, उस समय मेरी दशा करुणाजनक हो जाती थी। मैं सोचता था कि एक दिन और व्यतीत हो गया, अभी मेरी इच्छा की पूर्ति नहीं हुई, प्रभु कब मेरे ऊपर कृपा करेंगे ?

अन्ततोगत्वा एक दिन प्रभु की कृपा हो गयी, वह दिन मेरे लिए आशीर्वाद रूप साबित हुआ। सुबह ध्यान और प्रार्थना करते-करते मेरे शरीर का भान अचानक समाप्त हो गया। शरीर निश्चेष्ट हो गया।

उस दशा में मुझे जो अलौकिक अनुभव हुआ उसका स्मरण कर आज भी मेरा हृदय आनन्दित हो जाता है। उस दशा में मुझे भगवान् राम का दर्शन हुआ। उनके पास लक्ष्मण जी और सुवर्ण मृग खड़ा था। भगवान् राम का स्वरूप बड़ा ही दिव्य था ऐसा सुन्दर स्वरूप संसार में कहीं देखने में नहीं आता। वे पीताम्बर वस्त्र धारण किये थे गले में माला और माथे पर मुकुट उनकी शोभा बढ़ा रहा था। वे मेरी ओर देख रहे थे। उनकी दृष्टि की मधुरता का वर्णन मेरे ऐसे साधारण व अज्ञ प्राणी के लिए कठिन ही नहीं असम्भव है। लगभग ५ मिनट तक वह अनुभव चलता रहा फिर मुझे शरीर भान आगया। मैं ध्यान से जागृत हुआ, मन में प्रगाढ़ शान्ति थी और अन्तरात्मा आनन्द सागर में निमग्न थी। ऐसा अपूर्व अनुभव था कि वर्णन करना सम्भव नहीं, प्रभु के दर्शन का प्रभाव अपूर्व तो होगा ही, सन्तों और शास्त्रों ने भी इसी का अनुमोदन किया है और यह बात प्रमाणित प्रसिद्ध है।

थोड़ी देर के उपरान्त मैं बाहर निकला, मुख पर आनन्द ही आनन्द छाया हुआ था, जिसको देखकर कोई भी कल्पना कर सकता था कि मुझे कुछ अलौकिक अनुभव प्राप्त हुआ होगा। अपनी आदत के अनुसार चम्पक भाई को, प्राप्त हुये दर्शन, की बात बताई। वे बड़े प्रसन्न हुये। मेरे प्रत्येक विशेष अनुभव का विवरण सुनकर उनको बड़ा आनन्द प्राप्त होता था और उस उपलक्ष में उस दिन कोई मधुर वस्तु का पाक वे अवश्य बनाते थे, अस्तु उस दिन उन्होंने लड्डू बनाये। पर्वत में आवश्यक साधन अप्राप्य होने के कारण किसी विशेष वस्तु का बनाना बड़ा कठिन था फिर भी वे कठिनाइयों से डरते न थे। क्रमानुसार विभिन्न प्रक्रियायों को पार करते-करते किस प्रकार लड्डू का अन्तिम स्वरूप तैयार हो सका इसको यदि मैं और वे ही जाने तो उचित होगा।

राम के दर्शन की मुझे कोई विशेष लगन न थी अतः उसके निमित्त मेरा कोई विशेष आयोजन भी न था फिर भी प्रभु ने साकार दर्शन की

अभिलाषा को सन्तोष देने के निमित्त इस प्रकार की कृपा की। हो सकता है कि मेरे पूर्व जन्म के संस्कारों का इसमें विशेष योग हो। कुछ भी हो “राम-दर्शन” के उस अनुभव से मुझे अपार आनन्द की प्राप्ति हुई और अपूर्व शान्ति मिली। वह अनुभव ध्यान अथवा समाधि के अन्तरगत था और किसी प्रकार की वार्ता से रहित था। मेरे लिए उसका बहुत बड़ा मूल्य था। भगवान राम की उस कृपा का स्मरण कर मैंने उनके चरण-कमलों को सजल नेत्रों सहित, प्रणाम किया। आज भी करता हूँ और करता रहूँगा।

वार बार वर मांगहुं, हरपि देहु श्रीरङ्ग ।

पद सरोज अनपायनी, भक्ति सदा सत्संग ॥

“सियावर राम चन्द्र की जय”

• • •

शंकर दर्शन का कथानक

भगवान राम के दर्शन के उपरान्त मुझे स्वाभाविक रूप से शंकर जी के दर्शन की लालसा उत्पन्न हो गयी। शंकर भगवान के प्रति मेरा प्रेम था। ज्ञान ध्यान के अधिष्ठाता तथा योग के स्वामी एवं त्यागियों के शिरोमणि भगवान शंकर का स्वरूप कम आकर्षक न था। ऐसे सिद्ध और मुक्तिदाता के दर्शन प्राप्त करने की मेरे मन में प्रबल इच्छा उत्पन्न हुई। शास्त्रों और संतों ने शंकर को आशुतोष कहा है। अन्य देवताओं की अपेक्षा वे बहुत शीघ्र प्रसन्न हो जाते हैं ऐसा प्रसिद्ध है। अतएव साधारण मनुष्य के हृदय में उत्साह उत्पन्न होता है और उनको प्रसन्न करने की भावना की जागृत होती है परन्तु उमा ने उनको प्राप्त करने के लिए जो कठोर व कष्टमय तप किया था उसका वर्णन सुन कर अनेकों का उत्साह ठंडा पड़ जाता है। कितने तो उनको प्रसन्न करने के लिए परिश्रम का विचार भी छोड़ देते हैं। उनके दृष्टिकोण से जब उमा को शंकर के प्रसन्न करने के लिए ऐसी कठिन तपस्या करनी पड़ी तो उसी अनुपात से हम लोगों को किस सीमा को पार करना पड़ेगा यह सोचकर उनका हृदय बैठ जाता है। उस प्रकार की विचार धारा वाले मनुष्यों को यह समझ लेना चाहिए कि उमा की बात कौन युग की है जिस काल में उमा ने तप किया था वह समय भिन्न था उस समय में मनुष्य की शक्ति बहुत विकसित थी आज समय दूसरा है

और मनुष्य भी अब दूसरे हैं । आज मानव का मनोबल फीका पड़ गया है उसकी नैतिकता कमजोर हो गई है । उसकी प्रभुपरायणता की, तितिक्षा और तप करने की क्षमता भी बहुत कम हो गयी है । कलियुग के सामान्य दोषों ने उसे घेर लिया है अस्तु उसकी तपश्चर्या के एवं क्षमता इत्यादि का मापदण्ड भी तदनुसार कम हो गया है । उसकी परीक्षा के नियम भी पहिले की अपेक्षा युगधर्म के अनुकूल बहुत सरल हो गए हैं अस्तु उमा का विचार कर उसे निराश अथवा हतोत्साह न होना चाहिये ; जितना हो सके उतना सरल चित्त, सच्चे हृदय से प्रभु की शरण ले और प्रभु की प्रसन्नता के लिए यथा सम्भव प्रयास करे तो उस पर प्रभु की कृपा अवश्य होगी, उसका जीवन धन्य हो जायगा । इस बात को यथार्थ मानकर श्रद्धा विश्वास के साथ निर्भय होकर प्रभु की शरण लेना आवश्यक है । अतएव प्रभु की शरण लेकर उसकी प्रसन्नता के लिए मैंने प्रयत्न करने का विचार किया । मेरे में कोई योग्यता न थी । ज्ञान, भक्ति और योग किसी पर भी मेरा अधिकार न था । अन्य कोई जानकारी भी न थी । केवल एक साधना के बल पर मैं चलता था वह थी प्रार्थना । अति और क्षुधातुर बालक जिस प्रकार अपनी मां के लिए व्याकुल होता है उसी प्रकार मैं प्रभु के लिए आकुल होकर झंखता और तरसता था । प्रभु के लिए प्रेमातुर होकर सतत् प्रयत्न करता था । उस समय मेरे पास भगवान् शंकर का एक चित्र था । हिमालय जाने के पूर्व मैंने उसे बड़ीदा में खरीदा था । वह चित्र बड़ा आकर्षक और सुन्दर था उसमें शंकर भगवान् केवल कोपीन पहन कर ध्यानावस्था में पद्मासन लगाकर बैठे थे । ऊपर चन्द्रमा का प्रकाश था निकट में गंगा जी का प्रवाह बहता था । सबसे विलक्षण तो उनकी मुसकान थी । मन्द-मन्द और मधुर मुसकान से उनके होठ खुले से लगते थे, मानो कि अभी कुल बोल उठेंगे । उनका स्वरूप मुझे बहुत अच्छा लगा था अतः उसे सामने रख कर मैं प्रार्थना करने लगा, भगवान्

का दर्शन हो तो भक्त नरसी की तरह उनसे करताल व कम्बल लेलूँ ऐसा मनोरथ मेरे मन में उत्पन्न हुआ था ।

प्रातः काल से ही कमरा बन्द कर मैं भगवान शंकर की प्रार्थना करने लगा—“हे प्रभु आप आशुतोष कहलाते हैं, मुझे शीघ्र दर्शन दीजिये । मेरे ऐसे बालक को अधिक दुःखी मत करिये, अधिक न तरसाइये । मेरे पर आप कृपा कर दीजिये, प्रत्येक पल में आपकी राह देख रहा हूँ और आपके लिए वेचैन हूँ । आप क्यों विलम्ब करते हो मौन छोड़ कर अब मेरे साथ बात करिये ।” ऐसे-ऐसे अनेक भाव मेरे मन में उठने लगे और नेत्रों से प्रेमाश्रु प्रवाहित हो गये । प्रत्येक क्षण मेरी आतुरता बढ़ती जाती थी ऐसा प्रतीत होता था कि भगवान अभी प्रगट होते हैं । हृदय के अंतस्थल से उठी हुई यह पुकार व्यर्थ नहीं जायगी । प्रभु मेरे पर अवश्य कृपा करेंगे, परन्तु समय अधिक बीतता जाता था अस्तु मेरी येचैनी और बढ़ती जाती थी । मेरी उत्सुकता भी बढ़ती जाती थी ।

अधिक समय हो चुका था चम्पक भाई भोजन की थाली ले आये भोजन करने की इच्छा न थी परन्तु चम्पक भाई की प्रेम भरी चितवन से प्रेरित होकर मैंने भोजन कर लिया और फिर प्रार्थना आरम्भ कर दिया । चम्पक भाई की दशा बड़ी विचित्र थी । पर्वत पर दूसरा और कोई न था शीत बड़ा कठिन था, इसके अतिरिक्त अनेकों अन्य कठिनाइयाँ भी आती रहती थीं । यदि और कोई अन्य व्यक्ति चम्पक भाई के अतिरिक्त ऐसी दुर्दशा में होता जो अवश्य संकटापन्न होकर त्रसित हो जाता और मुझे छोड़कर सप्रेम पर्वत के नीचे उतर जाता परन्तु चम्पक भाई की बात निराली थी । उनका शरीर दूसरी ही धातु का बना था वे लौह पुरुष थे, बड़ी हिम्मत वाले और बड़े बहादुर थे । लड़ प्यार और अमन-चमन में पले होने पर भी वे कठोर एवं कष्ट मय जीवन हंसते-हंसते व्यतीत करते थे, बिना किसी घबराहट व परेशानी के वे अपना कर्तव्य करते जाते थे । बम्बई ऐसे नगर के

सुखी जीवन के वातावरण में रहने वाले उनके समान एक युवक के लिए पर्वत का वह जीवन नितान्त विपरीत था फिर भी मेरे प्रति प्रेम के कारण वे सदा आनन्दपूर्वक सब कार्य करते रहते थे। रसोई बनाने और बरतन साफ करने का कार्य भार उन्होंने ले रखा था। मैं तो लगभग अपना सब समय साधना में ही व्यतीत करता था। चम्पक भाई का धैर्य साहस और सेवा वास्तव में अनुपम थी।

शंकर भगवान के दर्शन के लिए भोजन के बाद भी मेरा प्रयास चालू रहा। दोपहर के बाद ३ बजे मन में कुछ निराशा होने लगी तब प्रार्थना करते-करते शरीर का भान समाप्त हो गया और उस दशा में मुझे शंकर जी का फोटो वाला स्वरूप दिखाई दिया। उसके बाद मुझे शरीर का भान आया। इस अनुभव से आनन्द अवश्य प्राप्त हुआ परन्तु इसको दर्शन की दृष्टि से बहुत उत्तम कोटि का नहीं कहा जा सकता था। यह बात तो माननी पड़ेगी। सायंकाल के समय आनन्द में ओत-प्रोत मैं बाहर निकला, परन्तु मेरे मन को पूर्णतया सन्तोष न था। शंकर जी ने मुझे काम चलाऊ सन्तोष दिया है यदि मैं हठ पूर्वक उनके दर्शन के लिए और लगा रहता तो सम्भव है परिणाम दूसरा होता।

भगवान शंकर बड़े दयालु हैं। उनके प्रति मेरे हृदय में प्रेम व पिपासा बढ़ती गयी उसे लक्ष्य में रख कर उन्होंने मुझे ध्यान में अनेकों बार दर्शन दिये हैं परन्तु उनका दर्शन मुझे अन्य रूप में ही हुआ है। शंकर जी मुण्डमाला और सर्पों में विभूषित है, ऐसा कहा जाता है। यह ठीक है, परन्तु कल्पना को विकृत करते-करते कितने ही उनके साथ भाँग और गांजा को भी जोड़ देते हैं। इस प्रकार शंकर जी को हम लोगों ने व्यसनी मान रखा है। कितने बार इस प्रकार की कल्पना अतिशयोक्ति पूर्ण और अनुचित होती है। मेरे अनुभव की बात भिन्न है। उसके आधार पर यदि कहा जाय तो शंकर का स्वरूप मुझको भिन्न प्रकार का दिखाई दिया है। उनके नाम के अनुसार वे बाहर

और भीतर सुन्दर एवं मंगलमय ही दिखाई दिये हैं। वे सर्व संपन्न हैं अतएव भक्तों की भावना और रुचि के अनुकूल प्रगट होते हैं। परन्तु जब-जब उन्होंने मुझे ध्यानादि में दर्शन दिया है तब हर बार बड़े ही सुन्दर स्वरूप में थे। मैंने उनके पास कभी भी साँपों को नहीं देखा। मुण्डमाला या भस्म भी नहीं दिखाई दी, गांजा व भांग की बात तो निराली है। मुझे उनका शरीर करोड़ों कामदेव से भी सुन्दर एवं गौर दिखाई दिया है। जब भी देखा उनको सुन्दर रेशम जैसे कोमल वस्त्रों से सुशोभित ही देखा है। उनकी बाणी की मधुरता का तो क्या पृच्छना है ? उसे तो केवल अनुभव से जाना जा सकता है।

मैं अपने अनुभव के आधार पर इतना अवश्य कह सकता हूँ कि इस युग में भी जो चाहे और प्रयास करे वह भगवान राम, कृष्ण या शंकर का दर्शन पा सकता है। मनुष्य यदि श्रद्धा भक्ति और विश्वास को बढ़ा कर उनकी शरण में और उनके श्रीचरणों में मन लगा दे तो उसके लिए दर्शन दुर्लभ नहीं है। ऐसा दृढ़ निश्चय है। युग बदला होगा परन्तु भगवान और उनकी दुनिया का आध्यात्मिक मूल्य नहीं बदला है। वह ज्यों का त्यों उसी प्रकार से स्थिति है। उसका अनुभव कोई भी कर सकता है।

दशरथाचल जाने के पूर्व की मेरी दोनों इच्छाओं की पूर्ति हो गयी इसीलिए मुझे पूर्ण सन्तोष था। शीत बढ़ता जाता था। अतः कुछ समय उपरान्त सन १९४४ की जनवरी मास के प्रारम्भ में हम लोगों ने देवप्रयाग जाने का निश्चय किया। एक महीने बाद हम लोग नीचे आये, उतने में काया पलट हुआ, तन के साथ-साथ हमारा सम्पूर्ण मन भी घुल गया था।

देव प्रयाग के पास बाहर मोटर स्टैन्ड को जाने वाले मार्ग पर एक मकान खाली था, हम लोग उसी में रहने लगे।

वेदबन्धु—एक सच्चे संत का समागम

सच्चे संत सत्संग की महिमा गाने में नहीं थकते। संसार में छोटे बड़े नाना प्रकार के सुख होते हैं उनमें सत्संग का सुख सर्व श्रेष्ठ है, बात भी सत्य है। अन्य सभी सुख तन और मन को स्पर्श करते हैं परन्तु सत्संग का सुख तो आत्मा के प्रदेश में पहुँच जाता है और आत्मा को प्रभावित करता है। यहाँ तक कि वह व्यक्तित्व को बदल कर मनुष्य को आत्मा या परमात्मा का साक्षात्कार करने में सहयोग देता है। वीतराग और आत्मदर्शी महात्मा भी सत्संग से लाभान्वित होने को सदैव तत्पर रहते हैं और उसके गुणानुवाद गाने में थकते नहीं। मुझे भी सत्संग बहुत प्रिय हैं। सच्चे सन्तों के समागम के लिए मेरा हृदय सदैव आतुर रहता है उनके समागम में मुझे स्वर्ग-सुख मिलता है। कहा जाता है कि ईश्वर की कृपा और जीव के पुण्य का उदय हो तभी सच्चे सन्तों के दर्शन और समागम का लाभ मिल सकता है। यह बात कहां तक सत्य है इसको अनुभवी मनुष्य ही कह सकते हैं परन्तु यह तो सत्य है ही कि मुझे किसी न किसी रूप में सत्संग का लाभ पहिले से ही मिलता रहा है। ईश्वर की कृपा से मेरे लिए वह सुलभ था।

बम्बई का वातावरण प्रवृत्तिमय और राजसी गिना जाता है।

संत समागम की बात तो दूर की है, सन्तों के दर्शन भी बम्बई में असम्भव कहे जाते हैं, फिर भी मुझे वहाँ संत समागम का लाभ मिला। और शुद्ध तथा सात्विक जीवन का कुछ न कुछ प्रयास भी उधर चलता रहा।

सत्संग सभी स्थानों में प्राप्त हो सकता है। सन्तों के देव दुर्लभ दर्शन सभी जगह प्राप्त हो सकते हैं, परन्तु उसके लिए विशेष योग्यता की आवश्यकता है। हृदय में सत्संग के लिए लालसा व अनुराग होना आवश्यक है। यदि उसके लिए हृदय आतुर हो जाय तो वह सुलभ हो सकता है। इसके विपरीत वह दुर्लभ है, यदि उत्कंठा न हो।

हिमालय तो सन्तों का घर, धाम व आश्रय स्थान है। हिमालय को सन्तों की आराध्य भूमि कहें अथवा सन्तों के माता पिता की उपमा दें तो कोई हानि नहीं। वहाँ तो सन्तों के दर्शन सुगमता पूर्वक हो जाते हैं इसमें सन्देह नहीं, परन्तु अब वह बात न रही, आज हिमालय में भी सच्चे सन्तों का दर्शन दुर्लभ हो गया है। सन्तों के दर्शन व समागम के निमित्त गये हुए कितने लोगों को निराश होना पड़ता है। समस्त जगत में परिवर्तन हो रहा है तो हिमालय में भी होना चाहिये।

युग-धर्म परिवर्तन के फल रूप यदि विश्व की प्रणालियों में कुछ परिवर्तन हो जाय तो फिर क्या हिमालय उससे अछूता रह सकेगा? फिर भी हिमालय की पुण्य भूमि में अभी अच्छे संत विद्यमान हैं, भले ही उनकी संख्या कम हो और इसी कारण से उसकी पवित्रता अभी तक पूर्ववत् स्थित है। यद्यपि उनके दर्शन सरलता से नहीं हो सकते हैं तथापि अच्छे साधक को ईश्वर की कृपा से उनके समागम का लाभ मिल जाता है। मुझे भी इस प्रकार का लाभ ईश्वर की कृपा से प्राप्त होता रहा है।

टेहरी के निवास काल के अन्तरगत भगवान् कृपा से एक अच्छे

सन्त से भेंट हुई। इस आख्यान को प्रारम्भ करने के पहिले थोड़े समय के लिए टेहरी का क्षेत्र छोड़कर हरिद्वार पहुंचना होगा अस्तु कल्पना के पंख लगाकर उड़िये, हम लोग हरिद्वार के पवित्र प्रदेश में प्रवेश कर गये।

आगे के एक प्रकरण में अहमदाबाद के एक संस्कारी कुटुम्ब का स्वल्प उल्लेख आ गया है। इसी कुटुम्ब के व्यक्तियों के साथ सन् १९४३ ई० में मैं देवप्रयाग की प्रथम बार यात्रा कर, हरिद्वार आया था। उस समय हरिद्वार के श्रवणनाथ के मन्दिर के हाल में उत्तर प्रदेश के सन्त सुप्रतिष्ठित श्री प्रभुदत्त ब्रह्मचारी भागवत् का सप्ताह पारायण करा रहे थे। हम लोग थोड़ी देर उधर बैठ गये। भगवान् की कथा पूरी होने के उपरान्त प्रभुदत्त जी अपने नियमानुसार खड़े हो गये और नृत्य के साथ कीर्तन करने लगे। उनके हाँथ में झाँझ थी अन्य भक्तों के हाँथों में झाँझ, करताल, मञ्जीरा और ढोल आदि अनेक वाद्य यंत्र थे। वे भक्तगण भी प्रभुदत्त जी का साथ देने लगे और नृत्य के साथ नाम संकीर्तन करने लगे, कीर्तन इस प्रकार था

“राधे राधे श्याम बोलो, राधे राधे श्याम बोलो”

क्रमशः कीर्तन द्रुतलय में चला, और आनन्द का प्रवाह बढ़ा, तब केवल “राधे राधे, राधे राधे” सुनाई देता था। मुझे भी कीर्तन में आनन्द आता था और उस समय में करताल का प्रयोग करता था, दैवयोग से वह उस समय मेरे पास ही थी अतः आनन्द के प्रवाह में मैं भी कीर्तन प्रांगण में उतर पड़ा। कीर्तन प्रायः दस मिनट तक चलता रहा उसके बाद प्रभु दत्त जी झाँझ रख कर अपने खण्ड की ओर दौड़ते गये, भक्तों ने भी उसके बाद कीर्तन समाप्त कर दिया।

दस मिनट का वह सामुहिक कीर्तन वास्तव में रस से परिपूर्ण था।

श्री चैतन्य महाप्रभु के भावावेश का कीर्तन करना और कराने के विषय को मैंने पढ़ा था। उनकी कीर्तन मण्डली का एकचित्र भी मैंने देखा था जो मुझे बहुत पसन्द आया था। चैतन्य महाप्रभु के कीर्तन आदर्श को सम्मुख रख प्रभुदत्त जी भी कीर्तन का आयोजन करते हैं। चैतन्य महाप्रभु के संकीर्तन की मस्ती और आनन्द तो अकथनीय होती होगी, उसकी तो कोई तुलना ही नहीं, फिर भी इतना तो कहा जा सकता है कि प्रभुदत्त जी का कीर्तन भी आकर्षक और आनन्दबर्धक होता था। हो क्यों न ? प्रभु का नाम संकीर्तन, सदा सुखमय और आनन्द दायक होता है। जिसको उसमें आनन्द न प्राप्त हो उसका हृदय नीरस है, ऐसा कह सकते हैं।

सामुहिक कीर्तन के प्रयोग और कार्यक्रम आजकल बढ़ते ही जाते हैं। यह बड़ी सुन्दर बात है कीर्तन प्रेमी पुरुष व स्त्रियों को उससे लाभ होगा, परन्तु उसके भय स्थान से सबको सावधान रहना चाहिये। अधिकतर कीर्तन का प्रयोग लोगों के मनोरञ्जन, उनसे प्रसंसा पाने और धन एकत्र कराने के काम आता है। यह बात कर्ण कटु होते हुये भी वास्तविक सत्य है। इसे स्वीकार करना पड़ता है। नाम संकीर्तन और भजन हृदय का प्राकट्य कर ईश्वर को प्रसन्न करने के निमित्त होता है। एक प्रकार की उच्चकोटि की आराधना की गणना में उसका स्थान है। उसके आराध्य देव केवल ईश्वर ही हैं। परन्तु कहीं उस स्थान पर लोकेषणा अथवा लौकिक स्वार्थ न बैठ जाय और भगवत् आराधना के पवित्र स्थान पर इसी की आराधना प्रारम्भ न हो जाय इस बात का ध्यान भजन व कीर्तन करने वालों को सदैव रखना चाहिये। मीरा, नरसी मेहता, तुकाराम और चैतन्य महाप्रभु की तरह जो केवल ईश्वर प्रेम से प्रेरित होकर उसकी प्रसन्नता के लिए भजन व कीर्तन करेगा उसका जीवन धन्य हो जायगा। वह ईश्वर का दर्शन भी कर सकेगा उसकी सभी इच्छाओं की पूर्ति होगी। उसे धन व प्रतिष्ठा तो

स्वतः प्राप्त होगी। उसके लिए इच्छा करने की आवश्यकता ही नहीं कारण यह है कि ईश्वर अपने भजन करने वालों को सब प्रकार से सुरक्षित रखता है और उनकी उचित इच्छाओं की पूर्ति करना सहज स्वभाव है। भगवान की यह प्रतिज्ञा है अस्तु व्यक्ति को चिन्ता करने की कोई आवश्यकता नहीं है। यदि उसकी चिन्ता का निवारण इस विचार धारा में अविश्वास के कारण न हो सके तो प्रारम्भ में अपने हित साधन के लिए भजन कीर्तन करे परन्तु आराध्य देव केवल एक ईश्वर है, इस बात का स्मरण रख अंत में शीघ्र उसे भगवान का भक्त और पुजारी बन जाना चाहिये। भजन कीर्तन का प्रयोग केवल साधना के लिए होना चाहिये तभी जीवन का विकास हो सकेगा।

[३]

कीर्तन समाप्त होने के उपरांत हम लोग प्रभुदत्त जी के दर्शन के लिए गये। हम लोगों को देखकर वे बड़े प्रसन्न हुये और हम लोग भी उनके दर्शन पाकर परमानन्दित हुये। उस समय उनके कमरे में एक कोई अन्य महात्मा बैठे थे। वे श्वेत वस्त्र धारण किये थे, उनके मुख पर तेज था और नेत्रों से आकर्षण और शान्ति प्रस्फुटित होती थी। देखते ही यह आभासित होता था कि वे अवश्य कोई महापुरुष होंगे थोड़ी देर तक मैं और वे परस्पर एक दूसरे को देखते रहे परन्तु अधिक मनुष्यों की उपस्थिति के कारण वार्तालाप करने का अवसर न मिल सका। हम लोग वहाँ से बिदा होकर चल दिये परन्तु उस महापुरुष का आकर्षण उसकी शान्त आकृति मन में सदैव के लिए स्थान पा गई।

उस महापुरुष के प्रति मेरा प्रेम प्रथम दर्शन से ही हो गया। इस समागम के बहुत समय उपरांत मुझे टिहरी में निवास करने का अवसर प्राप्त हुआ। वहाँ पर अचानक एक दिन उनसे फिर भेंट हो गई, मैं गंगा की ओर जा रहा था वे उधर से आ रहे थे दोनों की नजरें एक हुईं,

बड़ा आनन्द उमड़ पड़ा, विशेष कर इस बात से कि हम दोनों बद्रीनाथ मन्दिर की धर्मशाला में एक ही स्थान पर ठहरे थे। ईश्वर की कृपा से उस महान्त संत का समागम सरल बन गया जिससे मिलने की इच्छा मेरे मन में बहुत समय से थी। सहसा उस इच्छा की पूर्ति होने पर मेरे आनन्द की सीमा न रही। उस महात्मा का विस्तृत उल्लेख करने के प्रथम मैं उनके परिचय में एक शब्द कह दूँ। 'उनका नाम वेदबन्धु था।'

• • •

वेदबन्धु का अनोखा अनुभव

धर्म और साधना के ग्रन्थों का वर्षों से मनन करने का जो फल प्राप्त होता है। उससे भी कहीं अधिक मूल्यवान फल साधना से जीवन को उज्ज्वल बनाये हुये संत के दर्शन और समागम से मिलता है। ऐसे संत पुरुष की उास्थिति बड़ी प्रेरणात्मक होती है, और तप्त अन्तरात्मा को शान्ति प्रदायक होती है। उनके समागम से मन को अशान्त बनाने वाली शंकाओं का सुखद समाधान होता है और कितनी ही नई-नई बातों का अनुभव प्राप्त होता है। वेदबन्धु ऐसे ही पुरुष थे इसलिए उनका समागम मुझे रुचिकर लगता था।

वेदबन्धु अधिकांश योगी थे। योग की ओर उनकी लगन विशेष थी परन्तु वे केवल योगी ही न थे वेदान्त की तरफ उनकी विशेष रुचि थी। उनकी दृष्टि ज्ञानमयी थी। अष्टावक्र गीता के श्लोकों में उनको बड़ी रुचि थी और साथ साथ भक्ति मार्ग के लिए मान्यता थी। उनकी विचार दृष्टि बड़ी विस्तृत थी। उसमें किञ्चित मात्र भी संकुचितता न थी।

हम लोगों का पारस्परिक प्रेम ज्यों-ज्यों बढ़ता गया त्यों-त्यों हम लोग एक दूसरे के और निकट आते गये अतः हम लोग आपस में अपने-अपने अनुभवों का आदान प्रदान करने लगे। ऋषिकेश में मुझे त्रिकालज्ञ

महात्मा का सम्पर्क हुआ था उनके विषय में मैंने बात की तो वे बोल उठे, “इस देश आज भी ऐसे त्रिकालज्ञ ज्ञानी पुरुष अनेकों हैं जब कभी प्रभु की कृपा से उनके दर्शन हो जाते हैं तब बड़ा आनन्द प्राप्त होता है। अभी कुछ ही महीनों पहिले हम लोग एक सुन्दर स्थल में रहते थे। प्रभुदत्त जी हम लोगों के साथ थे। वहाँ पर उनकी भागवत् कथा चल रही थी। एक दिन वहाँ एक महापुरुष आ पहुँचे, वे विल्कुल नग्नावस्था में थे। कथा पूरी होने के पश्चात् रात को वे हम लोगों के पास आये। हम लोगों ने उनका सत्कार किया वे थोड़ी देर तक उसी प्रकार बैठे रहे बाद में वे मेरी व प्रभुदत्त जी की भूत व भविष्य की बातें कहने लगे। भूत काल की बातों जो उन्होंने बताई वे तो विलकुल ठीक थी भविष्य की भगवान् जाने। हम लोगों को बड़ा आश्चर्य हुआ और उनकी महानता का विश्वास हो गया। वार्तालाप समाप्त होने के उपरान्त उनके आराम करने की व्यवस्था कर दी गई। हम लोगों ने निर्णय किया कि उस महापुरुष का प्रातःकाल ठीक तरह से सम्मान करेंगे और उनकी योग्य सेवा करेंगे परन्तु सुबह उनका दर्शन ही न हुआ—प्रातःकाल होने वे पूर्व ही वे कहीं चले गये। अनिच्छित, स्वतः आये हुये पुरुषरत्न का सम्मान भी न कर सके और एक अमूल्य रत्न की सेवा से भी वंचित रहे उससे हम लोगों को विशेष दुःख हुआ परन्तु दूसरा कोई उपाय भी न था उनके ढूँढने का थोड़ा बहुत निष्फल प्रयास किया गया, परन्तु उससे कोई पता न चला, अंत में हम लोग शान्त होकर बैठ गये।”

इस प्रकार के महापुरुषों का जब समागम हो जाय तभी उनकी सूचना प्राप्त हो सकती है और उनके विषय में जाना जा सकता है परन्तु जब तक वे स्वयं कृपाकर अपने वास्तविक स्वरूप की पहिचान न करायें तब तक उनके सम्पर्क में आकर भी उनको कोई जान नहीं सकता। उनके सच्चे स्वरूप को जानने का काम एक असाधारण पुरुष के लिए भी कठिन

उनका स्पष्टीकरण मेरे लिए नया था । पुस्तकों में इस विषय को पढ़ा था । परन्तु एक अनुभवी व्यक्ति द्वारा ऐसी विशद व्याख्या मैंने जीवन में पहिली बार उनसे सुनी । मुझे जिज्ञासा हुयी अतएव उसको व्यक्त करते हुए मैंने कहा,—“क्या ऐसी अनुभूति हो सकती है ?”

“अवश्य” उनके नेत्र चमक उठे, और उनके मुख पर मुसकान छा गयी वे बोले “अवश्य हो सकती हैं । यह सब संकल्प का ही कारण है, संकल्प की शक्ति बहुत बड़ी है । वह उसको धीरे-धीरे संभाल कर बढ़ायी जा सकती है । हम लोग देखते हैं दृढ़ संकल्प वाले मनुष्य यदि सोते समय अमुक समय उठ जाने का संकल्प करलें तो उसके प्रभाव से वे उसी समय उठ जायेंगे । समाधि का भी वही हाल है । ऐसी शक्ति भारी साधना के बाद प्राप्त की जा सकती है । यह बात सत्य है इसमें किसी प्रकार का सन्देह नहीं ।”

[३]

नेपाल के राज कुटुम्ब के साथ उनका किस प्रकार सम्बन्ध हुआ इस विषय में जब मैंने उनसे प्रश्न किया तो वे कहने लगे—

“यह बात हम लोगों के वर्तमान विषय के अनुसंधान के अन्तरगत है । कुछ समय पहिले एक बार जब हरिद्वार में प्रभुदत्त जी की ओर से श्रवण नाथ मन्दिर में श्रीमद्भागवत की कथा हो रही थी उस समय मैं कथा में उपस्थित था । कथा पूरी होने में थोड़ा ही समय बाकी था उसी समय मैंने खेचरी मुद्रा करली उसके प्रभाव से मुझे तुरन्त ही समाधि प्राप्त हो गई बाह्य भान समाप्त हो गया । कथा के बाद कीर्तन प्रारम्भ हुआ और वह भी समाप्त हो गया । श्रोतागण एक के बाद एक जाने लगे परन्तु मुझे कुछ पता न चला । जब सब लोग चले गये तो एक वृद्ध स्त्री वहां बैठी रही वह पहिले से ही मेरी ओर देख रही थी, मुझे अचल अवस्था में इतने समय से बैठे देखकर उसे बड़ा आश्चर्य हुआ । मुझे सचेत

होने की प्रतीक्षा करते-करते वह उकता गई और मेरे समीप आकर अत्यन्त ध्यान पूर्वक देखने लगी। उसको योग का थोड़ा बहुत अनुभव था। इसलिए वह मेरी अवस्था को पहिचान कर मुझे जागृत करने का प्रयास करने लगी। थोड़े समय के उपरान्त जब मैं जागृत हुआ। तो अपने सामने एक वृद्धा माता को देखकर मुझे कुछ आश्चर्य हुआ उसका शरीर गोरा था और वेश भूषा से वह कोई श्रीमन्त कुटुम्ब की स्त्री ज्ञात होती थी। उसी दिन से उसका और मेरा परिचय बढ़ता गया और परिणाम स्वरूप गाढ़ा स्नेह हो गया। वह माता नैपाल के राज परिवार की थी उनका मकान सप्तसरोवर में था। वहाँ भी मुझे थोड़े दिन रहने का अवसर प्राप्त हुआ था। इस प्रकार नैपाल के राज परिवार के दूसरे सदस्यों के साथ मेरा परिचय हुआ। इस प्रसंग के बाद मैं अधिकतर एकान्त में ही बैठना पसन्द करता हूँ।”

उनकी बात सुनकर मुझे बड़ा आनन्द हुआ। अनुभवी सन्तों का समागम बड़ा ही दुर्लभ है ऐसे सन्त साधना के अनेक ग्रन्थों की आवश्यकता को पूरी करते हैं, इसमें लेश मात्र अतिशयोक्ति नहीं।

और उत्तर काशी में ही रहते थे । नैपाल के राजकुमार को उनसे प्रेम था, राजकुमार वेदबन्धु जी से भी प्रेम करते थे । मंसूरी व देहरादून के बीच में एक स्थान जड़ी पानी नाम का है वहाँ पर राजकुमार के मकान में वेदबन्धु बार-बार ठहरते थे । राजकुमार के कहने पर वे उन सन्यासी महात्मा को लेकर ऋषिकेश जा रहे थे परन्तु भार्ग में अवरोध हो गया । टेहरी और ऋषिकेश के बीच का मोटर मार्ग दो जगह से टूट गया जिसके कारण मोटर यातायात बन्द हो गया । जब तक मोटर यातायात फिर से न प्रारम्भ हो जाय तब तक उन लोगों ने टेहरी में रहने का निश्चय किया । लगभग २० दिन के बाद मार्ग ठीक हो सका, इस समय में हम लोग एक दूसरे के प्रगाढ़ संसर्ग में आ गये । उस संसर्ग से पवित्र प्रेम का प्रवाह प्रस्फुटित हुआ । इतने थोड़े समय में ऐसा प्रगाढ़ प्रेम मुझे बहुत कम सन्तों से हुआ होगा, हम लोग बदरीनाथ मन्दिर की धर्मशाला में एकत्रित हुए तो मुझे देखते ही उस दिन वेदबन्धु जी ने कहा—

“अन्त में हम लोग मिले अवश्य । हरिद्वार में आपको पहिली बार प्रभुदत्त के पास देखा था तब ही मुझे ऐसा प्रतीत हुआ कि आप में कोई विशेषता है । आपको देखकर आनन्द हुआ था । और आप से मिलने की इच्छा हुई थी । मुझे आपके लिए स्वाभाविक प्रेम उत्पन्न हुआ था ।”

उसकी बात सुनकर मुझे भी याद आ कि मुझे भी पहली बार उनको देखते ही उसी प्रकार के भावों का उदय उनके प्रति हुआ था । मेरी बात विस्तारपूर्वक सुनकर उन्हें बड़ा आनन्द हुआ, मैंने उनसे प्रश्न किया—

“क्या आपको कीर्तन अच्छा नहीं लगता ? आप प्रभुदत्त के साथ ही रहते थे परन्तु आप उनके कीर्तन में उपस्थित न थे ।”

उन्होंने उत्तर दिया—“सच्ची बात है। मैं कीर्तन में प्रतिदिन नहीं जाता था। इसका यह अर्थ कदापि नहीं कि मुझे कीर्तन में रुचि नहीं है। मैं जन समूह में बैठने के बजाय एकान्त में बैठना अधिक पसन्द करता हूँ, अतएव अधिकांश मैं कमरे में बैठा रहता था यदि किसी समय ऐसी परिस्थिति आयी कि कीर्तन की मेरी उपस्थिति अनिवार्य हो गई तो मैं खेचरी मुद्रा लगाकर अलग बैठ जाता था फिर कहाँ क्या होता है मुझे खबर न रहती थी।”

मैंने प्रश्न किया—“क्या आपको खेचरी मुद्रा का अभ्यास है?”
उन्होंने निःसंकोच उत्तर दिया—“अवश्य”।

मैंने फिर प्रश्न किया—“योग शास्त्र खेचरी मुद्रा का गुणगान करते हैं, खेचरी मुद्रा से समाधि सिद्ध हो जाती है, आकाशगमन हो सकता है, मस्तक से टपकते अमृत का पान कर उसके द्वारा योगी अखण्ड यौवन प्राप्त करता है और मृत्युञ्जय बन जाता है, ऐसी बातों का उल्लेख योग के ग्रन्थों में आया है। इस सम्बन्ध में आपका अनुभव क्या है?”

उन्होंने स्पष्ट करते हुये उत्तर दिया—“मुझे जितना अनुभव प्राप्त हुआ है उसमें मुझे सन्तोष है, खेचरी द्वारा अमृत रस का पान होता है और समाधि में सिद्धि मिलती है इसमें कोई संशय नहीं, मेरी दशा इस समय ऐसी है कि यदि मैं जीभ को तलवे पर लगा दूँ तो मुझे समाधि सरलता से हो जाती है। इस दशा में मैं इच्छानुसार रह सकता हूँ। खेचरी साधने के पूर्व मैं निश्चय कर लूँ कि इतने समय तक समाधि में रहना पड़ता है तो उतने ही समय के उपरान्त मुझे भान आयेगा। तात्पर्य यह कि खेचरी की सहायता से मैं इच्छानुसार समाधि दशा में रह सकता हूँ। जब तक इच्छित समय न व्यतीत हो जायगा तब तक जीभ तलवे पर लगी ही रहती है।”

महात्मा वेदबन्धु से वार्तालाप

रामकृष्ण देव के महान् शिष्य “नाग महाशय” का स्मरण आगया । नाग महाशय एक सच्चे संत पुरुष थे । रामकृष्ण देव के सम्पर्क में आने के उपरान्त एक बार उन्हें सन्यास लेने की इच्छा हुई । उन्होंने रामकृष्ण देव से इसके निमित्त अवकाश माँगा ।

रामकृष्ण देव ने कहा—“तुम्हें बाहर के सन्यास लेने की आवश्यकता नहीं, घर में रहते हुए, व्यावहारिक काम करते हुए, तुम अपना कल्याण कर सकोगे ।”

परन्तु उनको बोध न हुआ, वे कहने लगे :—

“यह बात विदित है कि संत समागम बिना आत्मोन्नति कठिन है । आपके उपदेशों से अत्यधिक सहायता प्राप्त हुई है । घर में रहकर सतसंग का लाभ कैसे प्राप्त होगा ?”

रामकृष्ण देव ने उन्हें शान्ति देते हुये उत्तर दिया—

“सन्तों का समागम तुमको घर बैठे प्राप्त रहेगा । सन्त पुरुष तुम्हें ढूँढते तुम्हारे घर आते रहेंगे तुम इस बात की चिंता न करो ।”

यह सुन कर नाग महाशय को बोध होगया और बात भी सत्य निकली । उनको घर बैठे सन्तों के दर्शन प्राप्त होने लगे । फिर तो वे

भी एक सन्त बन गये । स्वामी विवेकानन्द विदेश की यात्रा से वापस आने के उपरान्त उनसे मिलने गये, नाग महाशय के प्रति उनका कितना अधिक भाव था वह उनके शब्दों से सरलता पूर्वक समझा जा सकता है । उनका कहना है कि संसार के अनेकों स्थलों में मैं भ्रमण करता रहता हूँ परन्तु आज तक नाग महाशय जैसा महापुरुष मेरे देखने में नहीं आया ।

नाग महाशय की तरह मुझे किसी का आशीर्वाद तो नहीं मिला ; नाग महाशय के समान उत्तम साधुता भी मुझमें नहीं है फिर भी इतनी बात सत्य अवश्य है उनकी तरह मुझे भी सन्तों का समागम सुगमता पूर्वक प्राप्त होता रहता है । मेरा कोई निश्चित घर नहीं है परन्तु जहाँ भी रहता हूँ वहाँ मुझे सन्तों के दर्शन का लाभ मिल अवश्य जाता है मेरी आत्मकथा में ऐसे अनेकों उदाहरण देखे जा सकेंगे । यहाँ पर तो यह कहना पर्याप्त होगा कि महात्मा वेदबन्धु का उदाहरण भी वैसा ही है ।

[२]

वेदबन्धु के समागम से मुझे बड़ा आनन्द प्राप्त हुआ । धीरे-धीरे हम लोगों का पारस्परिक स्नेह और सुदृढ़ हो गया । वे मद्रास प्रान्त के निवासी थे, अवस्था लगभग ३५-४० के अन्दर थी उनका शरीर पतला और रंग गेहूँवा था । उनका तेजस्वी एवं शान्त मुख देखते ही मेरे मन में आदर भाव उत्पन्न हो गया था । अल्प अवस्था में ही वे घर के बाहर निकल गये थे । अरविन्द आश्रम और रमण महर्षि के आश्रम में कुछ समय व्यतीत कर चुके थे । उन्होंने काफी भ्रमण किया था । स्वयं अनेक प्रकार की साधना कर चुके थे और विभिन्न अनुभव प्राप्त कर चुके थे । उनका स्वभाव नम्र और दयालु था । उनको अंग्रेजी और संस्कृत का अच्छा ज्ञान था । इस समय वे उत्तर काशी से आ रहे थे । उनके साथ एक वृद्ध सन्यासी भी थे जो देवी के उपासक थे

दिया करता था। वह विवरण पारस्परिक प्रेम के कारण सरलतापूर्वक होता था। वेदबन्धु भारत के अनेकों गुप्त व प्रकट संत महात्माओं के सम्पर्क में आये थे। उनका कहना था कि जिन ५ या ६ उच्च कोटि के जीवन मुक्त महापुरुषों से उनका सम्पर्क हुआ है उनमें श्री रामण महर्षि सर्वोत्तम हैं। उस समय मेरी अवस्था कम थी फिर भी वे मुझसे विशेष प्रेम करते थे।

उधर एक बार रात्रि में जब मैं ध्यान में बैठा तो मध्य रात्रि के उपरान्त मुझे ध्यान में आनन्द आने लगा। जैसे-जैसे समय व्यतीत होता गया मेरी एकाग्रता बढ़ती गयी, यह पता नहीं कि उस समय कितने बजे होंगे। समय जानने का कोई साधन भी उस समय उपलब्ध न था। थोड़ी देर के उपरान्त मेरे शरीर का भान समाप्त हो गया। समाधि की दशा का प्रारम्भ हुआ और मुझे प्रकाश दिखाई देने लगा। हजारों दीपक का सामूहिक प्रकाश संभवतः उसकी समता करने में असमर्थ होगा। उस प्रकाश के अन्दर मुझे मेरुदण्ड या करोड रज्जू का दर्शन होने लगा फिर उसके बाद उसके अन्दर का भाग दृष्टिगोचर हुआ, वह बड़ा ही देदीप्यमान था, इस भाग में से, मुझे दिखाई पड़ा, कि कोई सूक्ष्म शक्ति तत्व धीरे-धीरे ऊपर की ओर चढ़ रहा है। यह देखकर धारणा हुई कि संभवतः यह वही कुण्डलिनी शक्ति है जिसका वर्णन योग के ग्रन्थों में किया गया है। धीमे-धीमे वह शक्ति ऊपर चढ़ते-चढ़ते मेरे हृदय और बाद में कण्ठ प्रदेश तक आ पहुँची और तदुपरान्त भ्रूमध्य तक आने लगी, उस समय मुझे शरीर का स्मरण न था केवल सूक्ष्मतर स्वरूप का मन यह सब अनुभव कर रहा था। जैसे-जैसे वह शक्ति ऊपर चढ़ती थी वैसे-वैसे मेरा मन प्रकाश के सागर में गोल-गोल फिरता था जैसे गाड़ी या रथ का पहिया घूमता है। परन्तु इस चक्कर की गति बहुत मन्द थी। इस तरह चक्कर काटता हुआ मेरा मन किधर जायगा और मेरे शरीर का क्या होगा ? इस विचार

के कारण थोड़ा भय भी होता था। मेरे आनन्द एवं आश्चर्य की कोई सीमा न थी। इस प्रकार का अनुभव मेरे लिए बिल्कुल नया था। साथ-साथ दूसरा अनुभव भी होने लगा। मेरे हृदय की धड़कन धीरे-धीरे कम होती जाती थी। वह एकदम शान्त हो जाने की तैयारी में थी। योग-ग्रन्थों में मैंने पढ़ा था कि ऊँचे प्रकार की निर्विकल्प समाधि में हृदय की धड़कन भी बन्द हो जाती है उसी बात का अनुभव मुझे प्रत्यक्ष रूप से हो रहा था। मुझे आभासित होने लगा कि मैं निर्विकल्प समाधि की ओर जा रहा हूँ अथवा यह कुछ और अनुभव है। पूरा अनुभव अचिन्त्य होने से कुछ संकोच व भय होता था। इस प्रकार का अनुभव कितने समय तक रहा यह मैं नहीं जानता परन्तु उसके बाद मुझे किसी प्रकार का सूक्ष्म भान भी नहीं रहा। मन भी मानो मर गया हो।

जब आंख खुली तो सवेरा हो गया था; बाहर सूर्य का प्रकाश फैल गया था। वेदवन्धु मेरी प्रतीक्षा में मेरे खण्ड के बाहर खड़े थे, मैं बाहर निकला तो उन्होंने प्रश्न किया :

“अरे इतनी देर ? बड़ी देर से मैं आपकी प्रतीक्षा करता हूँ, आपके मुख पर प्रकाश और आनन्द है। कोई उत्तम अनुभव होना चाहिये।”

मैंने उनको अपने अलौकिक अनुभव की बात सुनाई। वे बहुत प्रसन्न हुये और मुझसे लिपट गये।

“धन्य है आपको”—वे बोल उठे—“आप पर प्रभू की पूरी कृपा है।”
 “आपके ऊपर क्या नहीं है ?” मैंने अपना प्रेम कह सुनाया, कुण्डलिनी का ऐसा अनुभव श्री रामकृष्ण देव के जीवन चरित्र में आता है जिज्ञासु पुरुष उसको स्वयं ढूँढ़कर पढ़ सकते हैं। श्री रामकृष्णदेव की शक्ति और योग्यता तो बहुत लोकोत्तर थी। मैं यदि उनकी चरणरज हो

उस शरीर को छोड़ने और वेदबन्धु जी के जन्म धारण करने के समय का अन्तर एक हजार वर्ष से भी अधिक है, इस समय का व्यौरा किस प्रकार होगा इतना अधिक समय उन्होंने कहाँ व किस तरह बिताया होगा ? साधारण मनुष्य को इस प्रकार की शंका होना स्वाभाविक है, परन्तु इसके उत्तर में यदि गीता के छठे अध्याय के योग भ्रष्ट पुरुष का वर्णन देखा जाय तो इस शंका का समाधान सुगमता पूर्वक हो जायगा । गीता के वर्णन के अनुसार उन्होंने किसी पुण्य लोक में इतना समय व्यतीत किया होगा । इस मान्यता में कोई दोष नहीं है, यह शास्त्रीय है, और तर्क एवं अनुभव से आधारित है । शास्त्रों में मृत्यु लोक के उपरान्त दूसरे स्वर्ग लोकों का वर्णन अनेकों स्थानों पर आया है, बिना किसी प्रयोग और अनुभव किये उसकी अवहेलना करना उचित नहीं है ।

दूसरी बात वेदबन्धु अनुभवों पर विचार करने से प्रगट होती है कि सुवर्ण की चोरी में सहयोग देने से हजार या उससे अधिक वर्षों बाद भी उनको मृत्युलोक में वापस आकर जन्म धारण करना पड़ा और अपने अपराध का प्रायश्चित्त करना पड़ा । इसका अर्थ यह हुआ कि मनुष्य जो भी कर्म करता है, अच्छे बुरे, उसका फल उसको देर या सबेर भोगना पड़ता है । पद्मपाद का शिष्य कोई साधारण श्रेणी का न होगा ज्ञान साधना के पवित्र प्रदेश का प्रवास उसने भली प्रकार किया होगा, अधिकारी पुरुष को भी एक साधारण अपराध के लिए फिर से जन्म लेकर अशान्ति भोगनी पड़ी तो फिर जो मनुष्य प्रति पल झूठ बोलते हैं, कपट करते हैं, और अनीति का आधार लेकर दम्भ, पाखण्ड, चोरी, जुवां, हत्या, व्यभिचार आदि महापापों का पुनरावर्तन करते रहते हैं उनका उद्धार सरलता पूर्वक किस प्रकार हो सकता है ? जो पग-पग पर पाप परायण हैं उसको कितनी नारकीय यंत्रणाओं को सहना पड़ता होगा ? किये हुये कुकर्मों को भोगने के लिए जन्म जन्मांतर तक न जाने कितने प्रकार के दण्ड उनकी प्रतीक्षा करते

होंगे। मनुष्य जो करता है। वह उसे भोगना ही पड़ता है सत्कर्म अथवा दुष्कर्म का अच्छा या बुरा फल यदि इस जन्म में मिलता न देख पड़े तो फिर भी वह मिलेगा अवश्य, इसमें कोई सन्देह नहीं। अतएव मनुष्य को दुष्कर्म और पाप से सदैव बचना चाहिये। कुकर्म करने की वृत्ति ही न हो, इस प्रकार के स्वभाव का निर्माण कर लेना चाहिये। जिसे आत्मोन्नति अथवा भगवत् दर्शन की इच्छा हो उसे तो यह बात विशेष रूप से स्मरण रखना है कि मनसा, वाचा कर्मणा वह अपने को पवित्र बनाए और सत्कर्म करने की आदत डाले उसके बिना उसकी साधना सफल नहीं होगी। व्यतीत हुआ जीवन वापस नहीं आ सकता परन्तु जो अभी भी शेष है उसमें कोई कुकर्म न हो और कलक न लगने पाये इसके लिए विशेष सावधानी की आवश्यकता है। वेदबन्धु का अनुभव इस प्रेरणा की पूर्ति का उदाहरण है।

[२]

टेहरी के निवास काल के अन्तरगत मेरा झुकाव अधिकांश योग की ओर था। योग साधना का प्रवाह संचरित होने के कारण मेरा ध्यान समाधि की ओर अधिक रहता था। रात्रि का अधिकांश भाग बैठे बीत जाता था। ध्यान में शरीर का भान न रहने के कारण जो आराम मिलता था वह शयन के आराम का पूरक होता था। कभी-कभी बैठे रहने से जब पैर दुखने लगता था तब उसे थोड़ा फैला कर राहत ले लेता था। रात्रि का समय शान्ति पूर्वक व्यतीत हो जाता था। मेरी आज भी यही धारणा है कि रात्रि का समय साधना के लिए सर्वोत्तम है उस समय की प्राकृतिक वातावरण की शान्ति मन को एकाग्र करने में महत्वपूर्ण सहयोग देती है। अतः अच्छे साधकों को रात्रि के समय का उपयोग साधना में यथा सम्भव अधिक करना चाहिये।

उस समय के विभिन्न अनुभवों का विवरण, मैं वेदबन्धु जी को

क्या करना चाहिये । नेत्रों से अश्रु प्रवाह बहने लगा उसी समय कुटिया में सर्वत्र प्रकाश फैल गया और उसमें एक महापुरुष का दर्शन प्राप्त हुआ । मुझे अवगत हो गया कि वे, और कोई नहीं, किन्तु महर्षि व्यास हैं । उनका शरीर सुवर्ण के समान कान्तियुक्त एवं उनके नेत्र मानों अमृत से आँजें हो । वे शुद्ध संस्कृत में मुझे शान्ति का उपदेश देने लगे । उनके सब शब्द तो मुझे याद नहीं, परन्तु उनके शब्दों का अन्तिम वाक्य “कैवल्यं प्राप्स्यसि” (तुम कैवल्य की प्राप्ति करोगे) इस प्रकार थे । उनकी शान्ति वार्ता का सार इस प्रकार है—“पूर्वजन्म में तुम शंकराचार्य के शिष्य पद्मपदाचार्य के शिष्य थे उस जन्म में तेरे में ज्ञान था, परन्तु विज्ञान न था अतः मुक्ति न पा सका । उस जन्म में तुमने एक मित्र को सुवर्ण की चोरी करने में साथ दिया था उसके फलस्वरूप इस जन्म में अशान्ति अनुभव कर रहे हो अब तुम उत्तर काशी जाकर अमुक विधि से हवन करो वाद में ब्रह्मभोज करो उससे प्रायश्चित्त पूरा हो जायगा तुम्हें शान्ति मिल जायगी और इसी जन्म में तुमको कैवल्य प्राप्त हो जायगा ।”

“इतना सन्देश देकर भोजपत्र की कोपीन पहिने वे महापुरुष अन्तर्धान हो गये । उस अनुभूति के उपरान्त मुझे शान्ति मिली ।” वेदबन्धु जी ने फिर कहा, “उत्तर काशी जाकर मैंने महर्षि की बताई विधि के अनुसार हवन कराया और वाद में ब्रह्मभोज भी हुआ । इस प्रकार प्रायश्चित्त पूर्ण हो जाने पर एक दिन मुझे निर्विकल्प समाधि का अनुभव हुआ उससे मेरी सारी अशान्ति दूर हो गयी । आज मुझे शान्ति है । पूर्ण शान्ति है ।”

कुण्डलिनी का उत्तम अनुभव

वेदबन्धु का अनुभव वास्तव में बड़ा अद्भुत था । जिसको साधना में श्रद्धा नहीं है, साधना के मर्म की समझ नहीं है, और जिसका जीवन साधनामय नहीं है, उसके लिए ऐसे अलौकिक अनुभवों को समझना और उनमें विश्वास करना कठिन होगा परन्तु इससे क्या उसकी सत्यता मिट सकती है ? मनुष्य ज्यों-ज्यों पवित्र और प्रभुपरायण होगा एवं अंतरंग साधना के सागर की गहराई में उतरता जायगा त्यों-त्यों उसे इस प्रकार के अनुभवों का आनन्द भी मिलता रहेगा । मेरे जीवन में इस प्रकार का अनुभव एक दूसरे रूप में हो चुका था, अस्तु इसका समझना मेरे लिए कठिन न था । वेदबन्धु का अनुभव वास्तव में आनन्ददायक था । मुझे उसके सुनने से ही आनन्द की अमुभूति होती थी । वेदबन्धु अब पूर्ण शान्ति में निमग्न रहते थे यह उनको देखने से ज्ञात होता था । उनको प्राप्त हुये अनुभवों का फल कुछ कम न था ।

वेदबन्धु को "व्यास" के दर्शन हुये या "दत्तात्रेय" के यह मुझे ठीक स्मरण नहीं है । जिसका भी हो परन्तु था वह शान्तिदायक इसमें सन्देह नहीं । वेदबन्धु जी के अनुभवों से प्राप्त सूचना के अनुसार एक विशेष उल्लेखनीय बात यह है कि वेदबन्धु पूर्व जन्म में आदि शंकराचार्य के विशेष पद्मपादाचार्य के शिष्य थे । यहां पर शंका होगी कि

है। यह हमारे देश का गौरव है कि ऐसे कठिन संक्रान्ति काल में भी इस प्रकार के महापुरुष उत्पन्न होते हैं और विचरण करते रहते हैं। धर्म साधना और उसकी लोकोत्तर शक्ति में विश्वास करने वाले मनुष्यों के जीवन में ऐसे महात्मा बड़ा प्रभाव डाल कर उनको प्रेरणा देते हैं और अपने सुदृढ़ विचार द्वारा उनके मन में जमे हुए कितने ही रूढ़ विचारों को समाप्त करने में बड़ा सहयोग देते हैं। यदि इस दृष्टिकोण से विचार करें तो इन महापुरुषों की जगतहित की सेवा कम नहीं है।

वेदवन्धु मेरी बात से पूर्णतया सहमत थे। इस प्रकार प्रतिदिन नाना प्रकार के विषयों पर वार्तालाप चलता रहा। हम लोग कभी तो धर्मशाला के विशाल प्रांगण में चक्कर लगाते और कभी किसी कमरे में बैठ जाते परन्तु बातचीत चालू रहती थी मैंने वेदवन्धु जी को अपने दशरथाचल के अनुभवों की बातें बताई। वे बड़े प्रसन्न हुये और उनको सुनकर उनका प्रेम मेरे प्रति और अधिक बढ़ गया।

वे कहने लगे, “मुझे भी कितने महान संत पुरुषों के दर्शन हुए हैं। जो पुरुष प्रमाणिकता से साधन करते हैं उनको इसी प्रकार के अनेकों अनुभव प्राप्त हो सकते हैं परन्तु अनुभवों को सर्वस्व मान लेने की आवश्यकता नहीं है।”

मैंने कहा, “ठीक है, अनुभवों से प्रेरणा एवं उत्साह लेकर मनुष्य को आगे बढ़ना है उसीको सब कुछ मानकर बैठ नहीं जाना है बैठ जाने से विकास रुक जायगा। आत्म साक्षात्कार अथवा ईश्वर दर्शन न हो तब तक उसको आगे प्रयास करते ही जाना चाहिये। ध्येय की प्राप्ति न हो तब तक झूठा सन्तोष या खुश होकर बैठ जाने की वृत्ति ठीक नहीं उस वृत्ति से साधक को सावधान रहना चाहिये।

तदुपरान्त उन्होंने अपने प्राप्त किये अनुभवों के विषय में कहना प्रारम्भ किया, “एकबार मुझे मोहम्मद साहेब का दर्शन हुआ। उनके

हाथ में तोता था उनकी मुखाकृति तेजोमय और सुन्दर थी। वे एक महापुरुष थे इसमें कोई सन्देह नहीं। जिनको प्रेम व विश्वास हो वे आज भी उनका दर्शन कर सकते हैं। इसके अतिरिक्त मुझे और अनेकों सन्त दर्शन दे चुके हैं—भागवत् जैसे शास्त्रों एवं पुराणों में भगवान् व्यास की बात आयी है मुझे उनके भी दर्शन का सौभाग्य प्राप्त हुआ है।

“व्यास का ?”—मैं सहसा बोल उठा।

“जी हाँ सुनिये”, वे कुछ विचार निमग्न हो गये, फिर कहने लगे, “एक समय जब मैं उत्तर काशी में था तो वहाँ गंगा तट पर एक छोटी कुटिया में रहता था। यह कुटिया लक्षेश्वर महादेव के एकान्त व सुन्दर स्थल पर बनी थी और उत्तर काशी से १३ मील दूर गंगोत्री मार्ग पर थी। वहाँ पर मैंने अपने आप यथासम्भव साधना की थी परन्तु मुझे शान्ति की प्राप्ति नहीं हुई थी। उससे मेरी बेचैनी बढ़ती जाती थी। उसे दूर करने का मेरे पास कोई उपाय न था। मैंने व्रत करने का विचार किया। नवरात्रि के दिनों में अन्न त्याग कर प्रभु की प्रार्थना करने का संकल्प मैंने किया। नवरात्रि आगई और मैंने भी अपना व्रत आरम्भ कर दिया। केवल गंगा जल पर रहकर दिन रात उस स्थल पर मैं प्रार्थना करने लगा - नवां दिन पूरा होगया फिर भी मुझे शान्ति न मिली, उसी दिन सायंकाल जब मैं कुटिया के बाहर बैठा था तब वहाँ पर एक सर्प आया वह बहुत जगमगाता था।

मेरे पास आकर उसने फन ऊपर उठाया और उसी प्रकार खड़ा रहा। मैंने भी पिछले दिन का लाया हुआ दूध उसके सामने रख दिया और उसे प्रभु का पार्षद मान कर उस पर दो चार फूल चढ़ाये। दूध पीकर वह जंगल की ओर चला गया परन्तु मुझे उसमें कोई विशेष अनुभव की प्रतीति न हुई और मेरी चिन्ता न गई। दसवें दिन मैं बड़ा ही आकुल था, ऐसा ज्ञात होता था कि अरे रे इतनी मेहनत और प्रार्थना के उपरान्त भी शान्ति न प्राप्त हुई अब मेरा क्या होगा ? अब मुझे

सकूँ तो भी बहुत है । मैं तो एक साधारण बालक हूँ । मेरी साधना भी अत्यन्त साधारण है । उनके जीवन चरित्र में पढ़े हुए ऐसे अनुभव को याद कर मुझे आनन्द हुआ । ईश्वर की कृपा बिना मेरे ऐसे साधारण साधक को इस प्रकार का अनुभव शायद ही प्राप्त हो सकता था ।

• • •

खेचरी का प्रयोग और फिर ऋषिकेश

टेहरी से ऋषिकेश का मोटर यातायात चालू होने में बड़ा समय लग गया अतः वेदबन्धु और उनके साथी महात्मा को उतने समय इच्छा अथवा अनिच्छा से टेहरी रहना अनिवार्य हो गया था। पैदल के रास्ते से ऋषिकेश जाना सम्भव था परन्तु उसके लिए कोई तैयारी न थी, अतः टेहरी रुके रहने के अन्यथा और कोई उपाय न था। उनके भोजन की व्यवस्था टेहरी के एक अमलदार द्वारा होती थी। वे टेहरी नरेश के सम्बन्धी भी थे। उनको देवी साधना में रुचि थी। वे बड़े प्रेम से सेवा करते थे। मेरे प्रति मन्दिर के पुजारियों का बड़ा प्रेम था अतः मुझे दोनों समय मन्दिर से भोजन मिलता था। मेरा विचार उत्तर काशी जाने का था। परन्तु पुजारियों को वह बिल्कुल पसन्द न आया। उनकी इच्छा थी कि मैं उनके पास ही रहूं। उन्होंने मुझे स्थायी रूप से मन्दिर में रहने का आग्रह किया। मन्दिर के ऊपर भाग का एक अच्छा कमरा देने का वचन भी दिया परन्तु मुझे ठीक मालूम न हुआ। उनके पवित्र प्रेम का आकर्षण बिचित्र सा था परन्तु उत्तर काशी के अज्ञात प्रदेश का आकर्षण उससे अधिक प्रबल था अतः उनके प्रस्ताव को मानना मेरे लिए कठिन था। मैंने उनको शान्ति देते हुये कहा—

“उत्तर काशी में थोड़े दिन रहकर फिर यदि हो सका तो इधर

अवश्य आऊँगा । मुझे इधर अच्छा लगने लगा है ।” परन्तु उनको मेरे इस आश्वासन पर विश्वास न हुआ । उनका कहना था कि एक बार निकल कर फिर उस स्थान पर जाना बहुत कम हुआ करता है और उनकी यह बात ठीक भी रही । टेहरी के उस मन्दिर को छोड़े आज कई वर्ष बीत गये हैं परन्तु वहाँ वापस आना न हो सका ।

मेरा विचार टेहरी से उत्तर काशी पैदल जाने का था परन्तु वेदबन्धु के प्रेम वा आग्रह के वशीभूत होकर मुझे वह विचार बदल देना पड़ा । उनकी इच्छा मुझे ऋषिकेश ले जाने की थी । उधर से मंसूरी होकर पैदल उत्तर काशी जाया जा सकता है अतः उनके प्रेम से प्रेरित होकर मैंने उनका प्रस्ताव उनके साथ ऋषिकेश जाने का स्वीकार कर लिया । उत्तर काशी निवास की उन्होंने मुझे सूचना दिया और कहा—

“उत्तर काशी में यदि हो सके तो रुक्मेश्वर महादेव के स्थान पर मेरी कुटिया में ही रहियेगा । वहाँ का वातावरण आपके अनुकूल होगा । उत्तरकाशी में चरणदास नामक एक भाई के पास उस कुटिया की चाभी रहती है, वे आपको उधर रहने की स्वीकृति दे देंगे ।”

मैंने उनकी सूचना को भविष्य में सहायक समझ कर ध्यान में रखा ।

नाथ सम्प्रदाय बहुत प्राचीन सम्प्रदाय है । अनेक दूसरे संप्रदायों की तरह वह भी भगवान शंकर के नाम के साथ संकलित है । शंकर उसके आदि गुरु या प्रणेता है । मत्स्येन्द्रनाथ, गोरखनाथ जैसे महापुरुषों से सुशोभित यह सम्प्रदाय अधिकांश योग साधना को महत्व देता है । योग उनका स्तम्भ और प्राण होता है । षट्क्रिया और खेचरी मुद्रा को वे विशेष महत्व देते हैं । अखण्ड यौवन, अखण्ड आरोग्य, मृत्युञ्जयता और लोकोत्तर सिद्धि शक्ति की प्राप्ति उनका मुख्य प्रेरक बल है । वे इस उपासना की आड़ में आत्मदर्शन की साधना को भूल जाते हैं और उसे गौण मानते हैं । उनका ध्येय शक्ति प्राप्त करने तक सीमित रह

जाता हैं। आजकल तो ऊँची श्रेणी के साधक इस सम्प्रदाय में बहुत कम मिलते हैं। कान में कुण्डल पहन कर जटाजूट धारण कर और दम लगाकर अलख अलख बोलने में अधिकांश साधू साधना की सिद्धि समझ कर बैठे रह जाते हैं।

मत्स्येन्द्रनाथ, गोरखनाथ, गोपीचन्द्र भट्टहरि और गैनीनाथ जैसे महानपुरुषों की स्मृति और उनको प्राप्त हुई सिद्धियों को दृष्टिकोण में रखकर उनसे प्रेरणा लेकर इस सम्प्रदाय के लोगों को जीवन उज्ज्वल करने का प्रयत्न करना चाहिए। चिलम, जटा, भस्म, चिमटा और त्रिशूल में ही सब कुछ मानने की वृत्ति को त्यागकर ऊँचे उठने का प्रयास करना चाहिये तभी उस पवित्र संप्रदाय के वंशजों को शोभा प्राप्त होगी।

मन्दिर में आने वाले नाथ संप्रदाय के एक युवक साधु साधना में रुचि रखते थे। उनको खेचरी क्रिया का अभ्यास करने की इच्छा थी मुझे भी खेचरी मुद्रा से बड़ा प्रेम था। वेदबन्धु खेचरी मुद्रा में निपुण थे। मैं जानता था कि खेचरी का ज्ञान मुझे नहीं है और यह मेरी कमजोरी है। उस समय मेरा स्वभाव ऐसा था कि किसी विलक्षण अनुभव वाले साधक को देखते ही मुझे ऐसी प्रतीति होती थी कि उस अनुभव की मुझमें कमी है, मैंने उसे नहीं किया, वेदबन्धु ने जब अपने पूर्व जन्म की बात कही थी उस समय भी मुझे अपनी स्वाभाविक विशेषता के कारण इसी प्रकार की प्रतीति हुई थी। खेचरी मुद्रा तो इच्छानुसार समाधि के लिए सहायक थी अतएव उसका प्रयोग करने की मुझे इच्छा थी, मैंने जब वेदबन्धु जी से इस सम्बन्ध में चर्चा की तो वे बोल उठे—

“आपको खेचरी से क्या काम ? अनुभव की इतनी अच्छी अवस्था पर पहुँचने के बाद भी खेचरी की आवश्यकता है ? वह तो साधारण मनुष्यों के लिए है आप तो मुक्त पुरुष हैं ; आपको खेचरी की कोई आवश्यकता नहीं।”

मैंने कहा, “आपके कहने से मान लेता हूँ फिर भी खेचरी का प्रयोग करने की मेरी इच्छा है। योग की साधना के महत्वपूर्ण प्रयोगों और अनुभवों को मुझे स्वतः प्राप्त करना है जिससे भविष्य में उस सम्बन्ध की कोई बात सुनकर मुझे ऐसा न प्रतीत हो कि इस प्रयोग या अनुभव से मैं वञ्चित रहा, खेचरी के प्रयोग करने में हानि ही क्या है।”

उन्होंने कहा, “हानि का कोई प्रश्न नहीं है, मुख्य बात यह है कि आपकी आजतक की साधना को देखते हुये, आपको उसकी कोई आवश्यकता नहीं है। जिसका मन सरलता से शान्त और एकाग्र हो सकता है उसको खेचरी से क्या प्रयोजन? खेचरी द्वारा प्राप्त होने वाली साधना की अनुभूति को तो आपने पार कर ही लिया अब यदि उसका भी अनुभव करके अपनी जिज्ञासा को शान्ति देना है तो मैं तैयार हूँ मैंने इनकार कब किया है?”

उनकी सम्मति प्राप्त हो जाने से मुझे सन्तोष हो गया। उनका प्रेम बड़ा विचित्र था, बाजार जाकर वे कैची व अन्य आवश्यक सामान ले आये। जीभ छोटी व बड़ी दो प्रकार की होती है। लम्बी जीभ को सर्प जिह्वा कहते हैं। बहुतों को सर्प जिह्वा जन्मजात प्राप्त होती है वे उसे बाहर निकाल कर नाक पर सरलता से लगा सकते हैं, उनको खेचरी करने में कोई विशेष कठिनाई नहीं होती। परन्तु छोटी जीभ वाले साधकों को कुछ समय लगता है, और कठिनाई होती है। उनकी जीभ को सबसे पहिले लम्बी करनी पड़ती है उसके लिए दर्पण और दोहन करना पड़ता है, फिर बाद में जीभ के नीचे की नाड़ी काटनी पड़ती है। मेरी जीभ पहिले से ही छोटी थी अतएव उसके लिए नाड़ी काटने की आवश्यकता थी। वेदबन्धु ने एक दिन प्रातःकाल कैची से मेरी नाड़ी काट डाली, और कटे स्थान पर सेंधा नमक, हड़ का चूर्ण और कत्था लगाकर मुझसे आराम करने को कहा। उसके बाद उनके कथनानुसार मैंने क्रम क्रम से दो बार जीभ

के नीचे की दूसरी नाड़ी भी कटवा डाली । इस विषय का उल्लेख आगे अधिक होगा ।

इस प्रकार सतसंग और साधना के भिन्न-भिन्न अनुभव में समय बड़े आनन्द से बीत गया । अन्त में मोटर मार्ग भी चालू हो गया । वेदबन्धु के अधिक आग्रह के कारण मैं उनके साथ ऋषिकेश चलने को तैयार हुआ, मन्दिर के पुजारी को निराशा हुई परन्तु उनको भविष्य का आश्वासन देकर मैं निकल पड़ा ।

टेहरी के वह अमलदार हम लोगों को पहुंचाने गये । उनके साथ हम लोग रास्ते के पुलिस स्टेशन के पास से निकले, वहां पर वही पुलिस इन्स्पेक्टर जिन्होंने एक बार मुझे पुस्तकालय में रोक कर परिचय पूछा था और मुझे पुलिस स्टेशन उपस्थित होने का आदेश दिया था बैठे थे । हम लोगों को देखकर खड़े हो गये क्योंकि अमलदार का पद ऊंचा था । मुझे अमलदार के साथ देखकर उनको आश्चर्य हुआ, बहुत दिनों के बाद हम लोग फिर मिले थे । कुर्सी पर बैठने के बाद अमलदार ने मेरा व अन्य लोगों का परिचय दिया । मैंने कहा,

“अधिक जानकारी के लिए तो आज मैं स्वयं आ गया हूं ।”
दरोगा जी बड़े लज्जित हो गये ।

ऋषिकेश से मोटर बस चल दी अतः सेवा भावी और दयालु अमलदार विदा हुये । रास्ते में मोटर नरेन्द्रनगर में खड़ी हुई । देव प्रयाग के इन्स्पेक्टर बाजार में मिले उन्होंने चम्पक भाई के बारे में मुझसे पूछा—
“वे भाई कहां हैं ?”

मैंने उत्तर दिया— “देव प्रयाग से जाने के बाद वे मुझसे नहीं मिले अतः मैं क्या बताऊं कि वे कहां हैं ?” वे चम्पक भाई को भूले न थे

मुझे देखते ही उन्होंने चम्पक भाई के सम्बन्ध में प्रश्न किया सम्भवतः वे उनकी खोज में थे ।

सायंकाल ऋषिकेश आ पहुँचे । तीन या चार महीने बाद फिर ऋषिकेश का दर्शन हुआ । हम लोगों को भगवान आश्रम में उतरना था । नैपाल के राजकुमार वहीं पर ठहरे थे और वे वेदबन्धु तथा उनके साथ वाले महात्मा की प्रतीक्षा कर रहे थे ।

• • •

एक अज्ञात पुरुष का दर्शन

ऋषिकेश छोड़े तीन मास व्यतीत हो गये थे । यद्यपि यह समय कोई बहुत अधिक नहीं हुआ, परन्तु इसके अन्तरगत जो अनुभव प्राप्त हुये वे बड़े महत्वपूर्ण थे । उस समय, ऋषिकेश छोड़ते समय, जो अशान्ति थी वह अब अदृश्य हो गई थी, मन अधिक प्रसन्न था, और आत्म-विश्वास बढ़ गया था । तीन महीने के थोड़े समय में ही साधना का रसास्वाद मुझे अच्छे प्रमाण में मिल गया था । उससे जीवन में धन्यता का अखण्ड अनुभव हुआ करता था । दशरथाचल के कल्पनातीत प्रदेश में आसन लगाकर एकान्त में बैठने से विचित्र अनुभव प्राप्त हुये, कृष्ण के प्रेम में स्नान करके कृष्ण कृपा का कठिन व्रत किया, और भागीरथी व भीलगंगा के संगम से सुशोभित टेहरी में सुखपूर्वक निवास किया । वे दिन सर्वदा स्मरण में आयेंगे । आज वापस ऋषिकेश पहुंच गया था । ऋषिकेश की भूमि को देखकर मुझे आनन्द हुआ । प्रारम्भ में माता जैसी मधुरता से पालने वाली, पोषण करने वाली और आश्रम तथा शक्ति देने वाली भूमि यही थी, उसका फिर से दर्शन कर मेरा हृदय तरंगित होता था । वास्तव में हिमालय का दर्शन कर मुझे बहुत आनन्द होता था, मुझे यह भाव उत्पन्न होता था कि मैं अब अपने प्रदेश में आ गया हूं । राजवैभव त्यागकर जीवन की अन्तिम अवस्था में राजा लोग इस प्रदेश में रहने के लिए प्रयाण करते थे, और अनेकों ऋषि मुनि

और तपस्वी इस प्रदेश को पावन करते रहते थे, आज भी इन तपस्वियों के परमाणु वहाँ के वायु मण्डल में जीवित हैं और किसी को भी पावन करने की वे क्षमता रखते हैं। यदि दैवयोग से आजकल भी कोई दृश्य अदृश्य रूप से तपस्वी से भेंट हो जाय तो हृदय पुलकित हो जाता है। ऐसे ही एक महापुरुष के दर्शन का उल्लेख करता हूँ।

[२]

भगवान् आश्रम एक बहुत सुन्दर स्थान है। वहाँ नैपाल के महाराज के कुमार ठहरते थे। मुझे उनके साथ परिचय व प्रेम बढ़ाने में अधिक समय न लगा। वेदवन्धु के कारण हम लोग एक दूसरे के निकट बिना संकोच और सरलता से आगये। राजकुमार ने अपने साथ रहने का आग्रह किया। मैंने स्वीकार कर लिया, परन्तु सोने का स्थान दूसरा रखा था। उस समय भगवान् आश्रम में बल्लभदास नामक एक व्यक्ति रहते थे। वे कच्छ के निवासी थे परन्तु अधिक समय से ऋषिकेश में निवृत्तिमय जीवन बिताते थे। उनका मुझपर अत्यन्त प्रेम था जब मैं देवकी बाई की धर्मशाला में था तब उनसे परिचय हुआ था। उनको हम लोग “काका” कह कर पुकारते थे। मुझे अकस्मात् भगवान् आश्रम में देखकर उनको बड़ा आनन्द हुआ। उनके आग्रह को मान कर रात को उनके कमरे में सोने का निश्चय किया।

उनका कमरा छोटा था परन्तु जाड़े के दिन थे, शीत अधिक पड़ता था। इसलिए बाहर खुले में सोना सम्भव न था। कमरा छोटा होने पर भी उसी में सोता था। बल्लभ भाई में बड़ा ममत्व था अतएव उन्होंने आवश्यक प्रबन्ध कर दिया। कमरे में अपने तखत के पास मेरी चरपाई लगवा दी।

भोजन करके मैं उनके पास पहुँच गया। बड़ी देर तक बातचीत करके हम लोग आराम करने लगे। इस बार ऋषिकेश निवास की यह प्रथम रात्रि थी। उन दिनों रात के पिछले पहर में गायत्री जप करने का अभ्यास था। प्रतिदिन एक हजार जप करने का मेरा नियम

था तदनुसार उस रात को उसी खाट पर बैठ कर जप आरम्भ कर दिया। जप की संख्या लगभग आधी हुई होगी, उसी समय मेरी दृष्टि सामने वाली दीवाल पर पड़ी तो मेरे आश्चर्य का ठिकाना न रहा। मैंने देखा कि मुझसे लगभग ३ हाथ की दूरी पर एक महापुरुष बैठे हैं। कमरे में सर्वत्र अंधकार था परन्तु वे महात्मा बिल्कुल स्पष्ट दिखाई पड़ते थे। मैंने विचार किया कि कमरे के सब दरवाजे और खिड़कियाँ तो बन्द हैं फिर ये महात्मा आये किधर से ? पहिले के अनुभवों के कारण यह विचार तुरन्त हट गया, मैं जानता था कि महापुरुषों या सिद्धों को बड़ी विचित्र शक्ति होती है, साधारण मनुष्य की तरह उनको मकान के अन्दर आने में प्रवेश द्वार या खिड़की की आवश्यकता नहीं होती। प्रकृति पर नियंत्रण होने के कारण वे इच्छानुसार जहाँ चाहे वहाँ पहुँच और प्रवेश कर सकते हैं। मण्डन मिश्र घर बन्द किये भीतर यज्ञ कर रहे थे। फिर भी शंकराचार्य ने अपनी योग शक्ति से सूक्ष्म रूप धारण कर प्रवेश किया और मण्डन मिश्र उनको देखकर आश्चर्य चकित हो गये। सिद्ध पुरुषों की शक्ति ऐसी विचित्र होती है। वे जो चाहें, कर सकते हैं। आजकल कितनों को ऐसी शक्ति पर विश्वास नहीं होता। कितने ऐसे हैं जो सिद्धि की बातों को मनगढ़ंत बताते हैं, कितनों को उनमें अतिशयोक्ति देख पड़ती है, कितने उन्हें रूपक में घटाकर उनको कपोलकल्पित बताते हैं परन्तु इन सब बातों से उसकी सत्यता का नाश नहीं होता। विचार और चित्तन मनन के क्षेत्र में कोई कितना बड़ा क्यों न हो वह जब तक साधना का आधार नहीं लेता और स्वानुभव के सागर में गोता नहीं लगाता तब तक उनकी बातों में कोई तथ्य नहीं है और अनर्गल टीका टिप्पणी करने का उसको कोई अधिकार नहीं है। यदि किसी विषय की उनको जानकारी नहीं तो महत्वपूर्ण आध्यात्मिक विषयों पर जीभ या कलम चलाने के बदले उनका मौन रहना बुद्धिमत्ता का कार्य माना जायगा। इस प्रकार उनकी विचारधारा के कारण साधारण जन-समाज में भ्रान्ति फैलना बन्द हो जायगी, और

आध्यात्मिकता पर कुठाराघात होने की अपेक्षा उसकी रक्षा होगी। इस विषय पर यहाँ इतना ही कहना पर्याप्त होगा, वैसे तो इस अभिप्राय को अनेकों बार मैंने प्रगट किया है।

[३]

उस महापुरुष के अकस्मात् दर्शन का आश्चर्य प्रगाढ़ आनन्द में परिणत हो गया। दर्शन वास्तव में दिव्य था। वे श्वेत वस्त्र धारण किये थे। शरीर पर कफनी और नीचे धोती थी। आंखें बन्द थीं। मुख तेजस्वी था और माथे व मुँह पर बाल बिल्कुल न थे। उनकी मुखाकृति से उनकी अवस्था अधिक ज्ञात होती थी फिर भी चेहरे पर वृद्धावस्था का कोई चिन्ह न था — अखण्ड यौवन प्रस्फुटित होता था। उनके हाथ में मोटे मनके की माला थी। मनके फिर रहे थे। उनका शब्द टक्-टक् धीरे-धीरे सुनाई देता था इस लिए यह आभासित होता था कि वे गायत्री मन्त्र से किसी छोटे मंत्र का जप करते हैं सम्पूर्ण दर्शन अत्यन्त सुखद और आश्चर्यजनक था। अधिक आश्चर्य तो यह था कि उनका शरीर पृथ्वी पर न था। निराधार अवकाश में वे पद्मासन लगाये बैठे थे। इस प्रकार का दर्शन मेरे लिए पहिला था। देव और सिद्ध लोग इच्छानुसार विचरण करते हैं, उनकी परछाईं नहीं पड़ती, और अधर में रुके रहते हैं इस प्रकार के लेख मिलते हैं, परन्तु मैं तो इसका प्रत्यक्ष अनुभव कर रहा था उस महापुरुष का शरीर प्रकाशमय और वर्ण गौर था।

जब-जब इस प्रकार का दर्शन होता है तो स्वतः अन्तस्थल में प्रेरणा प्राप्त हो जाती है कि किसका दर्शन हो रहा है परन्तु इनकी कोई प्रेरणा मुझे प्राप्त न हो सकी, मैं सोचता था कि ये महापुरुष कौन हैं ? क्या वे वशिष्ठ होंगे ? अथवा सप्तर्षि में से कोई एक होंगे ? हो सकता है कि वर्तमान समय के कोई महापुरुष हों। उनके चित्र को भी मैंने

कभी देखा न था अस्तु उनके पहिचानने में कठिनता आ गई परन्तु उससे क्या हुआ ? चीनी को यदि कोई परख न सके तो क्या उसकी मिठास कम हो जायगी ? क्या उसका स्वाद समाप्त हो जायगा ? उस महापुरुष के दर्शन का लाभ मुझे प्राप्त हुआ अतः मेरा मन अमृत पान का अनुभव कर रहा था मेरे लिए इतना पर्याप्त था । यह सौभाग्य कुछ कम न था ।

उस महापुरुष का दर्शन अचानक हुआ था अस्तु मुझे यह विचार आया कि कहीं वल्लभ दास भाई तो उठ कर इस प्रकार न बैठ गये हों, परन्तु कुछ ध्यानपूर्वक देखने से ज्ञात हो गया कि वे वहीं विराजमान हैं, जहाँ वे सोये थे, यह अधर में स्थित कोई महापुरुष ही है। यद्यपि पहिली शंका दूर हो गयी थी तथापि निश्चय होने के कारण कई बार “काका” “काका” कहकर मैंने उनको पुकारा । वे प्रगाढ़ निद्रा के वशीभूत थे, कैसे उत्तर देते ? थोड़ी देर के बाद उनको भी वह घटना दिखाने के निमित्त एक बार फिर “काका काका” पुकारा परन्तु वे न जगे । सामने के महापुरुष का स्वरूप कुछ धुंधला पड़ गया था । मैंने तीसरी बार फिर से काका को जगाने का प्रयास किया और “काका काका” पुकारा, महापुरुष का स्वरूप और अधिक धुंधला पड़ गया और जैसे ही मैं चारपाई पर खड़ा हुआ वैसे ही वह अदृश्य हो गये । काका भी तुरंत बोल उठे—“क्यों क्या बात है ? क्यों पुकारते हो ?”

मैंने काका के समीप जाकर कहा, “क्यों क्या करते हैं ?” परन्तु काका ने कोई उत्तर न दिया । मैंने देखा कि वे काला कम्बल ओढ़े मुंह ढके सो रहे थे ।

मैंने फिर कहा, “सोये हैं न ? अच्छा है सोते रहिये ।” इतना कह मैं अपनी चारपाई पर वापस आ गया और बाकी का जप समाप्त किया। प्रातःकाल स्नानादि से निवृत्त होकर वल्लभदास भाई को रात के अपने

अनुभव की कथा सुना कर कहा, “आपका कमरा अत्यन्त पवित्र ज्ञात होता है । ”

उन्होंने उत्तर दिया, “कमरा पवित्र है या आप पवित्र हैं ?” यदि कमरा पवित्र होता तो मुझे जो वर्षों से उसमें रहता हूँ कभी कुछ भी तो अनुभव होता । ”

मैंने कहा—“मेरी पवित्रता की गणना कुछ भी नहीं, सबसे पवित्र तो प्रभु है और यह उसकी कृपा है । ”

उन्होंने कहा, “ मुझे भी जगा दिया होता तो मैं भी उनके दर्शन कर लेता । मैंने स्पष्ट किया— “आपको जगाने का तीन बार प्रयास किया परन्तु आप सोते ही रहे । ”

महापुरुषों की यह विशेषता है कि वे जिसको चाहते हैं उसी को दर्शन भी देते हैं । एक कमरे में कई एक मनुष्य यदि एकत्रित हों तो वे इच्छित व्यक्ति को ही दर्शन देंगे और उसी से बात भी करेंगे । अन्य लोगों को कोई आभास भी न होगा, अस्तु यदि काका जग भी जाते तो क्या होता ? कुछ नहीं, उनको दर्शन न प्राप्त होते ।

खेचरी और आत्म ज्योति का अनुभव

उत्तर काशी आने के बाद मैंने खेचरी मुद्रा की सफलता के लिए दो बार जीभ के नीचे की नाड़ी काट दी। मेरी जीभ पहले से ही छोटी होने के कारण, मुझे ज्ञात होता था कि खेचरी मुद्रा सीखने के लिए मुझे कुछ अधिक काल तक जीभ दोहन क्रिया करनी पड़ेगी। इससे कुछ चिंता हुई, परन्तु हाथ में लिए कार्य को यथासम्भव शीघ्र समाप्त करने का स्वभाव मेरा पहिले से ही था, चिंता से केवल चिंतित रहने से तो कार्य पूरा नहीं होता, समय अधिक लगे या कम, कार्य को तो पूरा करना ही था, उसकी समाप्ति के बिना मुझे चैन कहां? अस्तु यथा-सम्भव मेरा प्रयास चालू रहा। खेचरी से मन स्थिर होता है और प्राण वायु रुक जाती है समाधि का आनन्द सरलता से प्राप्त हो जाता है। मेरा मन स्थिर और शान्त था, सबसे महत्व की बात तो यह थी कि वर्षों पहिले से मैंने जड़ और चेतन में परमात्मा के दर्शन करने की आदत डाल रखी थी, मुझे आत्मानुभव का स्वाभाविक आनन्द मिला करता था। इस सब बातों को विचार कर देखने से यह पूर्णतया स्पष्ट था कि मुझे खेचरी मुद्रा के अभ्यास की कोई आवश्यकता ही न थी। इस सम्बन्ध में वेदबन्धु का कथन सत्य था, फिर भी खेचरी के नवीन

अनुभव प्राप्त करने के लिए मेरा मन व्यग्र था। उसके पीछे मुख्य रूप से मेरी कुतूहल वृत्ति ही काम कर रही थी, अतः उसको संतोष देने के लिए मुझे खेचरी का अभ्यास करने की आवश्यकता थी।

उत्तर काशी में निवास करने के थोड़े दिनों उपरान्त मेरा सम्पर्क एक नाथ सम्प्रदाय वाले महात्मा से हो गया, वे नहान स्टेट में रहते थे, और योगाभ्यास के ज्ञाता थे। उनसे मेरा योग विषय पर सविस्तार विचार विनिमय हुआ। मेरा योग के प्रति अत्यधिक प्रेम देखकर उन्होंने मुझे नहान में स्थित अपने आश्रम में भेंट करने और कुछ समय साथ में रहने को आमंत्रित किया। उनके निमंत्रण को स्वीकार कर लेने पर वे बड़े प्रसन्न हुये। वे खेचरी मुद्रा में पूर्ण अभ्यस्त थे। उन्होंने मुझे बताया कि बच नाम से एक बूटी विख्यात है, उसके रस को जीभ पर लगाकर दोहन किया करने से जीभ खेचरी के उपयुक्त बन जाती है। उनके कथनानुसार दो चार दिन के बाद, उत्तर काशी के ज्ञानसू नामक स्थान पर मैंने खोज कर वह बूटी ढूँढ़ निकाली। कई दिनों तक बड़े उत्साह से उसका प्रयोग करता रहा परन्तु, क्या इस प्रकार से जीभ बढ़ जायगी? ऐसी शंका बनी रही। योग ग्रन्थों में जीभ बढ़ी करने के निमित्त मक्खन का प्रयोग लिखा है, उत्तर काशी में वह प्रयोग करना कठिन था मक्खन अप्राप्य था, अतः मुझे झुंझलाहट होने लगी। उन दिनों रात्रि में सोना बन्द कर दिया था। समाधि का लाभ मिलता था साधना की दृष्टि से शान्ति थी परन्तु खेचरी मुद्रा के अनुभव करने की इच्छा थी, उसकी प्रतिक्रिया को भी शीघ्र ही शान्त करने की आवश्यकता थी।

ईश्वर की कृपा से वह इच्छा भी पूरी हो गई। ईश्वर ने उसकी शान्ति के लिए एक नया मार्ग निश्चित किया, जिसकी मुझे कल्पना भी न थी सम्भवतः अन्य कोई भी उसे न सोच पायेगा जीभ छोटी ही रहे फिर भी खेचरी का आनन्द प्राप्त हो। क्या कोई भी इस बात की

कल्पना कर सकता है ? योग के ग्रन्थों में भी इसका उल्लेख नहीं है । उल्लेख न भी हो, तो भी, उस बात को असत्य नहीं कहा जा सकता है । विभिन्न योग शास्त्रों में प्रेमयोग शास्त्र सबसे बड़ा है । उसका आश्रय लेने वाले की इच्छा को भगवान् अपनी विशेष अनुकम्पा से पूर्ण करता है, ईश्वर की शक्ति अपार है वह क्या नहीं कर सकता ? जो गूंगे को वाणी दे सकता हो, मृतक की जीवित करने की जिसमें क्षमता हो, उसके लिए छोटी जीभ होने पर भी खेचरी का अनुभव करा देना कठिन कार्य नहीं है । वह परम कृपालु है सब पर कृपा करने को प्रतिपल तत्पर है कोई सरल, निष्कपट और भावमय हृदय से उसकी प्रार्थना करने वाला भी तो हो । यदि कोई ईश्वर की प्रार्थना करे और उसके सामने अपनी इच्छा प्रगट करे तो उसकी इच्छा की पूर्ति अवश्य होगी, परन्तु कौन सी इच्छा, कितने प्रमाण में, और कब पूरी करना यह बात उसी के विचाराधीन है । मनुष्य को उसके विधान में सर्वदा संतुष्ट और प्रसन्न रहना चाहिये ।

मैंने साधना की विभिन्न क्रियाओं के साथ-साथ ईश्वर की प्रार्थना भी जारी रखी थी, उसकी मात्रा अन्त में बढ़ गई उस समय ईश्वर ने मेरे पर विशेष कृपा की और मुझे काम चलाऊ शान्ति दी ।

एक दिन, रात के प्रथम पहर में मैं अपने नित्य नियम के अनुसार बैठा प्रार्थना करता था उस समय मेरी जीभ अचानक लम्बी होकर तलुवे से लग गई और मुझे एक प्रकार के दिव्य रस का स्वाद मिलने लगा, थोड़े समय तक इस दशा में रहने के उपरान्त देह भान समाप्त हो गया । अधिक समय तक इस दशा में रह कर मैं बाद में सचेत हुआ । उस समय भी जीभ तालू में लगी थी और रस का स्वाद मिल रहा था । थोड़ी देर के बाद ब्रह्म मुहूर्त का समय हो गया और जीभ फिर पूर्ववत् सहज दशा में आ गई । इस प्रकार के अनुभव से मुझे अपार आनन्द हुआ । खेचरी मुद्रा का कुतूहल पूर्णरूपेण शान्त हो गया ।

ईश्वर की कृपा से ही अनायास यह अनुभव प्राप्त हो सका, और विशेष ध्यान देने योग्य यह बात है कि बराबर तीन दिन तक उसी प्रकार अनुभव होता रहा। तदुपरान्त खेचरी मुद्रा में रुचि रखते हुये भी, मैंने उसका विधि पूर्वक अभ्यास नहीं किया। मेरा मन उसके निमित्त आकुल भी न रहा।

[२]

उन्ही दिनों में एक दूसरे विशेष अनुभव का प्रसंग उपस्थित होगया। एक दिन रात्रि में कमरे के अन्दर मेरे ऊपर के थोड़े भाग में मुझे एक ज्योति अथवा प्रकाश का दर्शन हुआ। जाग्रत अवस्था की घटना है और अत्यधिक विशेषता यूँ है कि प्रायः दो घण्टे तक वह प्रकाश स्थिर रहा था। इस प्रकार तीन दिन लगातार यही अनुभव चलता रहा। मेरे कमरे के किवाड़ और खिड़की बन्द थे, बाहर से प्रकाश के प्रवेश की कोई सम्भावना न थी। अंधेरी रात्रि होने के कारण बाहर भी सर्वत्र अंधेरा था उसमें वह ज्योति प्रकाश पुञ्ज बन प्रबल चमक रही थी। वह मेरे मस्तिष्क से लगभग दो हाथ ऊपर स्थिर होकर निरन्तर चमकती थी और उसमें लेश मात्र की गति विधि न थी। मैं विचार करता रहा कि यह ज्योति किसकी हो सकती है।

ध्यान की दशा में ज्योति का दर्शन होता है यह बात मैंने पढ़ी थी। परन्तु यह तो सचेत अवस्था थी, जागृति का दर्शन था। मुझे स्फुरित हुआ कि यह आत्मा का दर्शन अथवा आत्म-साक्षात्कार है। ईश्वर की कृपा से मुझे आत्मा का साक्षात् दर्शन प्राप्त हो रहा है ऐसी प्रतीति स्वतः मन में आ गई।

आत्मा को निराकार मानते हुये भी उपनिषद् के ऋषि मुनियों ने ध्यान अथवा समाधि में उसका दर्शन किया है और तदनुसार उसका वर्णन भी पाया जाता है। इस सम्बन्ध में एक ऋषि का उपनिषद में इस प्रकार लेख है।

“अंगुष्ठ मात्रः पुरुषोः मध्यमात्मनि तिष्ठति ।

ईशानो भूत भव्यस्य, ततो न विजुगुप्सते ॥

अर्थात् अंगुष्ठ प्रमाण की आत्मा शरीर के हृदय प्रदेश में निवास करती है । उसको जान लेने वाले शोक और मोह से मुक्ति प्राप्त करते हैं ।

एक अन्य स्थान का लेख है “ज्योतिरिवा धूमकः” अर्थात् आत्मा ज्योति स्वरूप है परन्तु उस ज्योति में धुवां नहीं है ।

ये दोनों कथन मुझे स्मरण थे । वह ज्योति जो दिखाई पड़ती थी छोटे दीपक की ज्योति के समान अंगुष्ठ प्रमाण में ही थी अतः यह ठीक समझ में आ गया कि वह ज्योति साधारण ज्योति नहीं केवल आत्मा की ही ज्योति है ।

यह शंका हो सकती है कि “आत्मा का दर्शन जागृति में और अपने से बाहर कैसे हो सकता है ? इसके उत्तर में समाधान करते हुये दृढ़ता पूर्वक कह सकते हैं—“हाँ हो सकता है ।”

आत्मा अत्यन्त सूक्ष्म है और स्थूल दृष्टि से उसका देखना लगभग असम्भव है, ऐसा कहा गया है । वह सबके शरीर में वास करता है और समाधि दशा में अत्यन्त सूक्ष्म मनोवृत्तियों से योगी उसका दर्शन करता है, यह कथन भी शास्त्र प्रमाणित है । परन्तु इसका अर्थ यह नहीं कि खुली आंख से बाहर उसका दर्शन नहीं हो सकता । आत्मा सबके शरीर में रहता है यह सत्य है परन्तु शरीर के बाहर वह नहीं है ऐसा कौन कहेगा ? वह तो चराचर में सब जगह निवास करता है सब जगह प्राप्त है, सर्व व्यापक है, तो फिर क्या कारण है कि बाहर वह दिखाई न दे ? जो योगी उसको अपने अन्दर देखता है वह यदि चाहे तो बाहर सब जगह उसे देख सकता है । गीता में इसी आशय का प्रतिपाद है । उपनिषद् काल के ऋषियों के कथनानुसार आत्मा का दर्शन अपने अन्दर और बाहर हो सकता है । जो अपने अन्दर दिखाई देता है

वही साधक की इच्छा व ईश्वर की कृपा से बाहर भी देखा जा सकता है। आत्मा का साक्षात्कार साधक को दोनों प्रकार से हो सकता है। “साक्षात्कार” शब्द की ध्वनि, ध्यान या समाधि के अनुभव के साथ जागृति दशा के अनुभव दशा को भी सूचित करती है। यह बात सरलता से समझी जा सकती है।

ईश्वर की कृपा बिना इस प्रकार का अनुभव मुझे शायद ही हो सकता था।

• • •

दो आश्चर्यजनक अनुभव

पिछले प्रकरण में मैंने ज्योति दर्शन का वर्णन किया है उससे यह न समझना चाहिए कि इसी प्रकार का दर्शन सबको होता है अथवा होना चाहिये। आत्मा का दर्शन अनेक प्रकार से होता है। किसको किस प्रकार का दर्शन होगा, कहा नहीं जा सकता। विभिन्न प्रकार के दर्शनों में अमुक ही अच्छा है अन्य सब गौण हैं, इस प्रकार का दुराग्रह नहीं करना चाहिये। मैंने इसी विचार से, एक प्रकार के दर्शन का उल्लेख किया है जिससे पाठक यह समझ लें, कि ऐसा भी अनुभव सम्भव है।

वेदबन्धु की सूचनानुसार मुझे लक्षेश्वर महादेव की बात याद थी। उस स्थान पर उनके प्राप्त हुये अनुभव का रेखा चित्र मेरे मन में रमता रहता था। उत्तर काशी में कुछ दिन विश्राम के बाद एक दिन प्रातःकाल के उपरांत मैं लक्षेश्वर महादेव के स्थान पर गया। मेरे साथ गुजराती स्वामी चिद्धनानन्द भी थे। स्थान नितान्त नीरव और एकान्त था। गंगा निकट थी और इधर उधर दो तीन महात्मा लोग भी रहते थे जो भिक्षा के लिए प्रतिदिन क्षेत्र जाते थे।

स्थान बहुत उत्तम था। मुझे बड़ा पसन्द आया, परन्तु एक कठिनाई थी; यही कि वहां से उत्तर काशी का अन्न क्षेत्र बड़ा दूर था और

प्रतिदिन भिक्षा के लिए इतनी दूर जाना कठिन लगता था, समय भी व्यर्थ जायगा विशेष कर जब वृष्टि पड़ती होगी तब तो जाना असम्भव सा हो जायगा । अतः उधर के निवास का विचार कुछ गौण हुआ फिर भी वेदबन्धु की बताई कुटिया देखने का विचार किया । कुटिया वास्तव में कैसी होगी ?

बिना देखे उस स्थान पर न रहने का निर्णय कर लेना उचित न था अस्तु हम लोग गंगा तट पर उस कुटिया को देखने गये । कुटिया बन्द थी, एक खिड़की खुली थी, जिससे उसके अन्दर का भाग दिख पड़ता था । कुटिया की फर्श टूटी और बहुत खुरदरी थी । इस कारण से कोई बड़ी अमुविधा न जान पड़ी, फर्श को गोबर से लीन कर व मिट्टी डाल कर नया जन्म दिया जा सकता था परन्तु मुझे शंका हुई कि उससे अन्दर पर्याप्त प्रकाश न पहुंचता होगा । कुटिया नीचे थी चारों ओर झाड़ी-झंखार भरा पड़ा था । प्रकाश के लिए किवाड़ और छोटी खिड़की के अतिरिक्त और कोई साधन था । मुझे प्रकाश और स्वच्छता पसन्द है, बन्द गुफा जैसा मकान बिल्कुल ही नहीं भाता, अस्तु मेरा मन उस कुटिया में निवास के प्रतिकूल हो गया । स्वामी चिद्धनानन्द भी निरीक्षण के उपरांत कहने लगे—

“यहाँ तो बिलकुल जंगल है, स्थान भी बहुत अच्छा नहीं है आप को यहाँ रहना पसन्द न होगा । एक बात और कह दूँ, यहाँ पड़ोस में जो दो तीन साधू रहते हैं उनका व्यवहार ठीक नहीं, वे अनेकों असंगत कार्य करते हैं और समाज में बदनाम हो गये हैं ।”

मैंने कहा—“उनकी बात कुछ भी हो इसकी चिन्ता नहीं है वे हमारा क्या करेंगे ? हमको उनके साथ कौन सा नाता जोड़ना है ? हम लोग उनसे दूर रह कर साधना कर सकेंगे । उन्होंने उत्तर दिया, “आपको इन साधुओं के स्वभाव नहीं ज्ञात हैं । वे स्वयं, न कुछ करते हैं न दूसरों को करने देते हैं । आपको अशान्त करके इधर से भगाने की युक्तियाँ

बनाते रहेंगे। मेरी बात समझे कि नहीं? वे लोग आपको तंग करते रहेंगे।”

मैंने कहा, “समय आने पर देखा जायगा उसकी भी दवा हो जायगी। परन्तु कुठिया मुझे पसन्द नहीं इसमें प्रकाश का अभाव है। अंदर से अंधेरी लगती है।”

चिद्धनानन्द प्रसन्न हो गये, मैं उनसे दूर रहूँ यह उन्हें पसन्द न था।

अंत में हमलोग वापस चल दिये। उत्तर काशी में आनन्द स्वामी नाम के एक महात्मा थे। वे स्वामी रामतीर्थ के शिष्य थे। स्वामी रामतीर्थ के साथ वे बहुत काल तक रहे थे। स्वामी राम तीर्थ के जीवन का सस्मरण बड़े आनन्द पूर्वक बताते थे। उनका विचार थोड़े समय के लिए कहीं बाहर जाने को था अतः उन्होंने मुझे अपनी छोटी सी कुठिया में रहने को आमन्त्रित किया। मैंने उसे सप्रेम स्वीकार कर लिया। कैलाश आश्रम के पास, जिस सकान में मैं पहिले रहता था उसके पिछले भाग में उनकी कुठिया थी।

लक्षेश्वर महादेव के स्थान का निरीक्षण कर मैं इसी कुठिया में वापस आया। सायंकाल हो गया था अभी लक्षेश्वर की कुटी आँखों के सामने घूम रही थी। “कुठिया अंधेरी है।” यही विचार मन में आया करता था। दूसरे दिन भी यही विचार आता जाता रहा। मुझे ईश्वर की कृपा से सुन्दर व अनुकूल कुटी मिल गई थी अस्तु इसके निमित्त कोई चिन्ता न थी फिर भी लक्षेश्वर की कुठिया का विचार सहज में आता ही था।

उस दिन रात में आश्चर्य में डालने वाला एक अनुभव हुआ। उसकी याद भुला दी जाय, यह सम्भव नहीं है। रात्रि में जब तख्त पर बैठ कर मैं ध्यान कर रहा था उस समय एक सिद्ध पुरुष मेरे पास

आये, यूँ कहिये कि वे एकायक प्रगट हो गये। अकस्मात् वे मुझे पकड़ कर ऊपर उठे। मेरा शरीर उनके स्पर्श से फूल के समान हल्का हो गया और मैं भी उनके साथ उड़ने लगा। इस प्रकार का अनुभव पहिली बार यहीं हुआ, जब तक मैं आँख खोलूँ और निश्चय करूँ कि बात क्या है तब तक वे मुझे लेकर लक्षेश्वर वाली कुटिया में पहुँच गये। मुझे कुटिया के नीचे उतार कर वे महापुरुष कहने लगे—“कहाँ है अंधेरा ? आप कहते हैं कुटिया में प्रकाश नहीं है ! यहाँ तो प्रकाश ही प्रकाश है। यदि आप यहाँ न रहना चाहे तो बात दूसरी है अन्यथा अंधेरी कुटिया है यह दोषारोपण न करियेगा।” उनकी बात मुझे सच मालूम हुई। कुटिया की खिड़की खुली थी किवाड़ भी आप खुल गया था जहाँ देखो वहाँ सब जगह प्रकाश फैला था। प्रकाश भी अलौकिक था वे महापुरुष मेरे पास खड़े मुसकराते रहे। उनके शब्द के साथ सम्मत होकर मैंने स्वीकार किया। “हाँ अंधेरा नहीं है, प्रकाश है।”

महापुरुष ने मेरे शरीर को फिर से स्पर्श किया और मैं हल्का होकर उनके साथ ऊपर उड़ चला और क्षण में अपनी कुटिया में आ पहुँचा। महात्मा अदृश्य हो गये, मेरी आँख खुली तो कुटिया की खिड़की से बाहर चाँदनी में स्नान करती हुई पर्वत माला दिखाई पड़ी। मन्द पवन उसका दर्शन पाकर इधर-उधर प्रमत्त हो रहा था। रात्रि की नीरवता में गंगा का कलरव सुनाई पड़ता था।

महापुरुष का यह अनुभव ऐसा अचानक हुआ कि यह निर्णय करना, कि वह अनुभव ध्यानावस्था का था अथवा जागृति का, मेरी सामर्थ्य के बाहर है। यदि कह दिया जाय कि अर्ध जागृति अवस्था का था तो कोई अनुचित न होगा। दशा जो भी हो, कोई बात नहीं परन्तु इसका प्रदत्त आनन्द तो प्रत्येक दशा में रहता ही है।

वे महापुरुष कौन होंगे ? कोई प्राचीन संत अथवा अर्वाचीन सिद्ध ? हो सकता है वे लक्षेश्वर निवासी कोई महात्मा हों या फिर उत्तर काशी में सूक्ष्मावस्था में रहने वाले कोई समर्थ पुरुष । मैं उन्हें पहिचान न सका सारी विवेचना के उपरान्त यही निश्चय किया कि वे एक महा समर्थ सिद्ध पुरुष होंगे । उनकी अलौकिकता निश्चित है अन्यथा ऐसे अनुभव कैसे दे सकते थे ।

आकाश गमन की सिद्धि के विषय में मैंने पढ़ा था कि सिद्ध पुरुष जहाँ चाहे वहाँ जा सकते हैं । इस अनुभव के कारण उन विचारों की पुष्टि हो गई । साधना में इस प्रकार के अनुभव हों तब शान्ति मिलती है और विज्ञान की प्राप्ति होती है । साधना करने वाले को ही ऐसे अनुभव समझ में आ सकेंगे । केवल बौद्धिक ज्ञान से इनका सच्चा रहस्य समझ में नहीं आ सकता है । यह सत्य है कि और विरक्त पुरुषों में भी, साधनामय जीवन की अवहेलना की जा रही है साधना का रहस्य समझने के लिए तर्क काम न देगा अनुभव की आवश्यकता होगी । ऐसे महापुरुष हमारे देश में कितने होंगे, कौन कह सकता है ? अज्ञानावस्था में रहने वाले साधकों के जीवन ऐसे-ऐसे अनुभव देकर कितनी महत्वपूर्ण सेवा इन महापुरुषों द्वारा होती है ?

[२]

उत्तर काशी के निवास काल में मुझे एक दूसरा महत्वपूर्ण अनुभव हुआ । प्रातः, मध्याह्न और सायं; गंगा तट की ओर से एक प्रकार की ध्वनि सुनाई देती थी मानो गंगा जी की पूजा व आरती होती हो । उसके साथ विभिन्न प्रकार के बाजे भी बजते सुनाई देते थे । प्रायः यह अनुभव प्रति दिन हुआ करता था । मेरे मन में यह विचार आया कि संभवतः देव या ऋषि अथवा सिद्ध पुरुष गंगा जी की आरती करते होंगे । स्वर भी स्पष्ट सुनाई देता था । मैंने कई महात्माओं से इस विषय

में पूछा परन्तु उत्तर काशी में वर्षों व्यतीत करने वाले पुरुषों अथवा महात्माओं को भी कभी वह ध्वनि न सुनाई पड़ी। वे सब उससे अनभिज्ञ थे, केवल चिद्धनानन्द जी ने समर्थन किया कि उन्होंने भी दो तीन बार उस प्रकार की ध्वनि सुनी है। मेरा यह अनुभव भी अलौकिक था उसका स्मरण आज भी वैसा ही आता है।

• • •

रमण महर्षि और संत ज्ञानेश्वर का दर्शन

श्री रमण महर्षि से कौन अपरिचित होगा ? सामान्य पुरुषों ने कदाचित् उनका नाम न सुना होगा । परन्तु जिसको भारत के इतिहास और आध्यात्मिकता में आनन्द आता होगा उसे रमण महर्षि का नाम व काम अवश्य ज्ञात होगा । भारत के आध्यात्मिक आकाश में महर्षि दयानन्द के समय से ज्योतिधरों का जो सतत् उदय होता रहा है उसमें श्री महर्षि रमण महत्वपूर्ण स्थान रखते हैं । उन्होंने अपने जीवन द्वारा भारत का आध्यात्मिक गौरव बढ़ाया है । भारत में और भारत के बाहर प्रकाश फैलाकर अनेक मनुष्यों को मार्ग प्रदर्शन कराकर शान्ति दी है । मद्रास प्रान्त के एक छोटे से गांव में जन्म लेकर लगभग १८ वर्ष की अवस्था में उन्होंने घर छोड़ दिया और परम पिता की खोज प्रारम्भ कर दी, दक्षिण के सुविख्यात पर्वत अरुणाचल ने उनकी अन्त-स्थल को आकर्षित किया । उस पर्वत पर वर्षों वास कर उन्होंने तपस्या की, और अन्त में शान्ति प्राप्त करली । वे साधक से सिद्ध बन गये और जीवन्मुक्त हुए । तदुपरान्त स्वयं प्राप्त किये प्रकाश द्वारा, अन्य के अज्ञान अंधकार को निवारण करने का कार्य प्रारम्भ किया । फिर तो उनकी ख्याति देश विदेशों में हो गई । भारत भूमि उनके कारण वास्तव में सुशोभित हुई ।

उत्तर काशी में एक दिन रमण महर्षि ने मुझे अचानक दर्शन दिये, लगभग मध्य रात्रि व्यतीत हो गई होगी। मैं प्रतिदिन के समान ध्यान में बैठा था। इतने में मेरा शरीर भान समाप्त हो गया उसी क्षण रमण महर्षि मेरे सामने प्रगट हुए। उनके दर्शन का सौभाग्य इसके पूर्व मुझे कभी न हुआ था, उनके चित्र अवश्य देखे थे। जब मैं बड़ीदा में था तब वहाँ उनके विषय में सुना था अतः बहुत कुछ जानकारी थी। मुझे उनको पहिचानने में विलम्ब न हुआ। अनुभव की उस अवस्था में मैंने देखा कि मैं उनके साथ बम्बई की चौपाटी में समुद्र के किनारे खड़ा हूँ। संभवतः वे अपनी दिव्य शक्ति द्वारा किसी प्रयोजन से मुझे वैसे अनुभव कराते हों।

मैं उनके साथ-साथ चलने लगा, हम दोनों के शरीर पानी के थोड़े ऊपर उठे हुये तेजी से आगे बढ़ते आभासित होते थे। यह अनुभव थोड़े समय रहा बाद में तुरन्त ही हम लोग उनके आश्रम में पहुँच गये वे मुझे आश्रम के मुख्य खण्ड अथवा हाल में ले गये, वहाँ वे मेरा हाथ पकड़ कर एक कोच पर मेरे साथ बैठने लगे। उनके बराबर एक आसन पर बैठने को मेरी इच्छा न होती थी। उनके ऐसे वृद्ध महापुरुष के साथ एक आसन पर बैठने में मुझे संकोच होता था परन्तु उन्होंने मेरे संकोच पर ध्यान न दिया। अपने पास बैठा कर कहने लगे—“अभी आपको खबर नहीं कि आप कितने महान् पुरुष हैं, मैं आपको जानता हूँ मेरे साथ बैठने में आपको किसी प्रकार का संकोच करने की आवश्यकता नहीं आपको संसार में महत्वपूर्ण कार्य करना है।” तदुपरान्त हम लोगों ने अन्य वार्तालाप किया जिसका उल्लेख यहाँ आवश्यक नहीं है। यह सारा अनुभव प्रायः आधा घन्टा चला उसके बाद मेरी ध्यानावस्था पूर्ण हो गई और मुझे भान आगया कि मैं वहीं उत्तर काशी की गंगा तट वाली केविन जैसी छोटी कुटिया में बैठा हूँ।

अन्त में नानाप्रकार के आनन्ददायक अनुभवों में यह अनुभव वास्तव में निराला था इसकी एक विशेषता यह थी कि अनुभव एक

महापुरुष की कृपा द्वारा प्राप्त हुआ था जो उस समय जीवित थे और अपनी महत्ता के लिए प्रख्यात थे। एक जीवित महापुरुष की कृपा का ऐसा प्रसंग मेरे जीवन में पहिला ही था, जिसके द्वारा एक स्थूल शरीरधारी महात्मा के सम्पर्क का लाभ सुदूर स्थान पर प्राप्त हुआ अतः उसे यदि क्रान्तिकारी एवं अमूल्य कहें तो अनुचित न होगा। भविष्य में उस महापुरुष ने मेरे साथ दूर रहकर भी गाढ़ा संबन्ध स्थापित किया और अनेक अनुभव देकर मुझे कृतार्थ किया, परन्तु भूमिका रूप से दिया हुआ उनका यह प्रथम अनुभव मेरे साधनात्मक जीवन में महत्वपूर्ण स्थान रखता है।

महर्षि रमण अरुणाचल की तलहटी के अपने आश्रम को त्याग कर कहीं बाहर नहीं गये। वर्षों तक शान्तिपूर्वक वे अपने आश्रम में ही रहे। उन्होंने मद्रास तक भी यात्रा नहीं किया था, बाहर से देखने में वे नितान्त निष्क्रिय और आत्माराम लगते थे। आश्रम में उनके दर्शन करने का सौभाग्य जिनको प्राप्त हुआ है उन सब की विचारधारा इसी प्रकार है, परन्तु वह तो उनका बाह्य स्वरूप था, उनके अन्तस्थल के स्वरूप की किसको खबर है? बाहर से उदासीन व निष्क्रिय रहने पर भी वे अत्यन्त उपयोगी कार्य करते थे परन्तु उसको कौन जान सकता था? उनकी शक्ति अद्भुत थी। समाधि पर उनका पूरा-पूरा नियंत्रण था जिसके कारण से उनको सिद्धि एवं असाधारण शक्ति प्राप्त हुई थी। वे आश्रम में रहकर बाहर सुदूर देशों में रहने वाले अपने भक्तों और साधकों को स्थूल या सूक्ष्म शरीर द्वारा संकल्प स्पर्श और वाणी से सहायता करते रहते थे। किसे उनकी इस प्रकार की अदृश्य सेवा अवगत हो सकती थी। बाहर के कर्मों व प्रवृत्ति को ही सर्वश्रेय मानने वाले पुरुषों को उनका यह आभ्यन्तर का सत्कर्म समझ में न आ सकेगा। कितने ही साधकों को उन्होंने इस प्रकार शान्ति दी है। अनेकों पथभ्रष्ट पुरुषों को मार्ग प्रदर्शन कर उनका जीवन उज्ज्वल कर दिया है। इस

बात की गणना कौन कर सकता है ? उनके ऐसे शक्तिशाली सन्त बाहर से उदासीन रहते हुये भी इस तरह के अनेकों उपकारी कार्य करते रहते हैं, इसमें कोई संशय नहीं ।

वर्षों की साधना के उपरान्त मेरी समझ में आया कि इस तरह के अनुभव दो प्रकार के होते हैं । ईश्वर स्वयं साधकों को उत्साह और सहायता देने के निमित्त अपनी इच्छा से इस प्रकार के अनुभव देता है । इसका मुख्य कारण उसकी कृपा है महापुरुषों की शक्ति नहीं । महापुरुषों को उसकी खबर भी नहीं होती । दूसरे प्रकार के अनुभव महापुरुष अपनी इच्छा व शक्ति से देते हैं अतः उनको तो उनके प्रदत्त अनुभवों का पूर्ण ज्ञान रहता ही है । कई बार तो वे महापुरुष समय व दिन की सूचना साधक को पहिले से ही अवगत कर देते हैं फिर बाद में उसी दिन उसी समय उनको अनुभव देते हैं । इस सूक्ष्म बात को सब नहीं जान सकते अतः वे ईश्वर की कृपा से प्राप्त अनुभव को महापुरुष की शक्ति द्वारा दिया गया मान लेते हैं और भ्रम में पड़ जाते हैं । कितने साधु पुरुष, इस प्रकार के अनुभव, अपने साधकों द्वारा सुनकर अपनी शक्ति की अवहेलना के डर से ईश्वर प्रदत्त चमत्कारिक अनुभवों को अपना चमत्कार बताने में कोई संकोच नहीं करते । उनको इस सम्बन्ध में विशेष जागृत और सावधान रहने की आवश्यकता है । अपनी न्यूनता और त्रुटि जानकर उसे दूर करके वास्तविक शक्ति प्राप्त करना है, जिससे अपने भक्तों को वे इच्छानुसार अनुभव दे सकें । रमण महर्षि में इस प्रकार की प्रबल शक्ति थी । उनके सम्पर्क में आने वाले इस बात को अवश्य समझ सके होंगे ।

[२]

मुझे कुछ समय के उपरान्त एक दूसरा विचित्र अनुभव हुआ । एक दिन, रात्रि में जब मैं ध्यानावस्था में था तो उसके बाद समाधि हो

गयी। उस अवस्था में मैंने देखा कि मेरे नीचे एक गहरी खाई है, उस खाई में एक घने वृक्ष के नीचे एक चबूतरा बना है, और उसके आगे मैदान है। उस चबूतरे पर एक महापुरुष पद्मासन लगाये बैठे थे। उनके वस्त्र स्वच्छ और श्वेत थे। एक वस्त्र शरीर के नीचे के भाग में लपेटे थे और एक ऊपर ओढ़े थे। नीचे का वस्त्र घुटने तक था इसलिए आधा पैर खुला था। सर पर लम्बे-लम्बे बाल थे। दाढ़ी बिल्कुल न थी, मुख अत्यन्त तेजस्वी, स्वर्णिम और शान्त था। उनका दर्शन अनुपमेय था।

मैं विचार करने लगा कि इस छोटी उमर का महापुरुष कौन होगा ? भारत में बाल योगी बहुत हुये हैं अष्टावक्र, शुकदेव, शंकराचार्य जैसे महापुरुष प्रख्यात हैं। परन्तु इन महापुरुष का स्वरूप तो सबसे भिन्न है इस विचार धारा के प्रवाह के अन्तरगत मुझे अन्तस्थल में स्फुरित हुआ कि यह और कोई नहीं संत ज्ञानेश्वर हैं मेरा मन आनन्द से विभोर हो उठा।

संत ज्ञानेश्वर से कौन परिचित न होगा ? जिसने १५ वर्ष की अवस्था में गीता जैसे महान् ग्रन्थ की भव्य टीका की जिसने पैठण में पाड़ा के मुँह से वेद वाक्य बुलवाकर अद्वितीय चमत्कार दिखाया, और जिसे अपने काल के महान् योगी की ख्याति प्राप्त हुई उस अद्वितीय महासिद्ध पुरुष की ख्याति किसने न सुनी होगी ?

पूना के निकट आलन्दी गांव में उनका जन्म हुआ था और उनकी लीला का मुख्य स्थान भी वही था। उस समय वहाँ पर एक बड़ा योगी आया था। उसकी अवस्था १४०० वर्ष की थी वह चांगदेव के नाम से प्रसिद्ध था। एक दिन चांगदेव अपने वैभव व शक्ति का प्रदर्शन करते हुए सिंह पर सवार होकर हाथ में सांप का चाबुक लेकर ज्ञानेश्वर जी से भेंट करने चले, संत ज्ञानेश्वर उस समय अपने भाई बहन-निवृत्त नाथ, सोपान और मुक्ता बाई के साथ एक टूटी हुई दीवाल पर बैठे थे।

संत ज्ञानेश्वर ने चांगदेव का वह चमत्कारिक प्रदर्शन देखकर उनकी अगवानी करने के लिए दीवाल को आगे बढ़ने का आदेश दिया। इतिहास साक्षी है कि दीवाल ने उनके आदेश का पालन किया।

संत ज्ञानेश्वर ने आलन्दी में जीवित समाधि ली। उस समय उनकी अवस्था २१ वर्ष ६ महीना १३ दिन की थी। आज आलन्दी में उसी स्थान पर एक बड़ी समाधि बनी है। हजारों भक्त वहां एकत्र होते हैं और प्रेरणा लेते हैं। ऐसे महान संत ज्ञानी और योगी का दर्शन प्राप्त करके मुझे अपार आनन्द हुआ। वह अनुभव १० मिनट तक रहा होगा।

[३]

कुछ लोग ऐसा प्रश्न कर सकते हैं कि संत ज्ञानेश्वर को समाधि लिये अनेकों वर्ष बीत गए फिर आज उनका दर्शन किस प्रकार हो सकता है ? उत्तर है—“हो सकता है अवश्य हो सकता।” जिस प्रकार बरसों बीत जाने पर भी आज, कृष्ण, राम, व्यास, दत्तात्रेय, नारद, बुद्ध और ईसा मसीह जैसे महापुरुषों के दर्शन हो सकते हैं उसी प्रकार ज्ञानेश्वर महाराज के दर्शन भी हो सकते हैं। महापुरुष देश और काल से अतीत होते हैं। वे देश और काल के स्वामी हैं। उन्हें देश व काल की मर्यादा में सीमित कर उनका विचार करना केवल अज्ञानता है। उनको देश काल बन्धन नहीं होता जिस समय, जिस स्थान पर वे चाहें वहाँ वे अपना दर्शन दे सकते हैं। केवल उनके दर्शनों के लिए मन व्याकुल होना चाहिए तभी वे प्रगट होंगे अन्यथा नहीं। ईश्वरच्छा से भी वे प्रगट होते हैं।

इस संसार में दो प्रकार के महापुरुष हैं। प्रथम प्रकार में वे महापुरुष हैं जो शरीर का त्याग कर परमात्मा में पूर्ण रूप से लीन हो जाते हैं अथवा एक हो जाते हैं। उन्हें अपना स्वतन्त्र अस्तित्व रखने

में कोई अभिरुचि नहीं होती। दूसरे प्रकार के महापुरुषों के सिद्धांत में कुछ भिन्नता है। वे परमात्मा के साथ अपना दृढ़ सम्बन्ध स्थापित कर लेने के उपरांत शरीर त्याग के बाद भी परमात्मा में पूर्णरूप से नहीं मिलते। उनकी विचारधारा इस प्रकार की होती है कि जब उनको परमात्मा का साक्षात् कर जीवन मुक्ति प्राप्त हो गई तब वे दूसरों को भी उसी मार्ग का पथ प्रदर्शन करें। दूसरों को भी परमात्मा का साक्षात्कार करा देने के कल्याणकारी काम में सहयोग प्रदान करें और संसार में ईश्वर का सन्देश फैलायें। इस प्रकार के महापुरुष अधिक प्रेमी और परोपकारी स्वभाव के होते हैं। वे-लोक संग्रह में विश्वास रखते हैं। अतः शरीर शांत हो जाने के उपरांत भी अपने अस्तित्व को बनाए रखते हैं। कोई तो सूक्ष्म शरीर धारण कर विचरण करते हैं, कोई, कोई स्थूल शरीर भी आवश्यकतानुसार धारणकर लेते हैं। ऐसे महापुरुष सिद्ध और मुक्त कोटि के होते हैं। ऐसे सिद्ध पुरुषों के लोक का शास्त्रों ने भी वर्णन किया है।

इस प्रकार के महापुरुष अपनी इच्छानुसार शरीर धारण करते हैं, कभी-कभी जन्म भी लेते हैं। परन्तु उनको अपने मूलस्वरूप का सदैव ज्ञान रहता है। वे संसार के मायाजाल में नहीं फँसते और बाल्य-काल से ही प्रभुपरायण बन जाते हैं। अपने जीवन द्वारा वे अनेकों का कल्याण करते हैं और अपना कार्य पूरा करके अपने मूलस्वरूप में मिल जाते हैं।

अनेकों बार उनके द्वारा संसार में व्यापक रूप से बड़े-बड़े प्रभाव-शाली कार्य होते हैं। कितनी बार धर्म प्रचार भी उन्हीं के द्वारा होता है। ऐसे अवतारी पुरुषों को शास्त्रकारों ने कारक पुरुष की उपाधि दी है। कारक पुरुष जब इच्छा करें तब वह अपने स्वतन्त्र व्यक्तित्व को शांत कर परमात्मा में पूर्णरूपेण लीन हो सकता है। इस बात की उनको पूरी स्वतन्त्रता है।

प्रातःकाल उठ कर गंगा-स्नानादि से निवृत्त हुआ। ध्यानादि के उपरान्त मन्दिर देखने निकल पड़ा। रात भर के अंधकार में जो स्थल देखा था, वह इस समय अन्य प्रकार का प्रतीत होने लगा। दिन और रात में अपनी-अपनी विभिन्न विशेषताएं हैं। दोनों का सौन्दर्य प्रथक् प्रथक् है, यह बात सूर्य और चन्द्र से ही अवगत हो जाती है। मनुष्य को दोनों में से किसी एक के प्रति अरुचि हुई हो ऐसा कभी भी सुनने में नहीं आया। दोनों सृष्टि के आरम्भ से ही प्रकाशपुञ्ज प्रसारित करते रहते हैं।

दक्षिणेश्वर का मन्दिर बड़ा विशाल था। यद्यपि दक्षिण भारत के मन्दिरों की भव्यता एवं जैन मन्दिरों की शिल्प कला, उसमें नहीं है तथापि ऐसा प्रतीत होता है कि आध्यात्मिकता सजीव होकर अणु-अणु से विकसित हो रही हो। मन्दिर की महत्ता मेरे हृदय में उसकी शिल्प-कला या भव्यता में नहीं है वरन् उसकी सजीवता एवं उसकी चिर स्थाई शान्ति में है। जिस मन्दिर का वातावरण मनुष्य के हृदय को किसी भी प्रकार से स्पर्श करे, और जो प्रभावित कर सके, वह मन्दिर चाहे जैसा बना हो, अवश्य महान है। इस मन्दिर में कुछ समय पूर्व जिस महा-विभूति ने निवास कर अपने प्रभुमय जीवन से आध्यात्मिक जिज्ञासुओं को आकर्षित किया था उसका प्रभाव आज भी कायम है। उनके उपदेश एवं ईश्वर की साधना की शान्ति व गंभीरता मानव को इस स्थल में प्राप्त हो सकती है। वे आज भी साधक या जिज्ञासु के हृदय से बातचीत करते हैं।

मैंने जब इस मन्दिर में प्रवेश किया तो मेरा हृदय अनिर्वचनीय प्रेम से खिल उठा। मैंने मन ही मन भारत और विश्व के इस महापुरुष को नमस्कार किया.....आज जिसके नाम से शायद ही कोई अनभिज्ञ हो।

भगवान् श्री रामकृष्ण परमहंस ! जिनके महान् पट्ट शिष्य स्वामी विवेकानन्द ने बाद में भारत और विदेशों में अपने गुरु की और भारतीय धर्म एवं तत्त्व ज्ञान की महिमा का गर्जन किया था। १४ वर्ष की अवस्था में मैंने जिनका जीवन चरित्र पढ़ कर ईश्वर को माँ माँ पुकार कर साक्षात् करने का प्रयास किया। उस महापुरुष की लीला भूमि में प्रवेश करना मेरे लिए मुक्ति-द्वार में प्रवेश के समान था।

चौक से होकर मैंने मन्दिर में प्रवेश किया। रामकृष्ण देव ने जिनकी आजीवन उपासना की थी, और जिनका सामीप्य वे प्राप्त कर चुके थे, उसी काली माँ के सामने खड़े होकर मैंने हाथ जोड़ा। मेरे नेत्र प्रेमाश्रु से छलक उठे, “माँ” क्यों अचल हैं ? आपका दर्शन करने में इतनी दूर हिमालय से यहाँ आया हूँ। आप मूक क्यों हैं ? वार्ता करिये, प्रेम करिये, मुझे कृतार्थ करिये। आप तो माँ हैं बालक के अपराध भुलाकर उससे प्रेम करना माता का धर्म है, आप मुझ से प्रेम करिये। मेरे सम्मुख प्रगट होइये। इस स्थल पर आपको अवश्य प्रगट होना चाहिये, यह तो आपका ही स्थल है।”

माँ की स्तुति कर मैं मन्दिर के ट्रस्टियों से मिला। उन लोगों ने अधिक बात न कर, साफ कह दिया कि मन्दिर में रहने का निषेध है। मैंने कहा ‘यह ठीक है परन्तु किसी की योग्यता देखकर आप आज्ञा दे सकते हैं क्योंकि मन्दिर के सर्वेसर्वा आप ही हैं।’ परन्तु ट्रस्टियों में शिष्टता का अभाव देख पड़ा। इतने बड़े लोकोपकारी मन्दिर की यह दशा देखकर मुझे बड़ा दुःख हुआ। अधिक विनती न कर मैं आगे बढ़ा, यह विचार हुआ कि जो परमहंस देव देवप्रयाग से आज्ञा करके इधर लायें हैं क्या वे कुछ व्यवस्था न करेंगे ? अवश्य करेंगे ? नहीं तो वे इधर लाते ही नहीं।

आगे चलकर रामकृष्ण देव के खण्ड में आये। परमहंस देव इसी

खण्ड में निवास करते थे, यहां पर उनके व्यवहार की वस्तुयें जैसी की तैसी सुरक्षित रखी थीं। उनका पलंग, पानी की मटकी, वर्तन सब वैसे रखे थे केवल परमहंस देव के स्थान पर दो फोटे लगे थे। एक शारदा माता की फोटो थी दूसरी उनकी स्वयं। इस खण्ड में प्रवेश करते ही मैंने देव को प्रणाम किया। रामकृष्ण देव जब जीवित होंगे तब यह कितना सुन्दर स्थल होगा। भक्त और ज्ञानी पुरुषों की टोलियां इस स्थान की शोभा बढ़ाती होंगी। आज उस अलौकिकता की साक्षी पतित पावनी पुण्य सलिला गंगा और यह खण्ड दो ही अलक्षेण हैं। उनको वाणी नहीं अन्यथा भूत काल के कितने ही संस्मरण यहां सुनने को मिलते।

[२]

इन भावों के साथ, मानो अपने घर में ही मैं धूम रहा हूं उस खण्ड में आनन्दपूर्वक फिर रहा था, इतने में एक सज्जन वहाँ पधारे उनके वस्त्र गीले थे, वे गंगा स्नान कर दर्शनार्थ मन्दिर आये थे मैंने उन्हें नमस्कार किया। मेरे नेत्रों में प्रेमाश्रु देखकर कदाचित् उन्हें आश्चर्य हुआ होगा। उनका नाम पुलिन बाबू था। बगल के ही वे दक्षिणेश्वर गांव में रहते थे। उनके पिता जी के समय में रामकृष्ण देव कभी-कभी उनके यहाँ जाते थे। रोज सुबह शाम इस मन्दिर में अपनी स्त्री के साथ दर्शनार्थ आते थे। रामकृष्ण देव को ही इष्ट मानते थे और उन पर अनन्य श्रद्धा भक्ति रखते थे। पिछले दस वर्ष से वे कोई धन्धा या नौकरी नहीं करते थे। रामकृष्ण देव का स्मरण करते थे इस स्मरण में उनमें अपूर्व आत्मबल आया था। उनकी स्त्री भी भक्त थी। एक ही प्रवृत्ति में परस्पर सहाय करने वाले, ऐसे दम्पति, दुनिया में बहुत अधिक नहीं। मेरा परिचय सुनकर पुलिन बाबू बड़े प्रसन्न हुए और कहने लगे, “आप चिंता न कीजिये, ट्रस्टियों की आज्ञा लेने की कोई आवश्यकता नहीं। मेरे एक मित्र बड़े धनवान हैं। वे रामकृष्ण

देव के अनन्य भक्त हैं। वे प्रतिदिन यहाँ दर्शनार्थ आते हैं। वे आपकी यहाँ रहने की व्यवस्था कर देंगे।”

मैंने कहा, “मुझे भोजन की व्यवस्था नहीं चाहिये मैं केवल रहने का प्रबन्ध चाहता हूँ। भोजन प्रभु दे देंगे।”

इतने में उनके मित्र, नैपाली बाबू आ पहुँचे। उन्होंने मन्दिर के पुजारी व दरवान से कह कर मेरे रहने की व्यवस्था कर दी। प्रभु की कृपा से दूसरे दिन सबेरे मेरे रहने का समुचित प्रबन्ध हो गया।

रामकृष्ण देव के खण्ड के बाहर मैं भजन लिखने लगा। देव और काली माँ पर भजन लिखकर बीच-बीच में वहीं पर बैठे हुये पुलिन बाबू और उनकी पत्नी को समझाता जाता था। अंग्रेजी में ही समझाना पड़ता था। क्योंकि वे हिन्दी नहीं जानते थे और मैं बंगला नहीं जानता था। भजन लिखते-लिखते मेरे नेत्रों से अश्रु प्रवाह होने लगता था, कितनी बार तो प्रेम में जोर से रो भी देता था। रोना इतने जोर का होता था कि मन्दिर के पुजारी इकट्ठे होकर आश्चर्य करते थे, परन्तु मेरे भाव इतने वेगवान थे, और उस स्थान पर पहुँच कर और तीव्र हो गये थे, कि मुझे किसी का ध्यान न रहता था। सुबह शाम पुजारी पाय-लागन कर कहते—“आप के दर्शन से ही हम लोग पावन हो गये।” ईश्वर के प्रति इतनी पुकार और इतना प्रेम तो आज तक हम लोगों ने नहीं देखा। वे मुझसे प्रेम कर रामकृष्ण देव का भोग देते थे। सायंकाल को उसे पाकर मेरा काम चलता था सुबह का भोजन पुलिन बाबू के यहाँ होता था।

पुलिन बाबू के घरमें मैं भोजन करने गया। वहाँ एक स्थान पर बैठ गया, तुरन्त पुलिन बाबू बोल उठे, “पिता जी के समय में जब रामकृष्ण देव यहाँ आते थे तो ठीक उसी स्थान पर बैठते थे।” पुलिन बाबू परमहंस देव की अनेकों बातें बताते थे, उनका देव के प्रति अपार

प्रेम था। उनकी पूजा सेवा के लिए घर में पुलिन बाबू ने एक अलग कमरा बना रखा था। रात में उसमें बैठकर पति पत्नी दोनों प्रेम से ध्यान और पूजा करते थे। धन्य था उनका गृहस्थाश्रम। ऐसे दम्पति के अतिथि होने में मुझे बड़ा आनन्द आया।

सायंकाल में मन्दिर से लौटकर मैं रामकृष्ण देव के कमरे के पास बैठा था। उस खण्ड के पास बैठते ही मेरा हृदय बेकाबू हो जाता था। मैं जोर-जोर से रोने लगता था और अन्तस्थल से पुकारता था, 'हे प्रभु ! हे देव ! मेरी पुकार सुनकर प्रगट होइये, और मेरे ऊपर कृपा कर मुझे शान्ति दीजिये, और मुझे पूर्ण बनाइये। आपके स्थान में तो आपको ही प्रगट होना ही पड़ेगा।'

देव ने अपने हाथ से जो पञ्चवटी बनाई है, उसके समीप बनाये गये एक छोटे से मकान की ओट में मैं रात्रि व्यतीत करता था। मेरा सोने का नियम नहीं था। अधिकांश इसी स्थान पर बैठकर अथवा घूम फिर कर, जप ध्यान करके ही सारी रात्रि बिताता था। इसी स्थल पर रामकृष्ण देव ने वृन्दावन धाम की धूलि बिखेरी थी। यहां पर ही उन्होंने मध्य रात्रि की ध्यानादि साधना की थी। इस स्थल पर बैठकर साधना करने का आनन्द कितना अपूर्व होगा। रात्रि की शान्ति में मैं, हिमालय, रामकृष्ण देव और अपनी जीवन साधना पर विचार करते हुये, इस स्थान की शान्ति का अनुभव करने लगा।

कुमारी रूप में माँ

दक्षिणेश्वर पहुँचने के उपरान्त साधना के लिए मेरी प्यास बहुत बढ़ गयी। नवरात्रि के दिन थे। माँ की कृपा इन दिनों सरलता से प्राप्त हो सकती है। जिस प्रकार की साधना मैं चाहता था उसमें माँ की अथवा रामकृष्ण देव की कृपा की आवश्यकता थी। परन्तु माँ का आकर्षण गाढ़ा न था। रामकृष्णदेव ही को प्रगट रूप में देखने की मेरी इच्छा थी, और वह भी इसलिए कि वे नये प्रकार से मेरे ऊपर कृपाकर मुझे दीक्षा दें। जिस दीक्षा के पाते ही विवेकानन्द को तुरन्त समाधि हो गयी, उसी प्रकार की दीक्षा की मुझे इच्छा थी। वैसी दीक्षा से समाधि सरल हो जाय और पूर्णता में बिलम्ब न हो। यह मेरी विचारधारा थी।

आज जब विचार करता हूँ, तो उपरोक्त विचारधारा में बड़ी त्रुटि दिखाई देती है। रामकृष्ण देव जिनको मैं भगवान् रूप मानता हूँ, वे प्रगट हों फिर उनसे एक छोटी सी वस्तु, दीक्षा मांगी जाय। वे तो सभी इच्छा पूरी कर सकते हैं। साधना की सिद्धि भी दे सकते हैं। यही बात माँ के सम्बन्ध में भी है। परन्तु इस दिशा में मेरी विचारधारा उस समय न पहुँची थी, अतः उस समय दक्षिणेश्वर यात्रा का पूरा लाभ न मिल सका नहीं तो जैसी पूर्णता मैं चाहता था वैसी प्रदान

करने वाला वर्ष १९४५ ई० का ही हो जाता। ईश्वर के सब काम योग्य समय से ही होते हैं।

दूसरे दिन मैंने प्रातःकाल यह निश्चय किया कि या तो माँ अथवा रामकृष्णदेव मुझे दर्शन दें, अन्यथा मैं अन्न जल न ग्रहण करूँगा। ऐसा विचार उद्विग्नता अथवा हठ के कारण नहीं था वरन् हृदय में जो प्रेम और प्यास थी उसकी पराकाष्ठा के कारण था। अस्तु, मैं रामकृष्णदेव के कमरे के बाहर बैठकर उनकी आराधना में भजन लिखने लगा। कुछ समय बाद पुलिन बाबू और उनकी धर्मपत्नी भी वहाँ आ गई। मैंने उनको बताया कि आज भोजन करने का विचार नहीं है। जब भोजन करना होगा तब बताऊँगा।

भजन गाते गाते मेरी आँखों में अश्रुपात होने लगता था। मेरे सामने बैठ कर वे दोनों पतिपत्नी भजन सुनने लगे। भजन प्रेम और विरह का था। भजन पूरा लिखकर मैंने देखा कि पुलिन बाबू की पत्नी के पास ही एक दूसरी बहन बैठी थीं। कुमारी की अवस्था लगभग १० वर्ष के होगी। शरीर गौर वर्ण का सुन्दर था। मुखाकृति लावण्यमयी थी, वस्त्र श्वेत थे, बाल खुले हुये और गीले थे, जिससे ज्ञात होता था कि वे स्नान के उपरान्त ही इधर दर्शनार्थ चली आयी थीं। मैंने लक्ष्य नहीं किया कि वे कब और किस ओर से आकर मेरे सामने बैठ गयीं। देव और माँ के दर्शन करने अनेकों स्त्री पुरुष प्रतिदिन आते जाते रहते हैं, उन्हीं में से कोई एक स्त्री होगी ऐसा मान लिया। और पुलिन बाबू को मैं भजन सुनाने लगा, उसका भावार्थ इस प्रकार है:—

“मैं बड़ी दूर से आपके दर्शन के लिए आया हूँ, हे माँ! हे देव! आप अभी मेरे पास क्यों नहीं आते?” मुझे बड़ा आश्चर्य हुआ जब मैंने देखा कि उस बहन की आँखों से आँसू की धारा बहने लगी। यद्यपि पुलिन बाबू और उनकी पत्नी की आँखें भी सजल हो गयीं थीं परन्तु वह नवागन्तुक

वहन तो रो रही थी। उसकी आंखें उज्ज्वल, सुन्दर, और करुणा से भरी थीं वह मेरी ही ओर एकटक दृष्टि लगाये थीं।

यह “प्रभु के लिए कौन अधिक रोता है इसकी होड़ तो नहीं है?” एक, दो, तीन, भजन पर भजन मैंने सुनाये और अन्त में उठने का विचार किया क्योंकि पञ्चवटी के पास जाकर दिन भर भजन और प्रार्थना करने का मेरा विचार था। पुलिन बावू भी घर जाने के लिए विदा हुये। मैं पञ्चवटी के पास गया वहाँ के कमरे के बाहर चबूतरे पर मैं बैठा और सामने रामकृष्ण देव की फोटो रखी, प्रायः दस बजे का समय होगा मैंने प्रार्थना आरम्भ कर दिया।

थोड़ी ही देर में प्रेम की मूर्ति, वह वहन, उधर से आती दिखाई दी। इस बार भी मैंने उसे दूर से आते न देखा पास आने पर ही मेरी दृष्टि उस पर पड़ी। इस बार उसके हाथ में एक छोटा डोल था, बाल खुले हुये थे। उसकी प्रतिभा में ईश्वरी अंश देखकर मैंने उसे मन ही मन नमस्कार किया। मेरा यह स्वभाव बहुत पहिले से रहा है और उससे मुझे बड़ा लाभ हुआ है। मनुष्य जब हाड़ मांस पर मढ़े हुये चमड़े को ही देखता है तब उस पर मुग्ध हो जाता है उसे प्राप्त करने के लिए लालायित होता है, यह सब भयंकर अज्ञान है। यदि इस अज्ञान से मुक्ति पाना हो तो उसको केवल चर्म बाह्य स्वरूप देखने की अपेक्षा शरीर में स्थित और प्रस्फुटित ईश्वरीय आलोक को देखने का अभ्यास करना चाहिए।

उस प्रकाश को पूज्य और पवित्र भाव से मानना चाहिये। सृष्टि में जहाँ कहीं सुन्दरता, माधुर्य, उत्तमता, प्रेम और ज्ञान दृष्टिगोचर होता है, वह सब ईश्वर के प्रकाश का ही प्राकट्य है। जहाँ वह नहीं है वहाँ भी जड़ और चेतन में वही रम रहा है, परन्तु मनुष्य मोह मिश्रित चर्म चक्षु से उसे देख नहीं सकता, बात केवल इतनी ही है। वह वहाँ

नहीं है, ऐसे कौन कह सकता है ? यदि मनुष्य अपना दृष्टिकोण परिवर्तित करले, तो वह उस प्रकाश का दर्शन कर सकता है। फिर उसके लिए मोहपाश में बंधन का हेतु उसी का उद्धारक होकर उपस्थित हो जाता है। मनुष्य अपनी दृष्टि दोष के कारण स्त्री को बंधन का कारण मानता है। शास्त्रों ने भी उसका अनुमोदन किया है, परन्तु जो उसमें ईश्वर की प्रतिमा का समर्थन करता हुआ ईश्वरीय अंश को देखता है, उसे स्त्री से डरने की कोई आवश्यकता नहीं।

पास आकर उस बहिन ने डोल नीचे रखा और बटवृक्ष के सूखे पत्तों पर वहीं बैठ गई। धूल से वस्त्र बिगड़ने का ध्यान उसको न था। बंगाल की प्रधानुसार साड़ी के किनारे को लपेट कर घुटने के बल बैठने के उपरांत उसने नीचे मस्तक नवाकर मुझे नमस्कार किया। दो मिनट तक वह वहाँ पर उसी प्रकार बैठी मेरे मुख की ओर देखती रही, नेत्रों से अश्रु प्रवाह चलता जाता था। पास में पड़ी बेच्चों पर दो-तीन पुरुष बैठे बात कर रहे थे, और इधर उधर कोई दूसरा न था, गंगा जी की ओर से कभी कभी नाविकों के शब्द सुनाई दे जाते थे।

यह बहन कौन होगी ? इसका प्रेम कितना अधिक है ? इस विचार के साथ-साथ वह बहन बोल उठी—“बाबा आप तो बहुत दूर से आते हैं।” मैंने कहा—“हां”।

अबतक मुझे जितने व्यक्ति इधर मिले सब अंगरेजी या टूटी-फूटी हिन्दी बोलते थे। परन्तु इस बहिन की भाषा बड़ी सरल और अच्छी थी। मुझे नवीनता ज्ञात हुई। परन्तु कलकत्ता ऐसे शहर में हिन्दी जानने वाले व्यक्ति बहुत हैं, यह मानकर मैंने संतोष कर लिया। उस बहन ने फिर कहा—“इससे तो आपका देवप्रयाग बहुत अच्छा है। आप देवप्रयाग में ही रहिये। पहले यह स्थान बड़ा अच्छा था परन्तु अब बिगड़ गया है। यहाँ रहना ठीक नहीं हैं।”

मुझे आश्चर्य हुआ, कि इस बहन ने कैसे जाना कि मैं देवप्रयाग में रहता हूँ। सम्भवतः पुलिन वाबू से ज्ञात हुआ होगा।

सायंकाल को घूमने वाले दम्पतियों के प्रेमालाप में अब दक्षिणेश्वर के स्थान का अधिकतर उपयोग होता है। साधना या भक्तिभाव के स्थान पर सैर सपाटे वाले लोग विशेष आते हैं फिर भी मैं तो उधर निवास करने के अभिप्राय से ही घर से निकला था, अतः जब बहिन ने मुझसे पूछा, “बाबा, क्या आप यहीं रहेंगे?” तो मैंने उत्तर दिया, “विचार तो ऐसा ही है।”

परन्तु उन शब्दों को याद कर कि यह स्थल अब बिगड़ गया है मैंने फिर कहा, “कुछ दिन इधर रहूंगा फिर जैसी प्रभु की इच्छा।”

अभी तक उस बहन की आंखों से आंसू टपक रहे थे, वह क्यों रोती है यह विचार आते ही उसने पूछा, “बाबा क्या मुझे भी दर्शन होगा?”

मैंने उससे अधिक प्रश्न न करते हुये कहा, “क्यों नहीं होगा। जब तुम्हारा इतना प्रेम है तो अवश्य दर्शन होगा प्रेम है तो दर्शन होंगे।”

इतना सुनने पर वह बहिन और अधिक रौने लगी, और सुमधुर बाणी से कहने लगी, “उन्होंने मुझे बहुत भरमाया, मथुरा, वृन्दावन, ऋषिकेश इत्यादि सभी जगह घुमाया पर दर्शन अभी तक नहीं दिये।”

मैंने विचार किया कि इतनी कम अवस्था में यह बहन इतनी जगह कैसे घूमी होगी और वह भी ईश्वर दर्शन की अभिलाषा में? अपने विचार को ध्यान में न रखकर न जाने किस भाव से मैंने अपनी थैली से अपनी एक फोटो निकाली और उसे दिखा कर पूछा, “देखो यह कैसी है?” उसने तुरन्त उत्तर दिया, “है तो ठीक, परन्तु तुलसीदास ने कहा है न कि “तुलसी मस्तक तब नवे जब धनुषवान लो हाथ?,..... उसी स्वरूप में मुझे दर्शन चाहिये।”

मैंने कहा—“ऐसा दर्शन भी हो जायगा प्रेम होने पर सब कुछ हो सकता है।” इस सब वार्तालाप के समय उसके नेत्रों से अनवरत अश्रु प्रवाह होता रहा। अपने डोल से उसने एक पुड़िया निकाली जिसमें चार रसगुल्ले थे, एक हरा नारियल और निकाला। सब वस्तुओं को मेरे सामने रख कर प्रतीक्षा करने लगी।

मैंने कहा, “आज तो मेरा भोजन करने का विचार नहीं है।” उसने कहा, “क्यों नहीं, मैं तो प्रेम से देती हूँ, आपको लेना ही पड़ेगा।”

उसके प्रेम भाव के आगे मैंने अधिक दुराग्रह करना उचित न समझा और उसे रामकृष्ण देव की फोटो के पास, सब प्रसाद रखने को कहा।

“आप सबकी रोटी खाते हैं” उसने पूछा।

“जो प्रेम से देते हैं उन सबकी रोटी खा लेता हूँ।” मैंने उत्तर दिया। उसने तुरन्त कहा—“अच्छा तो मैं कल से इसी स्थान पर रोटी लाया करूंगी।” इसी जगह। मैंने उसे सुझाव दिया ? और पूछा—“आप कहाँ रहती है।” उसने उत्तर दिया, “मेरा मकान यहीं पास में है, मैं इधर प्रतिदिन आती हूँ।”

तत्पश्चात् दो तीन मिनट तक प्रेमाश्रु भरे नेत्रों से मेरे मुख को वह देखती रही फिर पल्ला गले में लपेट कर, मृशे नीचे झुक कर प्रणाम किया। दो मिनट बाद में बैठकर मेरी ओर देखती रही, फिर धीरे से डोल लेकर वह कुमारी चलने लगी। उसकी माधुरी, सुन्दरता और उसका प्रेम मेरे हृदय के अन्तस्थल में अङ्कित हो गया है उसको वर्णन करना मेरी शक्ति के बाहर है।

प्रसाद पाने की मेरी इच्छा लेशमात्र भी न थी। एकआध मिनट बाद यह विचार हुआ कि इस बहन का परिचय प्राप्त करने योग्य है। उसने कहा था कि वह यहीं कहीं निकट किसी मकान में रहती है, अतः

मैं पता लगाने के लिए उठा। वहाँ मन्दिर तक सीधा रास्ता जाता था, दूसरा रास्ता थोड़ी मोड़ लेकर मन्दिर के बाहर की ओर दरवाजे तक जाता था। मैंने दोनों रास्ते भली प्रकार देखे परन्तु उस बहन का पता न चला, वह दिखाई न दी, इतने थोड़े समय में वह किधर चली गई? अधिक दूर न जा सकी होगी? हो सकता है वह जल्दी में हो और शीघ्रता पूर्वक चली गयी होगी। कोई चिन्ता नहीं, यदि कल प्रसाद देने आये, तब बात ठीक समझी जायगी।

थोड़ी देर के उपरान्त वहाँ एक मनुष्य आया उसको मैंने रसगुले का सब प्रसाद दे दिया। जो जिसके भाग्य का होता है उसको ही वह प्राप्त होता है मुझे यह सूझा भी नहीं कि मैं भी उसमें से कुछ ले लूँ।

सायंकाल को पुलिन बाबू आये। दूसरे दिन मैंने बड़ी प्रतीक्षा की परन्तु वह बहन न आई। मैंने पुलिन बाबू से पूछा, “कल मेरे पास एक बहन आकर मुझे प्रसाद लाने को कह गई थी क्या आप उसे जानते हैं?” मैंने पुलिन बाबू को उसके स्वरूप का वर्णन दिया परन्तु पुलिन बाबू उसे पहचान न सके। मैंने कहा—“कल प्रातःकाल जब मैं आपको भजन सुनाता था तब वह आप के पास ही बैठी थी।”

पुलिन बाबू ने कहा—“कल कोई स्त्री मेरे पास आई नहीं, अंत तक हम दोनों आपके भजन सुनते रहे तीसरा कोई न था।”

मैंने बात को अधिक विस्तार न दिया। मैं समझ गया। उसके बाद दो तीन दिन के भीतर ही अचानक देव प्रयाग जाने का विचार आया। मैं देवप्रयाग गया वहाँ मुझे एक दिन प्रेरणा हुई कि वह बहन दूसरी कोई नहीं साक्षात् काली मां जगदम्बा थीं।

अरे माँ! क्यों तूने मेरे अज्ञान के अंधकार को उस समय नहीं हटाया? ऐसा अमूल्य अवसर व्यर्थ मैं क्यों जाने दिया? तेरी चरण-

रज को मस्तक पर धारण कर मैं कृतार्थ हो जाता तो तुम्हारा उसमें क्या बिगड़ता ?

माँ के उस रूप को, माँ की उस मधुर वाणी को याद कर मेरा हृदय करुणा से भर गया ।

उसीदिन दूसरे प्रहर माँ ने एक भिन्न प्रकार से मुझे भोजन कराया । एक गृहस्थ को मिठाई इत्यादि के साथ, अभ्यागत को भोजन कराने के लिए, मेरे पास भेज दिया—यदि ऐसा था तो रसगुल्ले का प्रसाद पाने की सद्बुद्धि उस समय क्यों न दी ।

कदाचित् उस समय मेरा सुयोग्य अवसर न आया होगा यही उसका कारण हो सकता है । जो भी हो परन्तु दक्षिणेश्वर की उस अदभुत प्रेम मूर्ति वहन को स्मरण कर कितनी बार मैंने एक अनोखी लगन का अनुभव किया है, आज भी अनुभव करता हूँ ।

माँ की वह अलौकिक मूर्ति मेरे मन में सदा सर्वदा के लिए अंकित हो गई ।

अलौकिक-दीक्षा

मेरी आन्तरिक वेदना किसी भी प्रकार से न गई। दिन रात एक ही आदर्श का ध्यान! एक ही ध्येय वस्तु की व्याकुलता, और उसी के लिए प्रार्थना, यह मेरा नित्य-कर्म था। इस प्रकार के कार्यक्रम के अतिरिक्त कोई भी साधना सफल नहीं हो सकती यदि किसी को कुछ करना है तो उसे अन्य सभी बातों को छोड़कर, ध्येयपरायण बन जाना चाहिये। इस प्रकार की तन्मयता की आवश्यकता साधना में सर्वाधिक है। तेल की धारा के समान मन एकाकार बन कर अस्खलित बहना चाहिए तभी ईप्सित वस्तु मिल सकती हैं। आध्यात्मिक मार्ग में जिन्होंने कुछ भी प्राप्त किया है वह इसी प्रकार की साधना द्वारा ही किया है।

शान्ताश्रम को बढ़ाने के लिए ऊपर नीचे दो कमरे बनवाने का निर्णय चक्रधर जी ने किया। नीचे का कमरा तो था ही, ऊपर एक कमरे का काम लगना था। नीचे का कमरा कुछ सुन्दर न था। पहाड़ी नमूने का वह छोटा सा मकान था, खिड़की किवाड़ का भी कोई ठीक ठिकाना न था, परन्तु आश्रम ठीक था। नया कमरा इसलिए बनाना था कि ऊपर रहकर मैं भजन साधन कर सकूँ और नीचे का कमरा सामान रखने और भोजन बनाने के काम आये।

अतः मुझे स्थानान्तर करना पड़ा। आश्रम के नीचे देवप्रयाग के निवासी मंगनलाल जी के मकान में व्यवस्था हो गयी। इस स्थान में मुझे अनुकूलता रही, और साधना ठीक प्रकार से चलने लगी। दिनरात किधर चले गये मुझे कोई खबर नहीं। रात तो उन दिनों अधिकांश बैठ कर व्यतीत होती थी।

लगभग एक या डेढ़ महीना जब तक आश्रम बनता रहा तब तक मैं इसी मकान में रहा। इसी समय के अन्तरगत प्रभु ने मेरी इच्छा की पूर्ति की। यह प्रसंग ऐसा है कि ता० १६ अप्रैल १९४६ ई० का दिन था। रात्रि को ध्यान में बैठा था, जब जाग्रति होती थी तब प्रार्थना करने लगता था, उतने में ध्यानावस्था में देह का भान चला गया। उस समय एक अवधूत महापुरुष का दर्शन हुआ वे बिल्कुल नगनावस्था में थे। उनके शरीर पर मक्खियां भिनभिनाती थीं ! मैंने उनको प्रणाम किया। उन्होंने मेरे मस्तक पर हाथ रखा। मुझे समाधि अवस्था की अनुभूति हुई। उन्होंने फिर दूसरे हाथ से मेरी पीठ के निचले भाग मूलाधार चक्र को दबाया। जब मैं सचेत हुआ तब उन्होंने अपना हाथ हटा लिया, परन्तु तब तक वे मूलाधार चक्र को दबाये रहे थे।

समाधि दशा का वह अनुभव प्रायः दो ढाई घण्टे तक रहा होगा। इस प्रकार के अनुभव प्राप्त करने की मेरी बहुत दिनों से कामना थी। ईश्वर की कृपा से वह इस प्रकार सफल हुई। इसको ऐसा समझा जाय कि मानों मुझे नये प्रकार की दीक्षा दी गई हो।

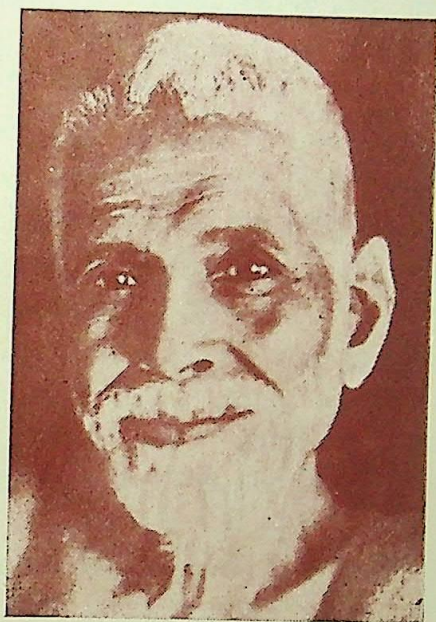
कमरे में बाद को कोई महात्मा न दिखाई दिये। मुझे अपार आनन्द था। ब्राह्म मुहूर्त में दीक्षा देने वाले यह महात्मा कौन होंगे ? मेरा उनका पहिले का कोई सम्पर्क न था। क्या वे जीवनमुक्त कोई सिद्ध पुरुष होंगे ? यह तो वही जाने संभवतः दयालु प्रभु स्वयं ही इस प्रकार की सहायता करने और शान्ति देने पधारे होंगे ? इस प्रसंग के उपरान्त

मेरे आनन्द की कोई सीमा न रही। मैंने जान लिया कि अब मेरी इच्छा पूर्ण होगी। ध्यान में सहायता मिलेगी। पूर्णता प्राप्त होगी। शक्ति मिलेगी और यदि ईश्वरेच्छा होगी तो सब प्रकार से पूर्ण बन भारत को सहायता करने और जगत को शान्ति देने मैं निकल सकूंगा, परन्तु अभी कितने और भी विचित्र अनुभव मुझे होना है, यह मुझे ज्ञात न था। ये अनुभव तो मुझे योगी बनने की इच्छा पूर्ति के लिए माँ द्वारा होते थे। उसमें से मुक्त और तुष्ट हो मुझे जीवन की सफलता के लिए माँ की ही शरण लेनी थी इसकी उस समय मुझे कल्पना न थी। समय बीतता गया वैसे-वैसे सभी बातें समझ में आने लगीं।

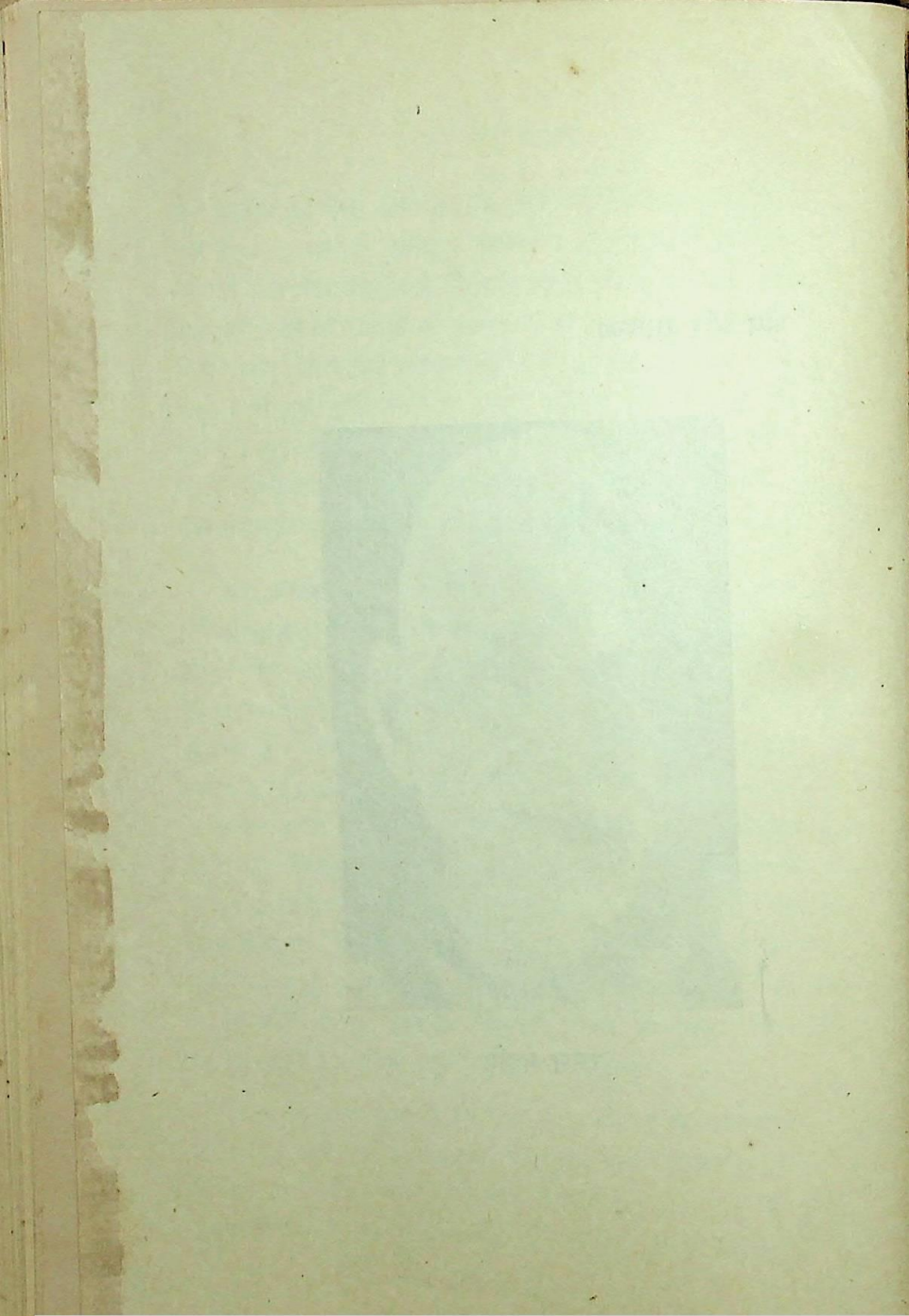
मेरे जीवन में अनेक अनुभव हुए हैं। उन सबका वर्णन करने की मेरी इच्छा नहीं है, और आवश्यकता भी नहीं है। परन्तु कुछ अनुभव छोड़ने योग्य नहीं है, अतः उनका उल्लेख करना उचित है। परन्तु पाठक यह न समझें कि मैं अपनी बड़ाई का बखान करता हूँ उसकी तो मुझे कल्पना भी नहीं है, फिर भी यदि किसी को इसकी गंध आये तो लाचारी है। इस प्रकार के मनुष्यों को हृदय शुद्धि कर सरल और निष्कपट बनना चाहिये तभी वे बुरी कल्पना से मुक्त हो सकेंगे। इन लोगों की विचारधारा पर ध्यान न देकर प्रसंग की आवश्यकता के कारण मैं उनका विवरण देता हूँ। सत्य के पक्ष में खड़े होकर निस्वार्थ भाव से केवल लोकहित के लिए अथवा प्रभु की इच्छा पूर्ति के लिए मुझे कितनी ही घटनाओं का उल्लेख करना परमावश्यक है। यह मेरी बड़ाई नहीं परन्तु ईश्वरीय कृपा की महिमा का जयगान है। यथा सम्भव संयम से, पवित्र हृदय से मैं उसे गा रहा हूँ।

प्रभु की परम कृपा से इस तरह कोई सिद्ध पुरुष द्वारा दीक्षा लेने की अधिक समय की मेरी इच्छा पूरी हुई। मुझे बड़ा आनन्द हुआ ! हो क्यों न ? उस इच्छा पूर्ति के लिए मैं बारम्बार उपवास करता रहा, बहुत दिनों तक आंसू बहाता रहा और प्रार्थना करता रहा। प्रभु की

श्रेय और साधना



रमण महर्षि



अमरत्व प्राप्त, सात महापुरुषों का उल्लेख अपने ग्रन्थों के श्लोकों में आया है, उनमें व्यास, वलि, हनुमान, विभीषण और अश्वस्थामा के नाम का भी समावेश है। तुलसीकृत रामायण में और योगवशिष्ट आदि ग्रन्थों में कालातीत काकभुशुण्ड जी और लोमश ऋषि का भी उल्लेख आता है। इसका अभिप्राय यह नहीं है कि कालातीत पुरुष केवल इतने ही हुये हैं। ग्रंथकारों ने तो उनकी गणना में प्रमाण स्वरूप कुछ नाम दिये हैं, परन्तु ऐसे महापुरुष कितने हुये, कितने हैं और कितने होंगे इसकी वास्तविक गणना कौन कर सकता है ?

एक आवश्यक बात यह ध्यान देने के योग्य है कि जो महापुरुष परमात्मा के स्वरूप से मिल गये हैं उनके भी दर्शनों को यदि किसी को उत्कण्ठा हो तो वह परमात्मा की कृपा से पूरी हो सकती है।

परमात्मा स्वयं उस रूप में प्रगट होकर साधक को शान्ति देते हैं। परन्तु यह योग बड़ी कठिनता से होता है।

इतने स्पष्ट विचारों से यदि देखा जाय तो संत ज्ञानेश्वर को जीवित समाधि लिए युग बीत गया फिर भी उनके दर्शन प्राप्त किए जा सकते हैं। ज्ञानेश्वर महाराज की जीवित समाधि, पाढ़ा की वाणी, दीवाल की गति इत्यादि अनेक चमत्कारों का सिंहावलोकन करने से उनकी अपार योगिक शक्ति का परिचय प्राप्त हो सकेगा। काल पर शासन करने वाले महापुरुष यदि समाधि के बाद अपनी इच्छा से किसी को दर्शन दें तो उसमें कौन सा बड़ा आश्चर्य है ? यह बात तो सरलता से समझी जा सकती है। इतिहासकार तो यहाँ तक कहते हैं कि ज्ञानेश्वर के बाद २०० वर्ष तक महाराष्ट्र में “एकनाथ” महाराज अवतरित हुए। प्रथमतः एकनाथ जी को ज्ञानेश्वर जी ने स्वप्न में सूचित किया कि जिस वृक्ष के नीचे मैंने समाधि ली है उस वृक्ष की एक डाल मुझे लगती है अतः वे वहाँ जाकर उसको ठीक करें।

ऐसे महान योगी को भला डाली क्या कर सकती थी ? क्या वे स्वयं उस डाली को हटा नहीं सकते थे ? परन्तु इस बहाने को उन्होंने एकनाथ जी को दर्शन देने का निमित्त बनाया था । एकनाथ जी स्वप्न की सूचना के अनुसार आलन्दी पहुँचे परन्तु समाधि का स्थान न खोज सके । ज्ञानेश्वर महाराज ने उन्हें फिर सूचित किया और तब उसके अनुसार खोज करने पर एकनाथ जी भूगर्भ में, जहाँ समाधि थी, प्रवेश कर सके । वहाँ पर एकनाथ जी ने जो देखा उससे वे बड़े प्रसन्न हुये । उन्होंने देखा—

एक छोटे से वृक्ष के नीचे श्री ज्ञानेश्वर जी महाराज विराजमान हैं ।

एकनाथ जी जब और समीप गये तो ज्ञानेश्वर जी ने मुस्करा कर उनका स्वागत किया । श्री एकनाथ जी भी महान और ईश्वर-दर्शी सन्त थे । दोनों का समागम हो गया मानों, राम-भरत, बद्रीनाथ-केदारनाथ, गंगा-यमुना, ज्ञान-वैराग्य का ही अपूर्व समागम हुआ हो ।

यह कहा जाता है कि श्री एकनाथ जी उधर तीन दिन और तीन रात्रि रहे । इन तीन दिन में उन दोनों महापुरुषों ने वहाँ क्या बात की और क्या किया यह वे ही जाने परन्तु श्री एकनाथ के गीतों से संसार ने यह अवश्य जाना कि ज्ञानेश्वर महाराज अभी जीवित हैं । और उन्होंने एकनाथ जी को कृतार्थ किया है ।

उस महाज्ञानी और योगी महापुरुष ने मुझे उत्तर काशी में हिमालय के सुदूर प्रदेश के अन्तरगत ढूँढ़ निकला और मुझे कृतार्थ किया । और उसके अनेकों वर्ष बाद सन १९४४ ई० में फिर दर्शन दिया, यह उनकी कृपा के कारण ही सम्भव हो सका । उनके लिये मुझे या और किसी को दर्शन देना कठिन नहीं है । इतने वर्षों में न जाने कितने अन्य साधकों को उन्होंने दर्शन देकर कृतार्थ किया होगा कौन कह सकता है ?

श्री रमण महर्षि के समान उन्होंने भी मुझे दर्शन देकर अपनी ओर आकर्षित किया है । उनके प्रति मेरा प्रेम तो था ही परन्तु उपरोक्त अनुभव

के उपरान्त वह अधिक बढ़ गया । उनका महान व्यक्तित्व मेरी आँख के सामने रमने लगा । श्री एकनाथ जी महान थे, मैं अभी एक साधारण बालक हूँ, मेरे में कोई विशेष योग्यता नहीं इस पर भी उन्होंने मेरे ऊपर कृपा की उसका विचार करके मेरा हृदय उमड़ आया ।

महापुरुषों की कार्यप्रणाली ऐसी ही रहस्यमय होती है । वे किस पर किस समय कृपा करेंगे कुछ कहा नहीं जा सकता । केवल भारत के ही नहीं अपितु संसार के इन दोनों महापुरुषों श्री रमण महर्षि और संत ज्ञानेश्वर के चरणों में मेरा प्रणाम और बार बार प्रणाम है । वे जहाँ तक सम्भव हो वहाँ तक अपनी कृपा की वर्षा मुझ पर करते रहें यही कामना है ।

सन्तों का मिलाप

प्रति दिन के नियमानुसार एक दिन सायंकाल को मैं गंगा किनारे टहलने गया था। उधर मुझे एक यात्री से भेंट हो गयी उनसे वार्तालाप हुआ उसी प्रसंग में उन्होंने कहा,

“मेरा विचार उत्तर काशी अथवा देव प्रयाग जाने का है कोई अच्छे संत महात्मा के दर्शन की मेरी इच्छा है। मेरा हिमालय आने का कारण यही है, क्या देव प्रयाग या उत्तर काशी में किसी अच्छे महात्मा का दर्शन मिल सकेगा?” “वहाँ अनेकों सिद्ध पुरुष रहते हैं ऐसा मैंने सुना है।”

मैंने कहा,—“देव प्रयाग में कोई अच्छे संत रहते हैं या नहीं मैं नहीं कह सकता। वहाँ भाग्य से संभवतः किसी को कोई संत मिल जाय तो आश्चर्य नहीं परन्तु उत्तर काशी में आपको संत महात्माओं के दर्शन अवश्य होंगे। परन्तु उनके दर्शन से आपको शान्ति या सन्तोष मिलेगा या नहीं यह कहना कठिन है।”

“समय की मोड़ इस समय जैसी है, वह कुछ आपसे छिपी नहीं है। इस समय शुद्ध और संयमी होकर प्रभुपरायण जीवन बनाने की अभिलाषा रखने वाले व्यक्ति बहुत थोड़े हैं। हिमालय में भी उनकी

संख्या थोड़ी है। अभ्यासी व विद्वान पुरुष तो इधर बहुत हैं परन्तु तपस्वी, अनुभवी और साधना करने वालों की संख्या बहुत कम है; और ऐसे पुरुष भाग्य से मिलते हैं। उनको बड़ी कठिनता से पहिचाना जाता है। संभव है उत्तर काशी की ओर ऐसे कोई महात्मा मिल जाँय। यदि आपकी इच्छा वहाँ जाने की है तो कोई आपत्ति नहीं स्थान अच्छा है। इस समय, वर्षा ऋतु है, प्राकृतिक सौंदर्य पूर्णरूपेण विकसित होगा। आपको आनन्द आयेगा और प्रत्यक्ष अनुभव प्राप्त होगा।”

मेरे शब्दों को सुनकर वे सज्जन प्रसन्न होकर विदा हुये। वे उत्तर काशी गये या नहीं इसकी मुझे खबर नहीं परन्तु उनके साथ वार्तालाप के उपरान्त उत्तर काशी के अपने निवास काल के अन्तरगत हुये सत्संगों के स्मरण स्मृति पट पर फिर से नूतन हो गये। संत महात्माओं के सम्बन्ध में मैंने जो कुछ उनसे कहा था उसके पीछे मेरे उत्तर काशी एवं उसके बाद के जीवन के विशाल अनुभव का पृष्ठ बल था। उत्तरकाशी जाने के पूर्व मैंने भी ऐसा सुना था कि वहाँ बहुत उच्चकोटि के संत महात्मा निवास करते हैं परन्तु वहाँ के प्रत्यक्ष अनुभव के बाद यह बात अतिशयोक्ति पूर्ण प्रतीत हुई। केवल उत्तरकाशी या गंगोत्री इत्यादि स्थानों पर वास करने से ही कोई तपस्वी या विरक्त नहीं हो जाता। कौपीन या कंथा धारण करने से अथवा जटाजूट बढ़ा, करपात्री हो जाने से भी जीवन-मुक्त पद नहीं मिल जाता। जीवन-मुक्ति और विरक्ति में मुख्य भाग मन का है। अतएव मनुष्य का बाह्य रूप रंग चाहे जैसा हो परन्तु उसका मन किसमें रमता है, परमात्मा में, या संसार में, और उसके विचारों की वृत्ति का स्वरूप क्या है? इस बात की विवेचना करनी होगी। परमात्मा का साक्षात्कार करके मन अहंकार, ममता, तथा विषयाशक्ति से मुक्त हुआ है अथवा नहीं, यह भी देखना होगा। उसके बिना कोई ठीक निर्णय नहीं किया जा

सकता । यदि इस दृष्टिकोण से देखा जाय तो उत्तमकोटि के संत बहुत कम पाये जायेंगे । जिस प्रकार ऋषिकेश में देखा, उसी प्रकार वहाँ भी विद्वानों की संख्या अधिक दिखाई दी परन्तु साधना में रत या साधना कर शान्ति प्राप्त किये हुये सन्तों की संख्या बहुत कम थी । इसी प्रकार के पुरुषों के समागम में आनन्द आता है, अस्तु दो चार का यहाँ उल्लेख अनुपयुक्त न होगा ।

[२]

उत्तरकाशी में विश्वनाथ महादेव का सुन्दर स्थान है । उसमें छोटी सी कुटिया बनाकर एक महात्मा रहते थे । वे नागा जी के नाम से प्रसिद्ध थे । उनके शरीर पर केवल कोपीन व भस्म लगी रहती थी, माथे पर बड़े-बड़े जटा-जूट थे, शरीर दुबला पतला था, एक बार किसी के बताने पर भिक्षा लेने के लिए क्षेत्र को जाते समय वे मुझसे मिले । उन्होंने मेरा सस्मित सत्कार किया और संकेत से थोड़ी देर मुझसे बातचीत की उन्होंने वरसों से मौनव्रत लिया था अतएव उनसे शाब्दिक वार्तालाप करना संभव न था । उनको देख कर मुझे उनकी विशेषता का विश्वास हुआ और प्रेम बढ़ गया फिर तो लगातार उनके पास जाना होता रहा । वे भी मुझे प्रेम भाव से देखने लगे । उनको क्षेत्र से आटा दाल इत्यादि मिलता था अतः अपना भोजन वे स्वयं बना लेते थे । उनकी कुटिया में अग्नि प्रज्ज्वलित रहती थी क्षेत्र जाते समय कई एक महात्मा उनके पास आते थे । मैंने भी अपना समय उनके पास जाने का वही रक्खा था ।

उनके एक प्रशंसक से मैंने सुना था कि वे रात को नहीं सोते हैं । सारी रात लगभग जगते ही रहते हैं और साधना करते हैं इस बात को समझने में मुझे कोई कठिनाई न थी, कारण उस दशा का मुझे अनुभव था । पिछले कुछ महीनों से मैंने भी ऐसी ही आदत डाली

थी । नागा जी सदा प्रसन्न चित्त और शान्त रहते थे उनके नेत्र तेजस्वी देख पड़ते थे । इन सब कारणों से ऐसा ज्ञात होता था कि उस समय उनको साधना में अनुभव की दशा प्राप्त हो गई थी । मेरे प्रति उनका प्रेम धीरे-धीरे बढ़ने लगा, तब फिर हम लोग दूसरे प्रहर भी मिलते थे । मैं जब कभी दूध पीने बाजार जाता था तो वे मुझे दूर से देखकर मुझसे मिलने आते थे । उनके साथ जो थोड़ी बहुत सांकेतिक बातें होती थीं उनसे यह अवगत होता था कि वे उत्तम कोटि के संत पुरुष हैं । एक बार वे मुझसे कहने लगे—

“साधु पुरुष को दो बातों की बड़ी सावधानी रखनी चाहिए जीभ और उपस्थ । जीभ और उपस्थ के संयम के बिना सब बेकार है, साधु जीवन का कोई महत्व नहीं रहता ।

आज बरसों बीत गये हैं फिर भी उस महापुरुष द्वारा कही वह बुद्धिमत्ता पूर्ण अनुभव की बात मुझे ज्यों की त्यों याद है । वास्तव में प्रत्येक उन्नतिशील पुरुष को इन शब्दों को अंकित कर लेना चाहिये यह केवल साधु पुरुष के लिए ही नहीं है अपितु प्रत्येक प्रारम्भिक साधक का प्रथम कर्तव्य है । जीभ के विषय में रसास्वाद और वाणी दोनों का समावेश हो जाता है । ब्रह्मचर्य की महत्ता तो प्रत्येक धर्म के महापुरुषों ने पुकार कर कही है । स्त्री और पुरुष दोनों के लिए इसका पालन करना एक समान आवश्यक है । जीभ और उपस्थ का संयम श्रम साध्य है । अतः सतत् जागृति, आत्म निरीक्षण और प्रभु प्रार्थना का आधार परमावश्यक है, तदुपरांत अच्छे पुरुषों का संग, उत्तम स्थल और पुस्तकों का संग भी उसमें सहायक हो जाता है ।

इस संयम का व्रत जिस तरह से भी हो साधक को तो लेना ही चाहिये । इस संयम की साधना करनी ही पड़ेगी । इसके बिना आत्मिक उन्नति की साधना अधूरी ही रहेगी ।

नागा जी की इच्छा थी कि मैं उत्तरकाशी में ही रह जाऊँ और वे अपना यह मन्तव्य मुझसे बराबर कहते रहते थे। मेरी भी इच्छा कुछ-कुछ ऐसी ही थी, क्योंकि उत्तर काशी का वातावरण मुझे अच्छा लगता था परन्तु ईश्वर की इच्छा न थी। आगे का जीवन क्रम इस बात पर प्रकाश डालेगा। उत्तरकाशी, मैं बहुत अधिक समय न रहा फिर भी उस सच्चे संत की स्मृति आज भी मेरे हृदय पर अंकित है और उनके प्रति वही आदर भाव आज भी पूर्ववत् है। समय निकलता जाय और शरीर भी दूर रहे परन्तु अन्तस्थल पर पड़ी सन्तों की छाप नहीं मिटती। सन्तों की स्मृति और उनका स्नेह उनके समागम के बाद भी सदा ही सुखकारक और शान्तिदायक होता है। उचित भी यही है कि वह समय के साथ बड़े और अमररहे।

[३]

उत्तर काशी में एक दूसरे ऊँची श्रेणी के साधक से सम्पर्क हुआ। उनका नाम मोतीलाल ब्रह्मचारी था। वे गंगा के उस पार एक गांव में रहते थे। जब कभी वे उत्तर काशी आते थे तो मुझसे अवश्य मिलते थे। उनकी अवस्था उस समय ४० वर्ष की होगी परन्तु योगाभ्यास के प्रभाव से वे २५ वर्ष के मालूम होते थे। उनको योग की साधना में आनन्द आता था। उनके समान उत्साही और पुरुषार्थी साधक बहुत कम देखने में आते हैं। योग की अनेकों आवश्यक प्राथमिक शिक्षा लेकर वे हिमालय आये थे और उत्तर काशी में बस गये थे। रात को दाँ बजे से उठकर वे आसन और प्राणायाम की आवश्यक साधना में लग जाते थे, केवल एक बार, दूसरे प्रहर, चावल और दूध उनका भोजन था जिसे वे स्वयं अपने हाथ से बनाते थे। उत्तर काशी से थोड़ी दूर ब्रह्मा जी नामक एक योगी रहते थे, जिनसे इनको प्राणायाम की किसी क्रिया की प्राप्ति हुई थी। उस क्रिया से इनको बड़ा लाभ हुआ था विशेष कर कुम्भक, अर्थात् प्राणवायु को रोक रखने में उनको अप्रत्याशित सफलता

मिली थी। वे मुझसे कहते थे कि वे एक घन्टे तक कुम्भक कर सकते हैं, यदि कोई विघ्न उपस्थित न हो जाय उनका यह भी कहना था कि यदि नियमित क्रमानुसार प्राणायाम का उनका वर्तमान अभ्यास चलता जाय तो एक या दो वर्षों में वे तीन घन्टे का कुम्भक कर सकेंगे। आज वह बातचीत हुये वर्षों बीत गये हैं वे इस समय कहां है मुझे कुछ ज्ञान नहीं। उनकी साधना चलती रही या उसमें कोई विघ्न पड़ गया, इसकी भी कोई खबर नहीं है परन्तु यदि उनकी साधना चालू रही होगी, आज उनकी अवस्था अत्यन्त ऊंची होगी इसमें सन्देह नहीं। सन १९४४ ई० के वे मोतीलाल ब्रह्मचारी आज कदाचित् एक बड़े अनुभवी योगी बन गये होंगे।

साधना का मार्ग कष्ट साध्य है। उसमें अदम्य उत्साह, लगन, श्रद्धा और पुरुषार्थ की आवश्यकता है। योग की साधना तो और भी कठिन है। उसकी सिद्धि के लिए बरसों मेहनत करनी पड़ती हैं। सब मनुष्यों में ऐसी मेहनत निरन्तर करने की शक्ति नहीं होती, अतः बहुत कम साधकों को योग का मार्ग पसंद आता है, और उसमें भी सबको सफलता नहीं मिलती है।

[४]

उत्तर काशी में उन दिनों मुझे गंगोत्री में रहने वाले प्रसिद्ध महात्मा श्रीकृष्णाश्रम के दर्शन का लाभ मिला था। कृष्णाश्रम जी उस समय उत्तर काशी आये थे और मेरे पास वाली कुटिया में रहते थे। वे नगनावस्था में और मौन रहते थे। ऐसा कहा जाता था कि वे संस्कृत बहुत अच्छी जानते हैं। मैंने इनसे जब मुलाकात किया तब वे कुटिया में पुआल पर बैठे थे उनकी मुखाकृति जटा और दाढ़ी से परिपूर्ण थी। यह उनका प्रथम दर्शन था तदुपरान्त कुछ समय बाद वे गंगोत्री के लिए चल दिये। उनके साथ एक पर्वतीय स्त्री थी। वह उनकी सेवा शुश्रूषा में

रहती थी इस संबन्ध में आगे उल्लेख किया जायगा, यहां इतना ही पर्याप्त है ।

इन तीन साधु पुरुषों के सम्पर्क से मुझे बड़ी प्रसन्नता हुई । उसके बाद स्वामी तपोवन जी और प्रज्ञानाथ जी के दर्शन का सौभाग्य भी मुझे प्राप्त हुआ । वे अपनी विद्वत्ता के लिए प्रख्यात थे । प्रज्ञानाथ जी को योग में भी बड़ी अभिरुचि थी अच्छे योगियों की गणना में उनकी भी ख्याति थी ।

• • •

गंगोत्री और केदारनाथ

गंगोत्री का स्थान बड़ा सुन्दर है। यमुनोत्री में जिस प्रकार यमुना जी का मन्दिर है उसी प्रकार गंगोत्री में भी गंगा जी का मन्दिर है। यमुनोत्री की तरह इधर भी वर्ष देखने को मिलती है। शीत भी पर्याप्त मात्रा में होता है फिर भी यात्री गंगा में ही स्नान करते हैं, यमुनोत्री में ईश्वर की कृपा से प्राकृतिक गरम पानी के कुण्ड हैं परन्तु इधर उनका अभाव है, अतएव धूप निकलने के बाद में ही स्नानादि का कार्यक्रम बनाना पड़ता है। यमुनोत्री की अपेक्षा गंगोत्री में मकान अधिक है। गंगा के उस पार अनेकों कुटिया बनी हैं, जिनमें यात्रा के समय संत महात्मा ठहरते हैं। वहाँ पर अभ्यागत महत्माओं के लिए दो अन्न क्षेत्र भी खुले रहते हैं।

गंगोत्री में देवदार के वृक्षों की बाहुल्यता है। पुराणों के कथानक से विदित है कि भगीरथ की तपश्चर्या से प्रसन्न होकर गंगा ने स्वर्ग से पृथ्वी पर अवतरण स्वीकार कर लिया अतः गंगा का नाम भागीरथी प्रसिद्ध हुआ। भगीरथ तो गंगा को पृथ्वी पर लाकर उनके स्पर्श से अपने पूर्वजों को उद्धार करने की इच्छा रखते थे। कपिल मुनि के तपोबल से भस्मीभूत, उनके पूर्वज राजा सगर के साठ हजार पुत्रों का उद्धार भगीरथ ने अवश्य किया, किन्तु साथ-साथ कितने अनेक प्राणियों का

उद्धार और लाभ हुआ है, और होता रहेगा ? उनकी यह कीर्ति सदा सर्वदा के लिए अमर हो गयी ।

गंगोत्री के लगभग १३ मील आगे गोमुख है । वह गंगा का उद्गम स्थान है । गोमुख का मार्ग बड़ा ही दुस्तर है अस्तु उधर बहुत कम लोग जाने का साहस करते हैं । गोमुख जाने की हम लोगों की इच्छा न थी अतः उसकी हिमस्त करने का कोई प्रश्न ही न था, परन्तु गोमुख मार्ग पर दो मील आगे एक गुफा तक यात्रा हो गई । उस गुफा में एक फलाहारी बाबा रहते थे, अवस्था अधिक थी, हाथ में माला लेकर अधिकांश “जय जगदीश, जय जगदीश” का जप किया करते थे । उनकी मुखाकृति अत्यन्त तेजस्वी और प्रभावशाली थी । उनके स्थान पर पहुंचने वाले प्रत्येक व्यक्ति को वे प्रसाद देते थे । उनका नियम ठीक सांयकाल को एक बार भोजन पाने का था । वे अन्न नहीं ग्रहण करते थे । हम लोग उनके दर्शन प्राप्त कर बड़े प्रभावित व प्रसन्न हुये ।

उत्तरकाशी के स्वामी प्रज्ञानाथ उस समय गंगोत्री में आये थे । एक गुजराती पुरुष बम्बई से उनके सतसंग के लिए आये थे । मेरा व उनका परिचय उत्तर काशी में बहुत अच्छा हो गया था । गंगोत्री में उनसे भेंट हो गयी और बहुत बात चीत हुई ।

गंगोत्री के स्वामी कृष्णाश्रम जी को किस प्रकार विस्मरित किया जा सकता है । वर्षों से वे गंगोत्री में रहते हैं । पहिले वे दण्डी सन्यासी के रूप में रहते थे परन्तु बाद में उन्होंने वस्त्र और दण्ड का परित्याग कर दिया था । गंगोत्री के भीषण शीत में उन्होंने नगनावस्था में न जाने कितने जाड़े अभी तक व्यतीत किये होंगे !

गंगोत्री के यात्री यदि उनका दर्शन किये बिना वापस जाँय तो उनकी इस यात्रा की एक महत्वपूर्ण बात रह जायगी ! मैंने तो उनके दर्शन उत्तर काशी में किये थे परन्तु माता जी व चम्पक भाई को

अभी तक वह सौभाग्य न प्राप्त हुआ था अतः हम लोगों ने गंगा पार जाकर उनके दर्शन किये, वे कुटिया के बाहर पद्मासन लगाये शान्ति पूर्वक बैठे थे। हम लोगों को देखकर उन्होंने प्रसन्नता व्यक्त की। वे कोई वैदिक काल के महान तपस्वी ज्ञात होते थे। गंगोत्री के पास के गाँव की कोई स्त्री उनकी सेवा में रहती थी। वह विवाहिता थी परन्तु गृह कलह के कारण संस्कार वश उनके पास पहुँची और तब से अभी तक उनकी सेवा में रहती है। उसने भगवा वस्त्र धारण कर लिया। उस प्रदेश के साधुसमाज ने इस बात पर बड़ी आपत्ति प्रगट की और इस प्रश्न ने भारी विरोध का रूप धारण कर लिया। अनेकों साधु कृष्णाश्रम जी को तपोभ्रष्ट मानकर उनकी निन्दा करने लगे, परन्तु मेरे ध्यान में साधुसमाज की बात न आयी। शरण में आई हुई किसी अवला को यदि किसी महात्मा ने अपने आश्रम में स्थान दे दिया और यदि स्त्री अपनी सेवा द्वारा कृपा पाने को अभिलाषा करे तो इसमें साधु या महात्मा तपोभ्रष्ट किस प्रकार हो गया? यह बात मेरी समझ में न आती थी। हाँ, वह शरीर सुख या काम वासना में पड़ जाय तो दूसरी बात है। इस बात को पुष्टि करने का कोई प्रमाण किसी के पास नहीं था। अस्तु अपने बुद्धि बल से वितण्डावाद उत्पन्न करके किसी पर व्यर्थ कीचड़ उछालने में क्या प्रयोजन?, हम लोग उनके पास थोड़ी देर बैठकर फिर अपने स्थान पर वापस आगये। गंगोत्री की पवित्र भूमि में मुझे दूसरी बार पूर्वजन्म के ज्ञान का अनुभव हुआ था। इसका प्रसंग आगे आयेगा।

[२]

गंगोत्री से केदारनाथ, पैदल मार्ग में, पवाली की चढ़ाई पड़ती है। यहाँ पर यात्री को इस चढ़ाई में सबसे कठिन परीक्षा होती है परन्तु मार्ग में दृश्य अत्यन्त रमणीक रहता है। ऊँचे-ऊँचे पर्वत शिखर और वन की हरीतिमा नेत्र एवं अन्तस्थल को सुखद प्रतीत होते हैं

अतः यात्री की सारी कठिनाई नगण्य हो जाती है और यात्रा की थकान का भान नहीं होता । इस रास्ते से त्रियुगी नारायण होकर गौरी कुण्ड से केदारनाथ जाया जाता है इसके प्रथम बूढ़ा केदार के भी दर्शन हो जाते हैं ।

केदारनाथ में भगवान शंकर का मन्दिर है । चारों ओर से हिमाच्छादित पर्वत शृंखलायें स्थान की शोभा बढ़ाती हैं । केदारनाथ की बस्ती छोटी है । यह स्थान भूतल से १२००० फीट ऊँचा है । अतः असह्य शीत का होना स्वाभाविक है । पास में कलरव करती मन्दाकिनी, का पुनीत स्नान शीत की बाहुल्यता के कारण परम तप के तुल्य प्रतीत होता है । अनेक यात्री गंगा के किनारे पर कण्डे लगाकर अग्नि प्रज्ज्वलित कर लेते हैं और स्नान अथवा पंचस्नान मार्जन आदि तुरन्त समाप्त कर गीले वस्त्रों में तापने लग जाते हैं । अनेकों नहाते-नहाते संज्ञा शून्य हो जाते हैं फिर भी स्नान की महिमा जानने वाले प्रवासी स्त्री पुरुष स्नान अवश्य करते हैं, उनका विश्वास और उनकी श्रद्धा उनको आवश्यक शक्ति प्रदान करती है ।

केदारनाथ का लिंग बड़ा भव्य है । उसकी अर्चना वंदना करके यात्री सन्तोष पाता है । मन्दिर के भीतर सब लोग जाकर पूजा कर सकते हैं, कोई प्रतिबन्ध नहीं है । हम लोगों ने भी आवश्यक पूजन सामग्री एकत्रित कर विधिवत पूजा समाप्त किया । भगवान को पूजा या सेवा की कोई आवश्यकता नहीं वह तो मनुष्य के मंगल के लिए हैं । इससे हृदय निर्मल होता है और प्रेम उमड़ने लगता है, उससे फिर परमात्मा की प्रसन्नता के लिए आतुरता उत्पन्न होती है । प्रभु की कृपा प्राप्त करने के लिए वह आधार बनता है । उस प्रेम भक्ति की दिव्य दशा को प्राप्त करने के लिए ही पूजा अर्चना की प्रारम्भिक साधना है । उसका सहारा लेकर साधक को प्रेम के पुनीत पथ पर आगे बढ़ना है । केदारनाथ में एक रात्रि निवास कर हम लोगों ने बद्रीनाथ की यात्रा

प्रारम्भ करदी। बदरीनाथ के मार्ग में गुप्तकाशी और जोशीमठ पड़ता है। जोशीमठ में शंकराचार्य का मठ है। उसका दर्शन कर हम लोग आगे बढ़े मार्ग में वितरित विस्तृत प्राकृतिक सौन्दर्य का रसास्वाद करते-करते वह पुनीत प्रातःकाल आया जिस दिन हम उत्तराखण्ड के प्रसिद्ध तीर्थ “श्री बदरीनाथ धाम” में पहुँच गए।

“बदरी विशाल की जय” और “गंगामाई की जय” की ध्वनि से पूरित श्री बदरीनाथ धाम में हम लोगों ने प्रवेश किया।

• • •

बदरीनाथ में

अनेकों मील पैदल यात्रा समाप्त कर अन्त में हम लोग बदरीनाथ पहुंच गये। भारत के चार बड़े धामों में बदरीनाथ धाम सुविख्यात है। यहाँ का बाजार तथा शहर पर्वतीय प्रदेश के प्रमाण में बड़ा है। नर और नारायण पर्वतों के मध्य में निवसित बदरीनाथ का नगर बड़ा सुन्दर दिखाई देता है। शहर के एक ओर अलकनन्दा गंगा और दूसरी ओर हिमाच्छादित पर्वत शृंखलाओं से प्रकट हुई ऋषि गंगा प्रवाहित दिखाई देती है। दोनों वहने अपने पूर्वजों के स्थान हिमालय को त्याग कर सुदूर की यात्रा के आरम्भ के पूर्व, पारस्परिक प्रेम का प्राकट्य कर, एक दूसरे के प्रेमपाश में बँध जाती हैं उस स्थान का दृश्य अत्यन्त हृदय स्पर्शी प्रतीत होता है।

नदी के बर्फीले जल में स्नान करने का साहस संभवतः किसी-किसी को भाग्य से होता होगा। परन्तु प्रकृति ने वहाँ भी अपनी शक्ति का चमत्कार प्रगट किया है अलकनन्दा के तट पर गरम पानी के सुन्दर कुण्ड हैं जिनमें स्नान करने से बड़ी स्फूर्ति आती है।

बदरीनाथ का मन्दिर बहुत छोटा है। मन्दिर में नारायण भगवान की मूर्ति है। एक सौ रुपये देने से दाता की ओर से भगवान की पूजा की जाती है और उसे पूजा देखने की अनुमति भी मिल जाती है। पैसा

देने वाले को भगवान के भोग का प्रसाद मिलता है। भोग भी कई प्रकार का होता है अधिक पैसा देने वाले को उत्तम श्रेणी का प्रसाद मिलता है। सरकारी कर्मचारी जो मन्दिर की देख रेख के लिये नियुक्त हैं अथवा प्रबंधक हैं, उनके पास आवेदन पत्र देना होता है।

श्री बदरीनाथ जैसे पवित्र धाम में ऐसी व्यवस्था नितान्त अशोभनीय है। धन को विशेष महत्व देकर भोग प्रसाद को बेचने की एवं धन के बदले में पूजा करने का अधिकार पाने की प्रथा का शीघ्रातिशीघ्र अन्त हो जाना चाहिये। केवल बदरीनाथ में ही नहीं जहां-जहां यह प्रणाली हमारी सरकार द्वारा लगाई गई है उन सभी जगहों से इस पद्धति को दूर करना चाहिये। धन का महत्व जो व्यावहारिक जगत में मनुष्य का मूल्याङ्कन करता है उसे ईश्वर के दरबार में भी लागू कर अमीर गरीब के बीच में भेद भाव की जागृति करना ठीक नहीं। यह नितान्त अनुचित है कि कोई व्यक्ति धनी होने के कारण भगवान का भोग और पूजा का अधिकार पा जाय और उसी स्थान पर सच्चे हृदय वाला भगवान का धनहीन प्रेमी निराश रह जाय। अब तो मन्दिर की व्यवस्था सरकार के नियंत्रण में होती है और कितने ही उच्च अधिकारी इस सुविख्यात धाम के लिए आते हैं। प्रतिष्ठित पुरुषों के लिए केसरिया भात और खीर का प्रसाद मन्दिर की ओर से भेजा जाता है, फिर भी किसी का ध्यान अब तक इस आवश्यक सुधार की तरफ नहीं गया यदि गया भी हो, तो किसी ने उसे अमल में लाने का प्रयास नहीं किया। बड़े खेद की बात है। मन्दिर में भोग बेचने की, अटका के लिए धनराशि लिखवाने की, और पैसा देकर पूजा का विशेषाधिकार पाने की प्रथा का शीघ्रातिशीघ्र अन्त हो जाना चाहिये।

बदरीनाथ के दर्शन पाकर परमानन्द हुआ। उस दिव्य धाम में

नर नारायण, महर्षि व्यास, देवर्षि नारद और पाण्डवों के महाप्रस्थान की स्मृति जाग्रत हो गई ।

यात्रा में हम लोगों के साथ अलवर के एक वयोवृद्ध सज्जन भी थे, वे भी दर्शन पाकर बड़े प्रसन्न हुये । उन्होंने घी खाना १५ वर्ष से त्याग दिया था कारण यह था कि कुटुम्ब में किसी ने उन पर घी खाने के लिए व्यंग प्रहार किया, उसी समय से उन्होंने घी को तिलाञ्जलि दे दिया था यदि कोई शुभ कार्य या विवाहादि मंगलोत्सव का अवसर आ जाता तो उनके निमित्त तेल में ही व्यञ्जन बनते थे । केदारनाथ में मैंने प्रेम पूर्वक आग्रह कर उनकी घी की साधना समाप्त कर दी । उससे उन्हें शान्ति मिली । सजल नयन होकर वे बोले, “मेरी बहन को अब बड़ा आनन्द होगा । जब से मैंने घी खाना छोड़ दिया था वह बेचारी बड़ी दुखी थी । अब उसे बड़ा सुख होगा । आपका उपकार मैं कभी न भूलूँगा ।”

[२]

बदरीनाथ में हम लोग लगभग तीन दिन ठहरे इसी समय के अन्तरगत हम लोगों ने महात्मा बच्चीदास जी से भेंट की । बच्चीदास जी अलकनन्दा और ऋषि गंगा के संगम के पास एक झोपड़ी में रहते थे । यह कुटिया बहुत छोटी थी । वे पहले देवप्रयाग में रहते थे और अभ्यागत संत महात्माओं का सत्कार करते थे । उनके सौभाग्य से देवप्रयाग में एक बार एक बंगाली महात्मा आ गये । वे उच्चकोटि के सच्चे संत थे । उन्होंने बच्चीदास जी को कोई साधना की विधि बताई । एक आध महीना चाय पर रखा और बदरीनाथ जाकर तप करने का आदेश दिया । तदनुसार बच्चीदास जी ने बदरीनाथ का दर्शन किया । तब से वे बराबर वहीं पर रहने लगे । उन्होंने कहा कि वे साधना के क्षेत्र में बहुत ऊँचे उठ गये थे । बदरीनाथ के भीषण

शीत में वरसों तक साधना करना कोई कम संयम की बात नहीं है, उसमें बहुत सहन शक्ति की आवश्यकता होती है। उनके प्रति हम लोगों का आदर उत्पन्न हुआ।

वदरीनाथ में, एक सिद्ध बाबासुन्दर नाथ जी हो गये हैं। वे वर्षों तक वदरीनाथ में नगनावस्था में रहे। मन्दिर के सामने अलकनन्दा के किनारे एक बड़े पत्थर पर दिन रात सर्दी-गर्मी सभी ऋतु में बैठे रहते थे। अकस्मात् एक दिन वे अदृश्य हो गये थे उसके उपरान्त वर्षों तक वदरीनाथ में रहने वाले तपस्वी पुरुषों में बच्चीदास ही मुख्य थे। और दो अन्य महात्मा वदरीनाथ के आगे वसुधारा की गुफाओं में वर्षों से रहते थे।

हम लोग बच्चीदास के पास प्रायः आध घन्टा बैठे रहे परन्तु कोई बातचीत न हुई। वे मौन रहे। उनकी प्रशान्त मुख मुद्रा से यह आभासित होता था कि उन्होंने साधना में अच्छे अनुभव प्राप्त किये होंगे। इससे अधिक और क्या कहा जा सकता है। अधिक सम्पर्क न होने के कारण कोई विशेष अनुभव बिना किसी महापुरुष के सम्बन्ध में कोई अभिप्राय देने का साहस करना अनुचित है।

देवप्रयाग के एक सज्जन से उनके सम्बन्ध में एक बड़ी विचित्र घटना सुनी थी। उस पुरुष का कहना था कि बच्चीदास जी ने स्वयं अपने श्रीमुख से सारी घटना का हाल बताया था। उस घटना का उल्लेख करना आवश्यक है।

एक बार बच्चीदास जी वदरीनाथ से और ऊपर सत्य पथ की ओर लक्ष्मीवन नामक एक स्थान में रहने गये थे। वहाँ वे एक गुफा में रहते थे। लक्ष्मीवन में भोज पत्र के असंख्य वृक्ष थे। बर्फ भी बहुत थी। प्राकृतिक सौन्दर्य का कोई अन्त न था। बच्चीदास जी का उस स्थान में साधना करने का विचार था। परन्तु ईश्वर की इच्छा भिन्न थी।

रात्रि होते ही उनके पास दो तीन पुरुष आये। वे बड़े तेजस्वी थे, ऐसा कुछ आभास होता था कि उनके पंख हैं। उन्होंने बच्चीदास जी से पूछा—“यहाँ क्यों बैठे हो?”

बच्चीदास जी ने उत्तर दिया “साधना करने के लिए।”

वे कहने लगे “यह स्थान साधना या तप का नहीं है। आपकी सीमा वहीं समाप्त हो जाती है यह तो हम लोगों का कि पुरुषखण्ड है। यह यक्ष और गंधर्वों की क्रीड़ाभूमि है।”

बच्चीदास जी भला ऐसी बात कब मानने वाले थे। वे तर्क करने लगे और उन लोगों की बात को अविश्वसनीय बताया।

उन मनुष्यों ने कहा—“कल यहाँ से अवश्य चले जाइयेगा नहीं तो हम लोगों को बल प्रयोग करना पड़ेगा।” इतना कह कर वे चले गये।

बच्चीदास जी उनकी बातों की अवहेलना कर वहीं रहे। दूसरी रात को वे लोग फिर आये बच्चीदास को वहीं पर देखकर एक ने उनको पकड़ कर फूल की तरह ऊपर उठा लिया और आकाश में उड़ने लगा। चन्द मिनटों में उसने बच्चीदास जी को उनकी बदरीनाथ वाली कुटिया में रख दिया और सूचित किया, “अब फिर उधर मत जाना नहीं तो इससे अधिक भयंकर परिणाम होगा।”

इस घटना के उपरान्त बच्चीदास जी ने लक्ष्मीवन जाने का विचार छोड़ दिया। परन्तु इस घटनाचक्र से यक्ष और गन्धर्वों के अस्तित्व का प्रश्न उठ खड़ा होता है। पुराणों में यक्ष और गन्धर्वों का वर्णन आता है। अतः उनके अस्तित्व की बात निराधार नहीं है। यह घटना उस बात की साक्षी है। यह सृष्टि केवल मानव समाज के लिए नहीं है। इसमें विभिन्न यौनि के प्राणियों का समावेश है, इतनी बात तो बुद्धि के अन्तरगत आ सकती है।

बदरीनाथ के धाम में

बदरीनाथ के मन्दिर के पवित्र वातावरण का प्रभाव मन पर बहुत अच्छा पड़ता है। ऐसा लगता है कि हिमाच्छादित गगनचुम्बी पर्वत शिखरों को देखा ही करें यदि किसी निर्मल रात्रि को चन्द्र की चारु किरणें पर्वत, गंगा और मैदान में चारों ओर विकसित होकर शोभित हों, तो यह आभासित होने लगता है कि आकाश से अमृत की वर्षा हो रही है। मन इस प्रकार के अलौकिक वातावरण में सरलतापूर्वक स्थिर हो जाता है, शान्ति प्राप्त करता है और ईश्वरोन्मुख होने लगता है। शास्त्रों और महापुरुषों ने ऐसे एकान्त, शान्त और सुन्दर वातावरण में रहकर साधना करने का जो संकेत किया है, उसका मर्म उस समय सरलता पूर्वक आ सकता है। संसार की नश्वरता और परिवर्तन-शीलता के चित्र हम लोगों के सामने खड़े रहते हैं। यह विचार करना है कि जीवन परमात्मा की प्राप्ति के लिए है। उसका सदुपयोग कर शीघ्रातिशीघ्र भगवत् प्राप्ति कर लेनी चाहिये। असत्य से सत्य, अन्धकार से ज्ञान, अल्पता से पूर्णता और मृत्यु से अमरत्व में पहुँच जाना चाहिये। विषयों के रस को त्याग कर प्रभुरस का स्वाद लेना चाहिये। उस दिव्य वातावरण में पुराना जीवन याद आता है और नये की रूपरेखा तैयार करनेका मन होता है। हृदय प्रभु की प्रेम गंगा में स्नान कर प्रार्थना की वह प्रख्यात पंक्तियाँ पुकार उठता है :—

असत्यो मांहे थी प्रभु, परम सत्ये नुँ लई जा ।

उड़ा अँधारे थी प्रभु, परम तेजे नुँ लई जा ॥

महा मृत्यु मां थी, अमृत समीपे नाथ लई जा ।

तुँहीनो छुँ छुँ तो, तुज दरशन ना दान दई जा ॥

सामान्य मनुष्यों के हृदय में इस प्रकार के भाव नहीं उठते, यह विचार उचित नहीं है । तीर्थ स्थान अथवा कथा कीर्तन के वातावरण के कारण या कोई संत महात्मा के प्रभाव से ऐसे पवित्र भाव प्रगट होते हैं । परन्तु दुख यह है कि आकाश में चमक कर अदृश्य हो जाने वाली चञ्चल चपला की तरह वह क्षणभंगुर हो जाते हैं । वे अधिक समय नहीं रहते हैं । प्रतिकूल परिस्थिति आते ही वे समाप्त हो जाते हैं । जिस प्रकार श्मशान में जाने से किसी को चिता पर जलते देखकर मनुष्य को वैराग्य का भाव उत्पन्न होता है परन्तु थोड़ी ही देर में वह समाप्त हो जाता है, वैसे इसे भी समझना चाहिए । अतएव उन विचारों का मूल्याङ्कन कम करना ठीक नहीं । श्मशान, देव मन्दिर, कीर्तन तथा सत्संग का लाभ मिलने पर भी मनुष्य इतना संज्ञाहीन और जड़ हो गया है कि कभी-कभी तो उसके ऊपर कोई असर ही नहीं पड़ता, उसमें लगन या सुधारने की वृत्ति की जागृति ही नहीं होती । इसमें सदेह नहीं कि वे अधिक भाग्यशाली हो सकते हैं परन्तु उन्हें अपने भाग्य को अधिक चमकाना चाहिये । अतएव क्षण भर के लिए प्रगट होकर अदृश्य हो जाने वाले उस पवित्र भाव को अधिक समय तक और अंत में स्थायी बनाने की क्रिया सीखना चाहिये । भली बुरी, अनुकूल, प्रतिकूल प्रत्येक परिस्थिति में वह स्थिर रहे ऐसी कला हस्तगत करनी चाहिए । सुचारु जागृति और सतत् साधना द्वारा ऐसा सम्भव है । जीवन का सच्चा आनन्द तभी प्राप्त होता है । इस प्रकार पुरुष स्वयं तीर्थमय बन जाता है । वह जहाँ कहीं जाता है और रहता है वहीं तीर्थ का वातावरण उत्पन्न कर देता है, उसके उत्तम विचार, भाव और संस्कार की त्रिवेणी, गंगा यमुना और सरस्वती; उसके समा-

गम रूपी संगम में स्नान करने वाले सब मनुष्यों को पावन करती है ।

बदरीनाथ के शान्तिमय वातावरण में विवेकी पुरुषों को पर्याप्त प्रमाण में प्रेरणा का बल मिलता रहता है परन्तु वहाँ अधिक समय तक रहने की व्यवस्था नहीं है । शीत और अनुकूल खान-पान तथा रहने की सुविधा न मिलने के कारण यात्री एक, दो, या अधिक से अधिक, तीन दिन तक रह कर वापस चले आते हैं ।

[२]

बदरीनाथ में चरण पादुका नामक एक सुन्दर स्थान है उसका दर्शन पाकर हम लोग बड़े प्रसन्न हुये । पर्वत की ऊँचाई पर उस स्थान के चारों ओर थोड़ा मैदान है उसमें पानी के छोटे-छोटे झरने और सुन्दर रंग-विरंगी पर्वतीय पुष्पों का बड़ा सुहावना दृश्य है । आगे जाकर पर्वत में एक छोटी गुफा आती है ।

बदरीनाथ में उस समय श्री प्रभुदत्त ब्रह्मचारी भी रहते थे । मन्दिर के पास वाले मकान में वे ठहरे थे । उनके दर्शन का लाभ सरलता से मिल गया । उनकी लिखित श्री चैतन्य चरितावली नाम की पुस्तक का गुजराती अनुवाद मैंने पढ़ा था । तब से उनकी विद्वता और चैतन्य-प्रीति के लिए मेरे हृदय में उनके प्रति सम्मान उत्पन्न हुआ था । हरिद्वार में उनसे सम्पर्क होने के उपरान्त हम लोगों का पारस्परिक स्नेह बढ़ गया था । बदरीनाथ में इनसे मेंट हो जाने पर बड़ी प्रसन्नता हुई । संतों का समागम सदा सुखकर होता है, यदि वे सर्वदा मिलते रहें तो भी तृप्ति नहीं होती । उनका आकर्षण कम नहीं होता है । मेरे साथ माता जी को देखकर उनको बड़ा आनन्द हुआ । अपनी प्रसन्नता को व्यक्त करते हुये वे बार-बार वही प्रसिद्ध श्लोक “कुलं पवित्रं जननी कृतार्थम्” कहने लगे । सच्चे संतों का स्वभाव सरल और उदार होता है दूसरों के राई के समान गुणों को वे पर्वत तुल्य मानते हैं । वे हंस के समान गुण-ग्राही होते हैं । दूसरों को बड़ाई देने में और जिसमें कोई शुभ दिखाई

दे, उनकी महत्ता गाने में वे सदा तैयार रहते हैं। स्वयं मान के अधिकारी होते हुये भी, निरभिमान, भाव और नम्रता की मूर्ति होने से, वे दूसरों को सम्मान का अधिकारी मानते हैं। उनके विचार, उनकी वाणी और व्यवहार मंगलमय होता है। ऐसे संत संसार के लिए शोभा-स्पद और आशीर्वाद रूप हैं। उनके दर्शन सर्वदा प्रेरणाप्रद और उत्सव रूप होते हैं। प्रभुदत्त जी इसी कोटि के संत हैं अतएव वे मुझे सम्मान का अधिकारी माने और मेरी प्रशंसा करें। इसमें कोई आश्चर्य न था। संसार त्रिगुणात्मक प्रकृति से उत्पन्न हुआ है, अतः उसमें दोनों तत्त्व शुभ और अशुभ विद्यमान हैं। हो सकता है कोई संत महापुरुष त्रिगुणातीत हो परन्तु सर्वसाधारण के लिए तो अशुभ की ओर बार बार संकेत कर किसी को तिरस्कार की दृष्टि से देखने की आवश्यकता नहीं है। बुद्धिमान पुरुष के हित में, यह बात उनको अपने तथा दूसरे के जीवन का कल्याण करने में बहुत काम आयेगी।

[३]

वदरीनाथ में जब तक हम लोग रहे, तब तक प्रति दिन सायंकाल हमलोगों को प्रभुदत्त जी की ओर से मन्दिर का प्रसाद मिलता रहा, प्रभुदत्त जी को भजन कीर्तन का बड़ा प्रेम था। उनकी इच्छा की पूर्ति के लिए रात को मैं उनको गुजराती भाषा के भजन सुनाता था। उनको भजनों के भाव समझने में कोई कठिनाई न होती थी।

उस समय उनके साथ एक वयोवृद्ध दूसरे महात्मा भी रहते थे। वे लाल वस्त्र पहनते थे और बहुत गम्भीर गति से चलते थे। उनकी आकृति हनूमान जैसी थी। उनको देखकर ऐसा आभासित होता था कि मानो भक्त शिरोमणि श्री हनूमान जी साक्षात् मूर्तिमान् हो गये हों। मुखाकृति में भी बहुत कुछ समानता थी। उनकी प्रणाम करने की रीति भी बड़ी विलक्षण थी। प्रणाम करते समय ऐसा ज्ञात होता था कि वे योग के विभिन्न आसनों का प्रदर्शन करते हों। प्रभुदत्त जी को

देखकर वे हाथ पैर और मुंह हिलाकर विविध अभिनय करते हुये प्रणाम करते थे, देखने वाले स्तब्ध रह जाते थे। इस प्रकार की दण्डवत् मैने अपने जीवन में कहीं भी न देखी थी। जब वे कमरे में प्रवेश करते थे तब प्रभुदत्त जी हनुमान जी की स्तुति के प्रसिद्ध श्लोक पढ़ने लगते थे। दोनों हाथ जोड़कर उनका सत्कार करते उस समय विद्वता और अनुराग का संग्राम होता हो, ऐसा जान पड़ता था।

प्रभुदत्त जी की स्तुति में स्वर मिलाने का सभी का मन होता था

“मनोजवं मास्तु तुल्यवेगं, जितेन्द्रियं बुद्धिमताम् वरिष्ठम् ।

वातात्मजं वानर यूथ मुख्यं, श्री रामदूतं शरणं प्रपद्ये ।

अतुलित बलधामम्, स्वर्णं शैलाभदेहम् ।

दनुजवन कृशानुम्, ज्ञानिनामग्रगण्यम् ॥

सकल गुण निधानं, वानराणामधीशम् ।

रघुपति वर दूतं, वातजातम् नमामि ॥

उस महात्मा के बैठने की रीति भी, हनुमान जी की, सी थी। वे एक पैर ऊंचा कर अर्ध वज्रासन में बैठते थे। वे मौन रहते थे, फिर भी प्रभुदत्त जी के पास प्रतिदिन प्रातःकाल आते थे। उनका दर्शन आनन्ददायक और मंगलकारी था इसमें सन्देह नहीं। दोनों महात्माओं के मिलाप में जो अपूर्व नम्रता और प्रेम का दिग्दर्शन होता था, उससे दोनों की महानता का परिचय प्राप्त होता था। दूसरे के नमस्कार और सत्कार की अवहेलना कर प्रसन्न होने वाले व्यक्तियों को इसकी महत्ता का ज्ञान कैसे हो सकता है उन दोनों महापुरुषों के पारस्परिक प्रेम पूर्ण व्यवहार से बहुत कुछ उपयोगी शिक्षा मिलती है।

बदरीनाथ की यात्रा, इस प्रकार यादगार बन गयी। फिर एक दिन हम लोगों ने उस पुण्य धाम से विदा माँगी। मेरा विचार उस भूमि में और अधिक रहने का था परन्तु उस समय उसे स्थगित कर देना पड़ा।

माताजी की बीमारी और राम का दर्शन

हम लोगों को बदरीनाथ से देवप्रयाग होकर सीधे ऋषिकेश जाना था। हिमालय के चारों धाम की यात्रा प्रभु की कृपा से पूरी हो गई थी। लगभग पिछले दो मास से हम लोग बराबर चलते ही रहे और ध्येय सिद्ध हो जाने के उपरान्त हमारी अधिक चलने की इच्छा न थी।

कर्णप्रयाग से रानीखेत जाने का एक दूसरा मार्ग था। हमारे कुली को उधर जाने की इच्छा थी, कारण कि उसका गांव उस रास्ते के पास था, परन्तु मुझे देवप्रयाग जाना था। अतः रानीखेत जाने का विचार छोड़ दिया गया। उन दिनों आज की तरह मोटर बस की व्यवस्था न थी, हम लोग पैदल चलकर देवप्रयाग पहुंचे, वहाँ से चम्पक भाई कुली लेकर पगडंडी के रास्ते ऋषिकेश चल दिये। “सात आठ दिन के बाद माता के साथ मोटर के रास्ते से मैं भी उधर पहुँचूँगा”—यह कह कर उनको विदा किया।

चार धाम की यात्रा हम लोगों ने बहुत कठिन संयोगों में की थी। मेरी आर्थिक स्थिति अच्छी न थी। चम्पक भाई अपने मित्रों द्वारा प्राप्त धनराशि से जीवन यापन करते थे। माता जी चारधाम की यात्रा का

संकल्प न होने से थोड़ी पूंजी लेकर चलीं थी तो भी प्रभु की कृपा से कोई कष्ट न हुआ। कभी-कभी चम्पक भाई को, अवश्य चिन्ता हो जाती थी परन्तु थोड़ी ही देर के बाद प्रभु कृपा से उसका निवारण भी हो जाता था, इस प्रकार सम्पूर्ण यात्रा सुख पूर्वक समाप्त हुई। अन्त में एक दिन हम लोग ऋषिकेश की पुण्य भूमि में जा पहुँचे।

[२]

माता जी का स्वास्थ्य बिगड़ने का कारण मुख्यतः हिमालय की कष्टमय लम्बी पैदल यात्रा थी। वैसे तो अनेक लोग यात्रा करते हैं, अधिकांश कोई व्यतिक्रम नहीं होता है। परन्तु यात्रा में सावधानी से चलना चाहिये यदि आवश्यक नियमों का पालन करने में सावधानी रखी जाय तो स्वास्थ्य बिगड़ने की सम्भावना बहुत कम हो जाती है। यात्रा काल में बहुत लोग पेट भर भोजन करते हैं, अधिकांश एक बार ही भोजन की व्यवस्था हो पाती है अतः फिर उसमें कमी नहीं रखते। दूसरी बात यह है कि शीघ्रता के कारण अधिक परिश्रम करते हैं और इधर उधर झरनों का जल पीते हैं। वस्त्र के अभाव में बहुतों को ठण्डक लग जाती है, और पेट में मरोड़ होने लगती है। हिमालय की यात्रा में अनेकों झरने मार्ग में मिलते हैं। सब का जल स्वच्छ नहीं होता। कितने झरने तो बहुत दूर से आते हैं उनके जल में अनेकों वनस्पतिओं का असर आ जाता है। जो झरना पहाड़ से निकलता दिखाई दे और जिसमें स्वच्छ जल हो उसे छान कर पीना चाहिये। अधिक चलना भी हानिकारक होता है। बासी भोजन करना अत्यन्त हानिकारक है। पेट को पूरा कभी भरना ही न चाहिये, पहाड़ में तो विशेष सावधान रहने की आवश्यकता है। स्वास्थ्य बिगड़ने की शंका होते ही उस पर पूरा ध्यान देना चाहिये। इस प्रकार की बातों को ध्यान में रखने से स्वास्थ्य ठीक रहता है। माताजी का स्वास्थ्य पहिले से ही ठीक न था। पर्वतीय प्रदेश का पैदल प्रवास उनके लिए पहिला था अस्तु उनका स्वास्थ्य बिगड़ गया।

माताजी को किसी प्रकार आराम न होता था । हम लोगों के पास पर्याप्त धन भी न था । गुजरात जाने की इच्छा थी । माता जी की तबियत संभलते ही जाने का विचार था । देहरादून में चम्पक भाई भी बहुत बीमार थे । एक दिन तो माता जी की दशा अधिक बिगड़ गयी । मैं बराबर हिम्मत देता था, परन्तु उनकी तबियत सुधरती न थी और उनकी निराशा बढ़ती जाती थी । एक रात को उन्होंने घी का दीपक दान कराया, उन्हें ऐसा प्रतीत हुआ कि अब कदाचित् प्रयाण निकट है ।

प्रभु बड़े दयालु हैं । उसी रात को उनको कृपा की वर्षा हुई । जो उनकी प्रार्थना करते हैं, उनको पुकारते हैं, उसकी सहायता करने को वे सदैव तत्पर रहते हैं—भक्तों की सब प्रकार की रक्षा करने की उनकी प्रतिज्ञा है । हम लोगों में सच्ची और सम्पूर्ण भक्ति न थी, परन्तु हम लोगों ने उनकी शरण गही थी । और दूसरा आधार ही क्या था ? उनकी कृपा बिना इस कठिन परिस्थिति से बाहर निकलना असम्भव था । सौभाग्य से उनकी कृपा हुई ।

माता जी कमरे के बाहर दालान में सोई थीं । मध्य रात्रि के समय अर्धजागृति अवस्था में उनको एक अलौकिक अनुभव हुआ । उनकी खाट के पायताने की ओर से एक तेजोमय स्वरूप बाहर निकलने लगा उसका केवल मुख था, धड़ दिखाई न देता था । माथे पर सुन्दर मुकुट था । वह स्वरूप आगे बढ़कर माताजी के छाती के ऊपर आ गया । उनका तेज माता जी से सहन न होता था । अतः दोनों हाथ जोड़कर वे बोलीं, “ हे प्रभु, आपको मैं प्रणाम करती हूँ । ” उन्होंने देखा कि वह स्वरूप भगवान् श्री राम का था, उनकी ही कृपा के कारण ऐसा अलौकिक अनुभव प्राप्त हुआ था । दो तीन मिनट तक हरकर वह अनुभव बन्द हो गया और वह स्वरूप भी अदृश्य हो गया ।

माता जी के लिए वह अनुभव आशीर्वाद रूप हो गया। प्रभु ने इस प्रकार उन पर विशेष कृपा की। दूसरे दिन से उनकी तबियत में यकायक सुधार होने लगा। पूरी तरह से तो वे गुजरात पहुंचने पर बड़ौदा की दवा कराने के उपरान्त ठीक हुई परन्तु उधर चारपाई छूट गई। कुछ दिन उधर आराम करने के उपरान्त ऋषिकेश जाने का निश्चय किया। प्रभुदत्त जी बदरीनाथ की यात्रा समाप्त कर उन दिनों ऋषिकेश पहुंच गये थे, उनके दर्शन का लाभ एक बार फिर से प्राप्त हुआ।

[४]

ऋषिकेश से बाहर निकलने के लिए हम लोगों के पास पर्याप्त धन न था। बड़ौदा से थोड़ी रकम मंगाई थी परन्तु प्रभु की कृपा से एक सहायता अकस्मात् मिल गई। अहमदाबाद के एक व्यक्ति ने अचानक ५०) रु० का मनीआर्डर मुझे भेजा। उसे स्वीकार करना या नहीं यह विचारने लगा। भेजने वाले से परिचय न था फिर भी ईश्वर की इच्छा मानकर उसे स्वीकार कर लिया। ईश्वर की लीला बड़ी विचित्र है। वे कब कहाँ किस प्रकार सहायता करते हैं कोई नहीं कह सकता। आज तक ईश्वर ने इसी प्रकार मुझे सहायता की है और दयालु माता की तरह मेरी रक्षा की है ऐसे परम प्रेममय कृपालु ईश्वर को किस प्रकार भूला जा सकता है? भूलने का विचार भी किस प्रकार किया जा सकता है? कौन ऐसा कृतघ्नी हो सकता है?

शान्ताश्रम का पुनः मिलाप

बड़ौदा में रहकर शान्ताश्रम जी अथवा “मगर स्वामी” का स्मरण न हो यह कैसे सम्भव हो सकता है ? ऋषिकेश की धर्मशाला छोड़ने के बाद उनको पत्र लिखना बन्द कर दिया था । उनको मेरा धर्मशाला छोड़ना पसन्द न था फिर भी मुझे उनपर स्नेह व आदर था । किसी विषय पर कोई दो या अधिक मनुष्यों में मतभेद होना सम्भव है, परन्तु इससे उनके प्रेम व्यवहार में किस लिए विकार उत्पन्न होगा ? स्वामी जी के प्रति मेरा प्रेम पूर्ववत् कायम था । परन्तु साधन की उत्कटता के दिनों में मैंने सभी परिचित व्यक्तियों से पत्र व्यवहार बन्द कर दिया था अतः स्वामी जी को भी कोई पत्र न लिखा था । अब बड़ौदा में मैं उनके पास ही था । एक दिन उनसे मिलने की इच्छा से प्रेरित होकर रणमुक्तेश्वर की ओर मैंने प्रस्थान किया ।

रणमुक्तेश्वर महादेव के मजले पर मैंने प्रवेश किया । स्वामी जी अपनी पूर्व पद्धति के अनुसार आसन पर बैठे थे । शरीर पर उन्होंने एक कटि वस्त्र पहना था उनकी मुखाकृति बड़ी तेजस्वी थी, उन्होंने नख बढ़ा रखे थे । उनको प्रणाम कर मैं उनके पास बैठ गया । मुझे देखकर वे पहले मुस्कराये फिर कुछ गंभीर हो गये और रोष भरे शब्दों में पूछा, “आपका आश्रम कौन सा है?” इस प्रश्न के पूछने का कारण मैं कुछ

नहीं समझा। संभवतः उन्होंने मेरी अवस्था २५ वर्ष से कम आंकी, और मैंने अभी विवाहित जीवन में प्रवेश नहीं किया है इस विचार से वैसा प्रश्न किया होगा, अथवा कोई दूसरा रहस्य होगा। कौन जाने यह भी सम्भव है कि मेरा वेश उनको विचित्र लगा हो और उनको पसन्द न हो। मैंने पञ्च केश रखे थे, कमर के नीचे घुटने तक खादी का एक टुकड़ा लपेटा था। एक दूसरा मोटा कपड़ा ओढ़ा था। धोती के स्थान पर साधु जैसा वेप था। कदाचित् यही उनको अच्छा न लगा हो। मैंने वह वेप किसी की इच्छा की अनुकूलता से नहीं धारण किया था फिर। कोई इच्छा भी क्यों करे? हर एक को अपनी रुचि के अनुसार वेश परिधान की स्वतंत्रता है और होनी भी चाहिये! जो जैसा चाहे अपनी रुचि के अनुकूल पहने, ओढ़े और जिये। इसमें किसी को दुराग्रह न रखना चाहिये? स्वामी जी के प्रश्न का कारण मेरी समझ में न आया मैंने उन्हें शान्तिपूर्वक उत्तर दिया—

“आश्रम ? आश्रम तो ब्रह्मचर्य आश्रम ही है। यदि ज्ञान की दृष्टि से देखा जाय तो आत्मा को कोई आश्रम नहीं शंकराचार्य के शिष्य हस्तामलकाचार्य ने कहा है ‘मैं ब्रह्मचारी नहीं हूँ ग्रहस्थ वानप्रस्थ अथवा सन्यासी भी नहीं हूँ मैं तो आत्म स्वरूप हूँ स्वरूप के ज्ञान में प्रतिष्ठित हूँ।”

“न ब्रह्मचारी न गृही वनस्थो,
भिक्षुर्नचाहं निज बोध रूप।”

मेरा उत्तर उन्होंने सुना, उनको ठीक लगा या नहीं यह ईश्वर जाने, परन्तु इस विषय में अधिक बात न हुई।

“आपने किससे पूछ कर धर्मशाला छोड़ दिया?”—मेरी ओर दृष्टिपात कर उन्होंने दूसरा प्रश्न पूछा।

उसका उत्तर स्पष्ट था। उसके अनुसार मैं कहने लगा, “ईश्वर

की प्रेरणा से। ईश्वर की प्रेरणा को मान देकर मैंने धर्मशाला छोड़ दिया।”

मेरा उत्तर उनको अच्छा न लगा। वे कुछ चिढ़ गये और कहने लगे—“ ईश्वर की प्रेरणा ? ईश्वर की प्रेरणा तो मुझे भी नहीं हुई आपको कहाँ से प्राप्त हो गई। ”

वे हिन्दी में ही बोलते थे, उनकी गंभीरता का कारण अबकी बार मेरी समझ में आ गया। जब मुझे हिमालय जाने का विचार हुआ था तब वे मुझसे बार-बार कहते थे कि—

“मुझे ध्यान में ऐसी प्रेरणा मिला करती है कि मुझे कोई आश्रम मिलने का है।” यह बात मुझे याद आ गई तो भी और अधिक तूल न कर मैंने कहा—

“आपको प्रेरणा हुई थी अथवा नहीं मुझे कुछ ज्ञात नहीं, मैं केवल इतना कह सकता हूँ कि मुझे हुई थी। ”

उनको मेरा यह उत्तर भी रुचिकर न प्रतीत हुआ। उनकी मान्यता थी कि धर्मशाला में ही रहना मेरे लिए उचित था, परन्तु प्रभु ने जो मेरे लिए आयोजन बनाया था उसमें मुझे लाभ ही हुआ था। वास्तव में प्रभु की प्रेरणा मेरे लिए आशीर्वाद रूप हुई थी। उनकी इच्छानुसार यदि मैं धर्मशाला में रहा होता तो वे अवश्य प्रसन्न होते परन्तु मेरे लिए कोई दूसरा उपाय न था। प्रभु की इच्छा और प्रसन्नता मेरे मन में अधिक मूल्यवान थी अतः उसकी उपेक्षा करना मेरे लिए स्वप्न में भी सम्भव न था और स्वामी जी को अपनी इच्छानुसार मुझे कार्य करने का आग्रह किस लिए करना चाहिये ? मैं जानता हूँ कि उन्होंने मेरे हित के विचार से प्रेरित होकर मुझे धर्मशाला छोड़ने के लिए रोका होगा। उसका कारण पवित्र ही हो, इसमें शंका नहीं। परन्तु अपनी इच्छा को थोड़ी देर अलग रख कुछ सहानुभूति दिखाई होती, और मुझे स्नेह से

सुना होता तो बहुत सी व्यर्थ की शंकाये दूर हो जातीं । ईश्वर की शक्ति अनन्त है, वे जो चाहें सो कर सकते हैं, वह मेरे जैसे अनधिकारी और साधनहीन शिशु को यदि किसी कारण से प्रेरणा दें तो उसमें न मानने लायक या आश्चर्य करने लायक क्या है ? वह प्रेरणा मुझे किस प्रकार सहायक हुई और धर्मशाला त्याग कर मैंने क्या-क्या किया, यदि स्वामी जी को सारी बातें ज्ञात हो जायें तो संभवतः उनको अवश्य प्रसन्नता होती । परन्तु इस विषय में बातचीत करने के बदले उन्होंने मुझसे एक मित्र के व्यवहार से वार्तालाप आरम्भ किया, उस बातचीत का परिणाम भी भिन्न था ।

उन्होंने कहा—“ठीक है अब जहाँ आपकी इच्छा हो वहाँ जाइये ।” अन्दर के कमरे में एक विद्यार्थी हमलोगों की बातचीत सुन रहा था । उसके साथ उसके अनुरोध के कारण लगभग आध घण्टे बातचीत हुई । फिर मैंने स्वामी जी से विदा ली । तदुपरान्त आज तक उनसे मिलने का अवसर न आया । परन्तु उनके द्वारा किये गये विरोधी वर्ताव पर भी मेरे दिल में उनके प्रति आदर भाव कायम है और रहेगा इसमें सन्देह नहीं । मैंने पहले कह दिया है कि विचार का मतभेद तो रहना ही है उससे आपसी प्रेम व्यवहार पूर्ववत् रह सकता है, वास्तव में प्रेम व्यवहार चालू रहना चाहिये, यह अत्यन्त आवश्यक है । सच्चे संत सब में परमात्मा का दर्शन करते हैं । ऐसे सच्चे सन्तों के मार्ग पर चलने का मेरा प्रयास है । उनकी कृपा से मेरा मनोरथ और प्रयास अवश्य सफल होगा ऐसा मेरा विश्वास है ।

[२]

बाल्यकाल से ही मेरा मन भगवान में लगने लगा था, उस समय और उाके बाद बहुत समय तक मुझे श्री रामकृष्ण देव जैसे सद्गुरु के

समागम् की इच्छा थी। उनके समान अथवा चैतन्य महाप्रभु जैसे महापुरुष के दर्शन की इच्छा से प्रेरित होकर मैंने कितने ही संतो से भेंट की और प्रभु से सतत् प्रार्थना की। परन्तु मैं यह कह सकता हूँ कि इस प्रकार के संत महापुरुष मुझे अभी तक नहीं मिले। सूक्ष्म जगत में ऐसे महापुरुषों का मिलन अवश्य हुआ है, परन्तु स्थूल जगत में उनके सम्पर्क में रहने का लाभ मुझे नहीं मिला। जिनको दर्शन पा कर हृदय प्रफुल्लित हो जाय और जिनके चरणों में सर्व समर्पण हो जाय जो मुझे सहानुभूति से समझ सकें, और पथ प्रदर्शन करें ऐसे महापुरुष से समागम् की मेरी भावना थी वह अधूरी ही रही है। इस पर गुरु की प्राप्ति का प्रश्न मेरे जीवन में बहुत समय से उठा है। ईश्वर, माँ के रूप में मेरा गुरु बना है वह माँ मुझे प्रोत्साहन देती है, और कभी-कभी मुझे सहायता करने वाले सन्तों से समागम भी करा देती है। उसकी मेरे ऊपर बड़ी कृपा दृष्टि है, उसी की कृपा से आज मुझे शान्ति है। जो उसकी शरण में जायगा उसे, सद्गुरु के सदृश, माँ उसका काम करेगी। और उसकी मंगलमयी माता बन कर उसके सभी मनोरथ पूर्ण करेगी। उसे शान्ति देगी। यह ध्रुव निश्चय है।

महर्षि का दर्शन

ई० स० १९४५ में जाड़े के दिनों में मैंने अहमदाबाद से हिमालय के लिये प्रस्थान किया था। जहाँ तक मुझे स्मरण है मार्घ महीना का प्रारम्भ था। जाड़े की बहुल्यता के कारण मुझे सर्दी हो गई, ट्रेन में यही सोचा करता था कि यदि यहाँ पर इतना जाड़ा है तो हिमालय में कैसा होगा ? इतनी दूर कष्ट सहने के लिए जाने में, क्या तत्व है ? क्या सरोड़ा में रहकर साधना न हो सकेगी ? मेरा निश्चय दृढ़ हो गया कि इतनी जल्दी ऐसे जाड़े में हिमालय जाना ठीक नहीं है। यदि ईश्वरेच्छा हो तो सरोड़ा में ही रहना चाहिये। परिणाम स्वरूप मैं दिल्ली में उतर कर वापसी ट्रेन से अहमदाबाद के लिये रवाना हुआ।

सरोड़ा में घर पहुँच कर मेरी अन्तरात्मा जग उठी। अब तक वह सोती न थी लगन व तरंग की थपेड़ों से दब गई थी। फिर शान्त वातावरण पाकर जागृत हो उठी। “क्या यहाँ का वातावरण हिमालय की समता रखता है ? कहाँ हिमालय और कहाँ यह ? हिमालय तो ऋषिमुनि की तपस्या भूमि और योगियों का क्रीडास्थल है। तुम्हारे लिए भाग्य में वहीं हिमालय में रह कर तप करना लिखा है।” आत्मा की आवाज बहुत शान्त होते हुए भी प्रभावशाली और दृढ़ थी, उसके समक्ष तर्क का कोई स्थान न था। उसके सामने तर्क करने की इच्छा भी न होती थी, अतः आवाज को मैंने स्वीकार किया। मैंने विचार

किया कि सरोड़ा पहुंच ही गया हूं अब इधर एक आध महीना रह लूं फिर बाद में हिमालय जाऊंगा। जिस ईश्वर के लिये जीवन अर्पण कर दिया और भेष बदला, उसके लिए शीत या और किसी प्रकार के कष्ट से डरना क्या ? उसका भार तो उसी के सर पर है और उसकी चिंता उसी को होनी चाहिये, जो सारी सृष्टि की चिंता करता है। संकट या अन्य किसी से डरना नहीं ईश्वर रक्षा करने को तैयार है और रहेगा।

उसकी प्रत्येक प्रेरणा में रहस्य है। दिल्ली से वापस लाने में भी उसी का संकेत था। थोड़े समय में वह प्रगट हो गया। एक विचार ऐसा आया कि जब इतनी दूर फिर वापस आ गया हूं और अभी समय है, तो मद्रास जाकर रमण महर्षि के दर्शन करना चाहिये। मेरी अवस्था उस समय लगभग १८-१९ वर्ष की थी। मैंने रमण महर्षि के आश्रम में प्रवेश करने की आज्ञा पत्र लिखकर मांगी। उत्तर आने में बड़ा विलम्ब हुआ। चिन्ता हुई कि बात क्या है ? उसी अरसे में मुझे स्वप्न में एक आवाज सुनाई दी “रमण महर्षि के पास जाइयेगा, आपको साक्षात्कार होगा।” महर्षि के संबन्ध में मैंने बहुत कुछ सुन रखा था और पढ़ा भी काफी था, इसी लिए उनके दर्शनों की इच्छा हुई थी।

अहमदाबाद के निवास काल के अन्तरगत आत्म-निरीक्षण चलता ही रहा। एक बात स्पष्ट हो गयी कि समाधि पर अभी मेरा नियंत्रण नहीं है। अतः इस धारणा के अनुसार समाधि की प्राप्ति मुझे नहीं हुई है। अतएव यह विचार आया कि यदि रमण महर्षि जैसे महापुरुष की कृपा हो जाय तो मेरी यह त्रुटि दूर हो जाय। कुण्डलिनी की जागृति में अथवा दूसरी किसी वस्तु में यदि कोई दोष हो तो वे अपनी अलौकिक सामर्थ्य से उसे दूर कर सकते हैं। इस संबन्ध में रामकृष्ण देव और विवेकानन्द का दृष्टान्त इसी बात को पूर्ण रूप से चरितार्थ करता है। रामकृष्ण देव की कृपा से ही विवेकानन्द जी को समाधि की प्राप्ति हुई थी। रमण महर्षि का एक अनुभव मुझे उत्तरकाशी के निवास काल

में सन् १९४३ ई० में हुआ था। जिसमें उन्होंने दर्शन देकर मुझे वातचीत भी किया था। इसीलिए उनके पास जाने की इच्छा विशेष रूप से थी। ऐसा प्रतीत होता था कि महर्षि मुझे पहिचानते हैं, कभी मैं उनके साथ रहा हूँ, हो सकता है पूर्व जन्म की बात हो। हम लोग पूर्व जन्म में कौन थे कहाँ थे यह सब वे जानते हैं वे मुझ पर अवश्य कृपा करेंगे। हिमालय न जाकर दो तीन वर्ष उनके आश्रम में ही रहूँगा वहाँ पर मेरी सभी आध्यात्मिक इच्छाओं की पूर्ति हो जायगी।

इस प्रकार के विभिन्न विचारों से प्रेरित होकर महर्षि के दर्शन के लिए जाने का निश्चय किया। सरोड़ा में कुछ समय रहा। स्वास्थ्य भी उधर ठीक हो गया था तदुपरान्त बड़ौदा होकर प्रेमी गिरधर भाई के साथ रमण महर्षि के आश्रम जाने के निमित्त मैंने मद्रास की ओर प्रयाण किया।

“होइह सोई जो राम रचि राखा” यह वात ध्रुव सत्य है। जो होना है वह होकर ही रहेगा, मनुष्य को चाहे उसकी कल्पना भी न हो। यदि मनुष्य इस सत्य को समझ जाय और राम की इच्छा को जीवन में देखना सीख ले तो समस्त दुखों का निवारण हो जायगा परिताप का शमन हो जायगा परन्तु विषधर नाग के समान फन ऊँचा उठाकर खड़ा हुआ वह कर्तापन का अभिमान दूर होना कठिन है। बंदरिया के बच्चे के समान वह मानव के मन के साथ सजद्वती से चिपटा रहता है। उसके छूटते ही जीवन की समस्याओं का हल हो जाता है। मनुष्य कर्तव्य करे परन्तु उसके फल या परिणाम से निर्लेप रहे और दूसरों को भी पूरी सहानुभूति से देखना सीखे और उपरोक्त ईश्वरीय विधान को सदैव स्मरण रखे। जीवन का यह बहुत बड़ा पुरुषार्थ है।

हम लोग रमण महर्षि के दर्शनार्थ रमण आश्रम पहुँचे। प्रातःकाल का समय था। सामान उधर रख दिया और सीधे महर्षि जी के पास

गये। तीन चार व्यक्ति हम लोगों के आगे थे। महर्षि के सामने पहुंच कर उन सब लोगों ने साष्टाङ्ग प्रणाम किया। हम लोग भी उनके उपरान्त प्रणाम कर वहीं जमीन पर उनके साथ बैठ गये।

वातावरण शान्त था। महर्षि ऊँचे सोफा के समान एक आसन पर बैठे थे। लगभग ४० दर्शनार्थी शान्तिपूर्वक बैठे महर्षि जी को देख रहे थे। महर्षि जी कुछ पढ़ रहे थे। थोड़ी देर के बाद उन्होंने पढ़ना बन्द कर दिया और आगन्तुकों की ओर देखने लगे। महर्षि की अवस्था अधिक थी, यह उनकी मुखाकृति से स्पष्ट होता था। उनका मस्तक थोड़ा कांपता था। उनके मुख पर गंभीर शान्ति और निर्विकारिता दृष्टिगत होती थी। उनकी गंभीरता, आत्मा के साथ एकाकी हुये ज्ञानी पुरुष की गंभीरता के सदृश्य थी, अतः दर्शकों, को यदि उनके रस में रस न प्राप्त हो तो इसमें आश्चर्य ही क्या है ? “क्या ज्ञान में रस है” ? “अवश्य” ज्ञान में नितान्त शान्तरस है, जो महर्षि की मुखाकृति में स्पष्ट दृष्टिगोचर होता था। महर्षि का व्यक्तित्व पहली दृष्टि में ही प्रभावोत्पादक नहीं कहा जा सकता था। पहली बार में छाप पड़ जाय और व्यक्तित्व का असर हो इस प्रकार के कितने ही महात्मा भारत में हैं, उनकी समता में महर्षि का व्यक्तित्व साधारण ज्ञात होता था परन्तु उनकी शान्ति मुद्रा व गंभीरता, उनकी महानता का जयगान करने वाली थी। महात्माओं का मूल्याङ्कन उनकी बाह्य प्रक्रिया को देखकर नहीं किया जाता। उनकी आभ्यन्तर दशा का ज्ञान प्राप्त करने पर ही कुछ निश्चित किया जा सकता है।

महर्षि के पास पहुंचने के पूर्व मैं विचार करता था कि वे मेरा बड़े प्रेम से सत्कार करेंगे, इसका एक कारण यह था कि मुझे १८ वर्ष की अवस्था में ही आत्म साक्षात्कार की प्रबल इच्छा थी। उस समय मुझे एक स्वप्न हुआ था जिसमें किसी ने यह कहा था कि—

“यदि साक्षात्कार करना हो तो रमण महर्षि के पास जाओ।” परन्तु उसके बाद हिमालय में उत्तरकाशी रहा, वहाँ पर ध्यानावस्था में एक वार महर्षि रमण ने दर्शन दिया, उस समय आश्रम में मेरा प्रेम पूर्वक सत्कार किया और मेरे साथ नानाप्रकार की वार्ता की। उस समय से यह विचार होगया कि महर्षि की मेरे प्रति विशेष प्रीति है और इन्हीं दोनों कारणों से यह विश्वास था कि महर्षि मुझे देखकर बड़े प्रसन्न होंगे और बड़ी आवभगत करेंगे। परन्तु ? जो सतत आत्मानन्द में स्थित है, जिसे जगत में आत्मा के अतिरिक्त अन्य कोई भेदभाव न रहा हो, जो सबको आत्मवत् देखता हो जिसकी अपार्थिव दैवी वाणी प्रत्येक के अस्थल में पहुँच जाती हो उसे बोलकर बताना क्या ? प्रिय अप्रिय मान्यता दें तो किसको ? जो उपरोक्त बातों की समीक्षा करै वह तो जगत के प्रपञ्च में है।

यह कोई एक दृष्टान्त नहीं है। भारत में ऐसे संत महात्मा और भी हैं। सुदूर हिमालय के हिमाच्छादित प्रदेश में वर्षों से गंगोत्री में निवास करने वाले कृष्णाश्रम जी एवं अन्य कई इस प्रकार के महात्माओं का बाह्य वर्तव्य महर्षि रमण जैसा उदासीन होता है। परन्तु थोड़ा विधि भेद है। जिस तरह कृष्णाश्रम जी अत्यन्त प्रभावशाली और प्रशान्त तितिक्षा सम्पन्न ज्ञात होते हैं, उसी प्रकार रमण महर्षि निर्विकारिता एवं गंभीर शान्ति के प्रतीक ज्ञात होते हैं, व्यवहार जगत में समता है।

अस्तु, यदि ऐसे महात्मा पुरुष आपको न बुलायें या लौकिक व्यवहार से आपकी अगवानी न करें तो उसमें कोई बुरा मानने की बात नहीं है। ऐसे पुरुषों को उनकी दृष्टि से ही देखना और समझना चाहिये तभी कोई मतभेद न होगा।

बहुत से इस कोटि के महापुरुष उस सीमा पर पहुँचने के उपरान्त भी लौकिक रीति से व्यवहार कुशल भी होते हैं। वे वार्तालाप, अगवानी

उपदेश इत्यादि कर सकते हैं, हाँ, उनमें अहं ममता नहीं होती। इस प्रकार के महात्मा भी भारतवर्ष में अनेकों हो गये हैं। युग पुरुष अधिकांश इसी श्रेणी के होते रहते हैं। चैतन्य महाप्रभु, स्वामी दयानन्द, नानक, रामकृष्णदेव, बुद्ध, स्वामी विवेकानन्द आदि इसी श्रेणी के दृष्टान्त हैं।

संत महात्मा अपने-अपने स्वभाव के अनुसार बाह्य रूप में चाहे जिस अवस्था में रहें उनका मूल्याङ्कन उनके विचारों की उच्चता पवित्रता, उनकी निर्मलता और अनासक्ति; उनकी आध्यात्मिक अनुभूति और उनकी वीतरागिता ही उनके नापने का माप दण्ड हो सकते हैं।

इस प्रकार के विचार सागर में निमग्न होकर मैं महर्षि के सामने बैठा था। हिमालय में इतना समय निवास करने के उपरान्त अब दो या तीन वर्ष महर्षि के साथ रहने की इच्छा थी इसलिए इधर आया था। परन्तु यहां वस्तु स्थिति भिन्न थी। खण्ड में बैठते ही मेरे भाव पलटने लगे। जैसा पहले लिख चुका हूँ, ईश्वर ठीक समय पर मेरा पथ प्रदर्शक बना है, जब-जब भीषण परिस्थिति वश भूला, उसने ही मार्ग दिखाया। मेरे मन में विचार आया, मैं कहाँ आगया ?

यदि आया तो अच्छा हुआ, महर्षि के दर्शन की इच्छा की पूर्ति तो हुई, परन्तु यहाँ पर मैं रह न सकूँगा, मेरे लिए तो हिमालय ही ठीक है। जिस प्रकार उधर के प्राकृतिक एकान्त स्थलों में, अभी रहा उसी प्रकार आगे भी वहीं रह कर अपना पूर्ण विकास कर सकूँगा। और उस अवस्था में पहुँचूँगा जो आदर्श होगी पूर्ण शान्ति, मुक्ति और शक्ति प्रदायक होगी। ऐसा आभासित हुआ कि मेरे लिए किसी के पास रहने की आवश्यकता नहीं है मैं स्वतः अपनी साधना किसी भी स्थल पर रह-कर कर सकता हूँ। अस्तु अविलम्ब उसी दिन महर्षि रमणाश्रम छोड़ने का निश्चय किया।

स्नान भोजन आदि से निवृत्त होकर थोड़ा आराम करने के उपरान्त दूसरे पहर हम लोगों ने रमणाश्रम छोड़ दिया। गिरधर भाई को मेरे इस आकस्मिक निर्णय पर बड़ा आश्चर्य हुआ, परन्तु वे कुछ न बोले। बाद में उन्होंने मेरे निर्णय का समर्थन किया और उनको प्रसन्नता हुई। दूसरे दिन हम लोगों ने वम्बई जाने वाली गाड़ी पकड़ी और महर्षि रमणाश्रम को अन्तिम प्रणाम किया।

कुछ समय के उपरान्त यह विदित हो गया कि मेरा यह निर्णय बहुत सामयिक और अनुकूल था। हिमालय में रहकर मुझे जो नई साधना करनी थी उसी के हेतु भविष्य का विचार कर ईश्वर ने मेरा हाथ पकड़ कर मुझे बाहर निकाला और हिमालय में साधना के लिए प्रोत्साहित किया।

“मंगल मयी भगवदेच्छा की जय हो।”

काली आकृति का अनुभव

नवरात्रि निकट थी। पितृ पक्ष का प्रारम्भ हो चुका था। प्रस्थान का मुहूर्त भी निश्चय हो गया। सहसा एक दिन रात्रि के समय २ बजे के उपरान्त नानाप्रकार के विचार आने लगे। दक्षिणेश्वर कैसा होगा? वहाँ रहना अनुकूल होगा, कलकत्ता तो शहर है। दक्षिणेश्वर में कैसा आनन्द आयेगा? अन्तस्थल बोलता था कि ईश्वरी आदेश है, वही ले जा रहा है, वहाँ आनन्द अवश्य रहेगा परमहंस देव वहाँ फिरते थे, साधना करते थे, जिज्ञासुओं से वार्तालाप करते थे। वह स्थान तो देव दुर्लभ है, वहाँ अवश्य अच्छा लगेगा और लाभ होगा।

इस प्रकार के विचार आते थे। नीचे के खण्ड में उस समय एक ही कमरा बना था उसी में मैं उस समय तख्त पर बैठा था। कमरे के बाहर भीतर सभी जगह अंधकार था। मेरे पास वाली खिड़की बन्द थी। दरवाजा भी अन्दर से साकल लगाकर बन्द कर दिया था। बाँये हाथ की एक खिड़की खुली थी। उससे हवा आती थी ध्यानपूर्वक देखने से आसमान के तारे भी दिखाई दे जाते थे। अचानक मेरी दृष्टि खिड़की के पास पड़ी तो क्या देखता हूँ कि एक काले रंग की मानव आकृति खिड़की के पास खड़ी है। मुझे यह देख कर बड़ा आश्चर्य हुआ कि यह आकृति कहाँ से आई, और किसकी होगी? दरवाजा बन्द है

मुझे विस्मय और आनन्द दोनों हुए । भय का कोई कारण न था क्योंकि ऐसे विचित्र अनुभव अनेकों बार मुझे प्राप्त हो चुके थे । बहुतों का वर्णन तो मैंने किया ही नहीं, सबों की दास्तान सुनाने में कोई प्रयोजन नहीं । यह अनुभव जो थोड़े अंश में कहता हूँ वह इसलिए कि मनुष्य को इस मार्ग पर अग्रसर होने से होने वाले कल्पनातीत अनुभवों का कुछ ज्ञान हो जाय, उनकी सत्यता में वह संदेह न करे, मेरे विश्वास से सबको विश्वास हो सकेगा । यह मेरी मान्यता है ।

मेरे विस्मय और आनन्द की लेश मात्र चिन्ता किये बिना वह आकृति मेरी ओर आगे बढ़ी । उसका शरीर काजल जैसा काला था परन्तु भयवना न था । मुख स्पष्ट नहीं दिखता था । ठीक मेरे पास आकर उसने दोनों हाथ फैलाये और मुझे बाहों में लेकर कहा—“आप यहाँ बहुत समय रहे अब आप जाने वाले हैं ठीक हैं । वापस कब आयेगे ? जल्दी-जल्दी आते रहियेगा । आपको यहाँ कैसा लगा ? आपके बिना मुझे अच्छा न लगेगा । ”

मैं सुनता ही रहा । शब्द बहुत स्पष्ट और सुमधुर थे । सुनने से अपूर्व शांति मिलती थी, इससे अधिक और उसने कुछ न कहा । तदुपरांत वह आकृति मुझे बाहों से छोड़कर दो मिनट बाद, कमरे से अदृश्य हो गई । मैंने विचार किया कि निकट-स्वजन जैसा बोलने वाला यह कौन हो सकता है ? वह आकृति किसकी थी ? क्या वे कोई सिद्ध पुरुष थे ? या रामकृष्णदेव स्वयं होंगे । कोई तीर्थ देवता या ईश्वर होंगे । मेरे लिए यह समस्या बनी ही रही । मैंने उसका निर्णय करने का झूठा प्रयास भी न किया । क्योंकि गुड़ किस जाति का है कहाँ का है किस भाव का है, यह सब जानकर मुझे क्या करना है ? मुझे तो उसके स्वाद से आनन्द या तृप्ति पानी है । वह महान आत्मा चाहे जो हो, उसकी कृपा मुझ पर हुई है, और उसके प्रेम भरे सीठे वचन मैंने सुने हैं इतना मुझे पर्याप्त है अधिक गहराई में उतर कर क्या करना

है ? आज मैं कह सकता हूँ कि वह काली आकृति में आकर मां जगदम्बा ने ही मूझपर प्रेम बरसाया है यह स्मरण कर उल्लास अनुभव करता हूँ । लेकिन माँ का वह प्रेम-बंधन सदा सर्वदा रहे । मां के वे प्रेमाद्रंश शब्द, नित्य निरन्तर सुनने को मिलें, तब जीवन सफल हो । माँ का मधुमय स्वरूप दिन रात आंखें देखा करें, वही जीवन की परमोच्च सफलता प्राप्त हो जाय । मनुष्य को इस प्रकार के उल्लास प्रेरक अनुभवों में रुकना न चाहिये परन्तु लगन से मां का प्रतिपल का सान्निध्य प्राप्त करना, प्रभु का सदा के लिए सहवास पाने के लिए तत्पर हो जाना चाहिये, प्रयत्न से आगे बढ़ना चाहिये ।

गंगाजी का गम्भीर और जोर का शब्द दूर से सुनाई देता था । आश्रम के पास प्रवाहित शान्ता नदी भी वर्षा के कारण परिपूर्ण हो गई थी । वह भी हिमालय के प्राचीन और अर्वाचीन ऋषिवरों का जयगान गाती बहती थी । अन्दर और बाहर अभी अंधकार ही था आकस्मात् मेरी दृष्टि कमरे के अंदर एक ताक पर पड़ी उस पर दीपक जलता था उसके पास रमण महर्षि की मूर्ति स्मित कर रही थी । पहले महर्षि को मैंने देखा था अतएव मैं उनको भली प्रकार पहचान सका । दो चार मिनट तक इस प्रकार मुझे दर्शनानन्द देकर वे भी दीपक के साथ अदृश्य हो गये, सर्वत्र अंधेरा छा गया । महर्षि जैसे सिद्ध पुरुष अपनी इच्छानुसार चाहे जहां, चाहे जब, चाहे जिसके पास जा सकते हैं । आज ऐसे महापुरुष अनेक हैं । योग्य आध्यात्मिक प्रवासी के पास, वे प्रकट होते हैं और उन्हें मदद करते हैं । उनको देशकाल का बंधन नहीं होता । वे सर्वशक्ति सम्पन्न होते हैं, परन्तु मानव संसार की वासना के पीछे ऐसा पागल है, बुद्धि का इतना दास है, कि उसके ऊपर वह उठ नहीं सकता, परिणाम यह होता है, कि जीवन के बहु-मूल्य अनुभव उसे नहीं हो पाते । जो दृढ़ संकल्पी संसार की बाह्य आसक्ति और ममता का त्याग कर देते हैं और उसके स्वामी पर माला को पाने

के लिए कमर कस लेते हैं, सच्चे मार्ग से आगे बढ़ते हैं उन्हें अनेकों अनुभव होते हैं और वे एक दिन परमात्मा का दर्शन कर परमात्मामय बन जाते हैं, ऐसा दृढ़ संकल्पी करोड़ों में कोई विरला ही निकलता है ।

धीरे-धीरे प्रकाश फैलने लगा । स्नानादि से निवृत्त होकर मैंने शांताश्रम को प्रणाम किया । उसकी पवित्र रज को सर पर चढ़ाकर मोटर में बैठने के लिए प्रस्थान किया । इसी दिन ता० ३० सितम्बर सन् १९४५ ई० को मैंने देव प्रयाग छोड़ा । वह दिन था सोमवार !

• • •

दक्षिणेश्वर का दर्शन

कलकत्ते की यह मेरी पहिली यात्रा थी। दूसरे प्रहर लगभग ३ बजे कलकत्ता पहुंचा। स्टेशन से दक्षिणेश्वर जाने की जानकारी प्राप्त की, अन्त में एक बस में बैठा। बस चलने लगी। दो तीन मिनट बाद बस कन्डक्टर आकर कहने लगा—“इस बस में आप बैठे हैं, आपने भूल की, दक्षिणेश्वर को दूसरी बस जायगी”

थोड़ी दूर आगे बस खड़ी हुई, वहाँ उतर कर मैं दूसरी बस में बैठा परन्तु उसमें भी यही बात हुई और उससे भी उतर जाना पड़ा, इस प्रकार प्रायः एक घंटा व्यर्थ में गया। अन्त में मैंने घोड़ा गाड़ी करने का विचार किया। गाड़ी वाला मुसलमान था परन्तु बड़ा धार्मिक था। उसने विश्वास दिलाया कि दक्षिणेश्वर में काली माता का मन्दिर है वहाँ मैं आपको अवश्य पहुंचा दूंगा मैंने उस मन्दिर को देखा है।

कलकत्ते के बड़े-बड़े मार्गों से गाड़ी निकलने लगी अन्त में प्रायः दो घण्टे के बाद एक मन्दिर के समीप जाकर खड़ी हो गई। सायंकाल हो गया था मन्दिर में दर्शन के उपरान्त केवल आराम ही करना था, परन्तु वहाँ एक नई भीषण परिस्थिति उत्पन्न हो गई। यह मन्दिर दक्षिणेश्वर का मन्दिर नहीं है। यह तो कलकत्ते का सुप्रसिद्ध काली मन्दिर है !

अब क्या हो ? मुझे गाड़ी वाले की भूल पर बड़ा आश्चर्य हुआ । समय और धन दोनों बेकार गये । गाड़ी वाले से कहा, “दक्षिणेश्वर चलो ।” परन्तु गाड़ी वाले की प्रथम धर्म निष्ठा दूर हो चुकी थी, और अपनी भूल सुधारने के स्थान पर वह शीघ्र बोल उठा, “अब तो बहुत देर हो गई है मुझे यहां तक के पैसे चुका दीजिये मैं अब दूसरी जगह नहीं जा सकता ।” झवकी मनुष्य से झगड़ा करना ठीक नहीं, मैंने उसे पैसे दे दिये और भगवान का नाम लेकर आगे बढ़ा ।

मुझे सबसे अधिक आश्चर्य इस बात का हुआ कि इतने बड़े शहर कलकत्ता में जिस किसी से मैंने दक्षिणेश्वर का पता पूछा वह ठीक उत्तर न दे सका, जिस स्थान पर रामकृष्ण देव ने लीला की और जिसके दर्शन के लिए आज, न केवल भारत, अपितु विदेशों के अगणित मनुष्य आते हैं उस स्थान को, स्वयं कलकत्ते के निवासियों को जो दिनरात वहीं रहते हैं कोई जानकारी नहीं । जो भी हो, समस्या यह थी, कि अब दक्षिणेश्वर किस प्रकार पहुंचा जाय । मुझे बड़ी चिंता होने लगी । रात्रि निकट आ रही थी ।

जो रामकृष्ण देव हिमालय से यहाँ लाये, वे अब यह क्या करने लगे ?

परन्तु प्रभु की प्रत्येक क्रिया के पीछे कोई न कोई रहस्य निहित होता है । यदि मनुष्य यह सिद्धान्त समझ जाय और सच्चे मन से उसे अपने जीवन में उतार ले तो वह प्रत्येक परिस्थिति में अनुकूलता ला सकता है । मैं कोरी मार्ग पर खड़ा यह विचार कर ही रहा था कि इतने में एक मनुष्य उधर से आया और कहने लगा, “कहां जाना है ।”

मैंने कहा, “दक्षिणेश्वर जहाँ परमहंस रामकृष्ण देव का स्थान है वहाँ ।” उसने कहा—“जल्दी करिये मेरे साथ बस में चलिये मुझे भी वहीं जाना है ।” जो मनुष्य बिना कहे सहायता के लिए इतनी तत्परता

दिखाये उसके लिए सम्मान हो जाना स्वाभाविक है, वह भी ऐसे समय जब उसकी आवश्यकता उपस्थित हो जाय ।

अविलम्ब एक बस मिल गई और थोड़ी देर बाद हम लोग दक्षिणेश्वर पहुंच गये । मार्ग में एक जगह दूसरी बस बदलकर वह मनुष्य चला गया ।

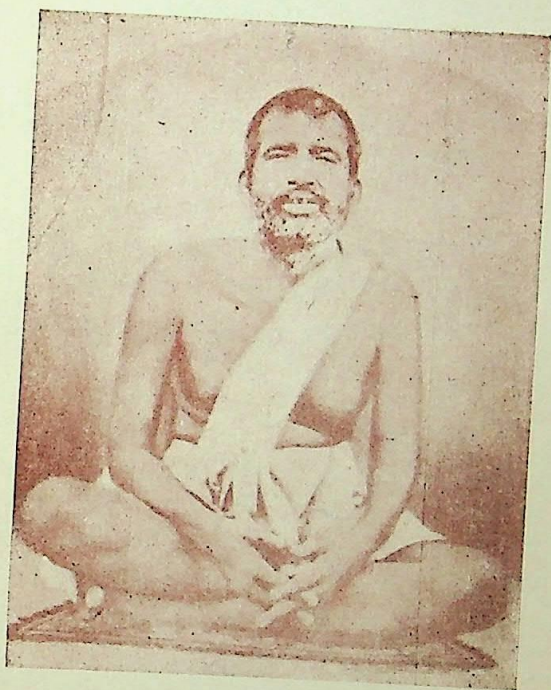
बस ठीक दक्षिणेश्वर में ही खड़ी होती थी । बस से उतरने पर चारों ओर देखा तो कोई भी मन्दिर न दिखाई दिया । पता लगा कि मन्दिर थोड़ी दूर पर है । सौभाग्य से उसी स्थान पर तीन चार व्यक्ति आये । मेरी वेशभूषा से मुझे उन्होंने महात्मा समझा और मेरे पास सामान देखकर उन्होंने अनुमान किया कि मैं बाहर दूर से आता हूं । एक ने प्रश्न किया—“आप कहां से आये हैं ?” मैंने उत्तर दिया “हिमालय से ।”

हिमालय का नाम सुनकर उनको आश्चर्य और आनन्द हुआ । उन्होंने मुझे ठीक मन्दिर में पहुंचा दिया । मन्दिर वन्द था । सब जगह शान्ति थी, अंधकार व्याप्त था, रात्रि का प्रभुत्व था, निकट में गंगाजी का प्रवाह भी पूर्णरूप से निस्तब्ध था ।

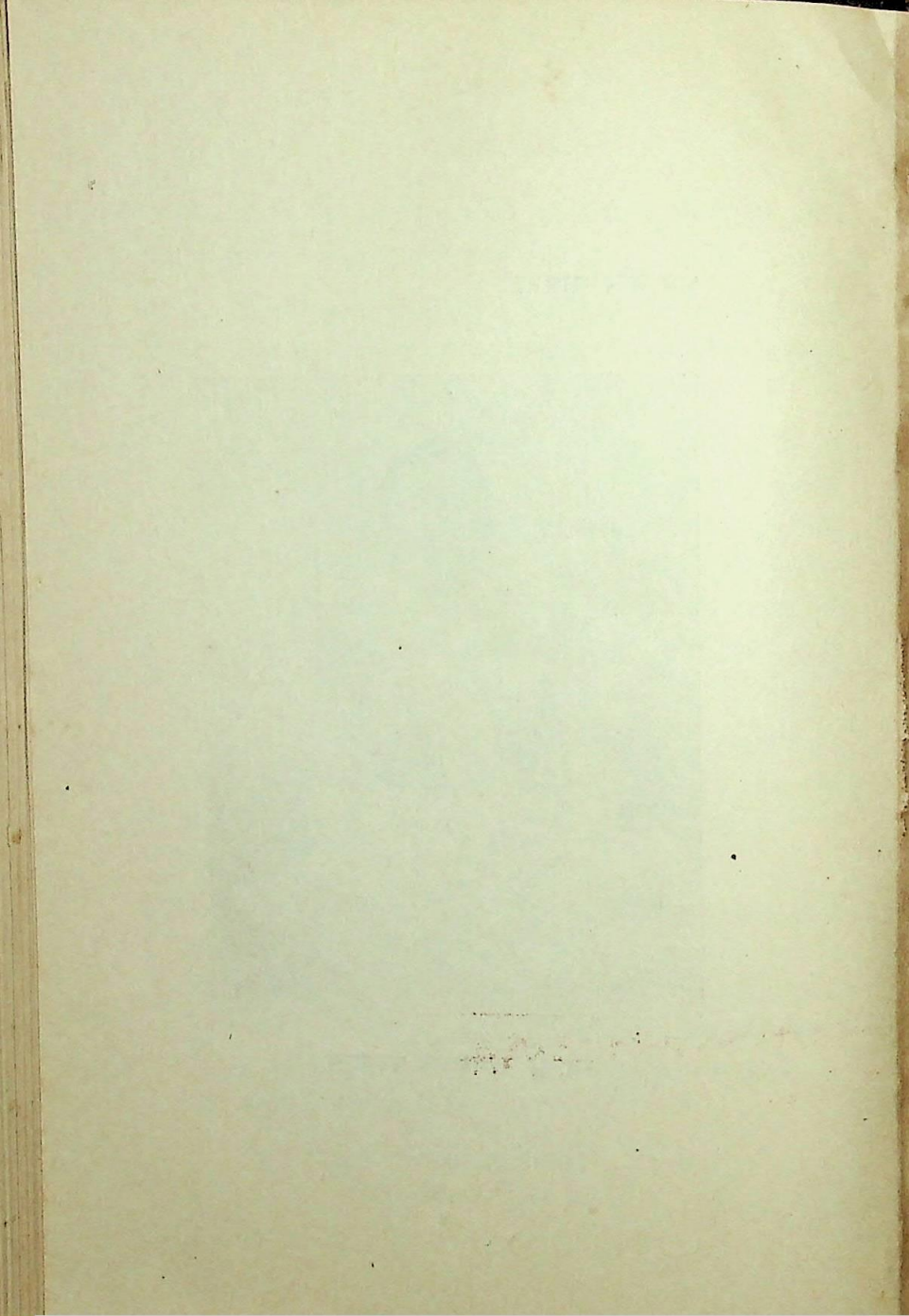
परसहंस देव का खण्ड अभी तक खुला था अस्तु, सबसे प्रथम उनका दर्शन हुआ । साथ में आने वाले व्यक्ति ने कहा कि इस मन्दिर में रात्रि को कोई ठहरने नहीं पाता परन्तु इस समय अंधेरा हो गया है आपसे कोई कुछ न कहेगा । इतना कह कर वे चले गये । मैंने गंगाजी में जाकर आचमन मार्जन किया और थोड़े समय उपरान्त अँगड़ाई लेते-लेते उसी मकान के कमरे में सो गया ।

यदि इधर मैं जल्दी पहुंच जाता तो ठहरने के लिये अनुमति प्राप्त करनी पड़ती, इसीलिये प्रभु मुझे यहां देर से लाये । वे जो कुछ करते हैं अच्छा करते हैं, उसमें कुछ न कुछ रहस्य अवश्य होता है ।

श्रेय और साधना



स्वामी रामकृष्ण परमहंस



कृपा से क्या नहीं हो सकता है ? मनुष्य की प्रत्येक इच्छा और आकांक्षा उससे पूरी हो सकती है केवल श्रद्धा और लगन चाहिये । उसके अभाव में अनेकों साधक साधना के मार्ग में निष्फल होते हैं, प्रयास निष्फल जाते हैं, और परिणाम में साधना पथ को, निराधार शीघ्रता पूर्वक, दोष देने में तत्पर हो जाते हैं । जिसकी निष्ठा सच्ची है उसको प्रभु की अथवा महापुरुषों की सहायता अवश्य प्राप्त होगी ऐसा मेरा पूर्ण विश्वास है ।

पूर्वकाल में दीक्षा इसी प्रकार से दी जाती थी । संकल्प, शब्द या स्पर्श द्वारा महापुरुष साधक की सुपुष्ट शक्ति को जागृत करते थे, फिर उसे ऊंचा उठाते थे । आज ऐसे महापुरुष और अधिकारी साधक कम हैं । फिर भी किसी समय उनका दर्शन हो जाता है । मेरे जीवन के इस अनुभव से सबको उसका विचार आयेगा । यज्ञोपवीत के समान यह दीक्षा भी मेरे जीवन में दूसरी बार हुई । यह विशेषता ध्यान देने योग्य है ।

• • •

माता आनन्दमयी से भेंट

जिस सिन्धी सेठ के यहाँ मैं भोजन करता था उसके परिवार के लोग सोलन में रहते थे। सोलन धर्मपुर से १० मील दूर है और हवा खोरी के लिए सुन्दर स्थल गिना जाता है। वहाँ प्रत्येक रविवार को सिन्धी सेठ जाते थे, कुटम्बी जन उनसे मिलकर बड़े प्रसन्न होते थे। एक बार उन्होंने मुझे भी आमंत्रित किया। मोटर बस से हम लोग सोलन पहुँचे। मार्ग के ऊँचे-ऊँचे पर्वत, वन और प्राकृतिक सौन्दर्य देखते हम लोग सोलन पहुँच गये।

हम लोग जब सिन्धी महाशय के घर गये तो वहाँ सोलन के “स्वाध्याय सदन” वाले पण्डित हरदेव शर्मा मिले; वे बड़े विद्वान नम्र और प्रेमी थे। ईश्वर एवं संत महात्माओं के प्रति उनका प्रेम स्मरणीय था। उन्होंने सूचित किया कि सोलन में माता आनन्दमयी और हरि-बाबा जी आये हैं।

यह समाचार सुनकर मुझे आनन्द और आश्चर्य दोनों हुये। माता आनन्दमयी से मिलने मैं अल्मोड़ा जा चुका था परन्तु उनके मिलने की इच्छा अभी समाप्त न हुई थी। उनका मिलन अकस्मात् होगा यह कल्पनातीत था परन्तु जीवन में ऐसे अनेकों कल्पनातीत प्रसंग हुआ करते हैं, क्या यह सत्य नहीं है? माता जी से मिलने का समय सायंकाल

के ४ बजे के बाद था। उस समय हम लोग उनसे मिलने जा पहुंचे। वे जहां पर ठहरी थीं वह स्थान बड़ा रमणीक था। सोलन वहां से दूर-दूर फैले पर्वतों की तलहटी में दिखाई देता था। मकान के बाहर दो तीन बहने धूमती फिरती दिखाई देती थीं।

थोड़ी देर में मकान का द्वार खुल गया। हम लोग अन्दर गये माता आनन्दमयी खड़ी थीं। हम लोगों को देखकर वे मुस्करायी। हम लोगों ने उनको प्रणाम किया। प्रणाम करते समय वे किसी को चरण स्पर्श करने न देती थी।

सब नीचे बैठे। मैं माता जी के मुख की ओर देखता था। हम लोग जैसे ही कमरे में घुसे थे, वैसे ही माता जी ने कहा था, “आ गये! आपको मैंने बहुत बार देखा है।”

मैंने भी कहा कि—“आपको भी कई बार देखा है।” हाँ, यह अनेकों बार देखना ध्यानावस्था में ही था।

[२]

अपने अल्मोड़ा प्रवास के विषय में मैंने उनसे बातचीत की। वे उसके बाद कहां थी उन्होंने बताया, इतने में हरिबाबा जी आ पहुंचे। हरिबाबा सन्यासी हैं। उत्तर भारत में उनकी बड़ी ख्याति है। माताजी के निकट वे तुलसीकृत रामायण पढ़ने लगे, मैं उनके मुख की ओर देखता रहा। माता जी का मुख तेजस्वी भावमय और आनन्दमय है। उनमें नम्रता और प्रेम का बाहुल्य है। कथा समाप्त होने के उपरान्त मैंने माता जी से उनके यहां अपने रहने के बारे में पूछा। उन्होंने मुझे साथ में रहने की अनुमति दे दी, मैं बड़ा प्रसन्न हुआ। मोटर से सायंकाल में हम लोग धरमपूर वापस गये। दो चार दिन के बाद माता जी के साथ रहने को मिलेगा इस विचार से मुझे आनन्द ही आनन्द हो

रहा था । दीर्घकालीन इच्छा की पूर्ति का समय आने पर किसे आनन्द न होगा ? “ मां ” ने कृपा कर ऐसी परिस्थिति उत्पन्न कर दी, पर मैं निश्चयात्मक कह सकता हूँ जब-जब जिस व्यक्ति विशेष से मिलने की मेरी इच्छा हुई और उसके द्वारा कुछ सहायता पाने की आकांक्षा भी हुई तब तब मां जगदम्बा ने मुझे उन व्यक्तियों के समागम में उपस्थित कर दिया ।

इस प्रकार मां ने मुझे अपरोक्ष अनुभव करने की क्षमता प्रदान की । मेरे मन को सब पदार्थ, या व्यक्ति विशेष से उपराम बनाया और इस प्रकार बनने की आवश्यकता भी थी । इसी के कारण आगे बढ़ते हुए मैं स्वावलम्बी रहा और अपने में विश्वास रख मां की कृपा का चातक बना, इस बात पर क्रमशः आगे प्रकाश डालूंगा । अभी तो हम लोग सोलन और धरमपुर के बीच मोटर में दौड़ें, वही ठीक है । बात यह है कि उसमें एक बड़े महत्व का प्रसंग आयेगा ।

[३]

मोटर में मैं माता आनन्दमयी की बातचीत करने लगा । इस सिंधी महाशय ने कहा—“आप आनन्दमयी माता को जीवनमुक्त मानते हैं ?”

मैंने कहा—“हां वे एक उच्च-कोटि की साध्वी हैं । क्या आपको वैसा न लगा ?”

सिंधी सज्जन को मेरी बात पसन्द न आयी । वे बोले—‘क्या जीवन मुक्त के मुख पर मक्खी बैठती है । वे दाहिने हाथ में पंखा लिए उनको उड़ाती रहीं । हम लोग उनको जीवनमुक्त नहीं कहते, वे ढोंगी हैं । वहाँ तो यौवनावस्था प्राप्त लड़कियां बाल खोले घूमा करती हैं । उनकी शिष्यायें देखने में विलासी हैं । मुझे तो वहाँ बिल्कुल अच्छा न लगा ।’

सेठ जी की बातें इतनी विलक्षण थीं कि मुझे तो उनकी कल्पना भी न थी। मैंने कहा कि “यदि जीवनमुक्त के मुख पर मक्खी बैठ जाय तो क्या हुआ ? अगर कोई उनको उड़ता रहे तो जीवनमुक्ति में कोई बाधा पड़ जायगी ? और युवा लड़कियाँ तो अपने स्वजनों के साथ दर्शन करने आई थीं। आप उनमें ईश्वरीय प्रकाश का दर्शन क्यों नहीं करते ? जो विलासी है उसको उन बहनों के सौन्दर्य में विलास देख पड़ता है। दोष तो देखने वाले की आंख का है। जीवनमुक्त की परीक्षा मक्खी बैठने या न बैठने से नहीं होती, उसकी परीक्षा उसके ज्ञान, उसकी शक्ति, स्थिरता, आदि सद्गुणों से एवं काम क्रोध से रहित जितेन्द्रिय होने से होती है।”

परन्तु सेठ जी का मन नहीं माना। वे अपने को ही बुद्धिमान समझते थे। महात्माओं के सेवक होने के नाते उनकी टीका करने का उन्हें अधिकार है। यह उनकी मान्यता थी। फिर भी ऐसी टीका बुद्धि युक्त होनी चाहिये। यह उनकी बुद्धि के बाहर थी। अनेकों व्यक्ति इस तरह महात्माओं की परीक्षा करने जाते हैं और उनके छोटे से बाह्य व्यवहार को देखकर महात्मा के प्रति धारणा बनाते हैं जो अधिकांश मिथ्या होती हैं, परन्तु मनुष्य मक्खी के बैठने से सत्य असत्य की विवेचना करते हैं इससे अधिक भूल और कौन सी हो सकती है ? महात्मा के प्रति जो बात कहनी हो वह खूब विचार कर कहनी चाहिए और यदि सम्भव हो तो पहिले महात्माओं के परिचय में आकर उनके जीवन और प्रभाव से अवगत हो जाना चाहिए। एक साधारण मनुष्य के हृदय को भी थोड़े समय में पहिचाना नहीं जा सकता फिर महात्माओं के हृदय को कैसे पहिचाना जा सकता है ?

सिंधी महाशय से मैंने कहा, “आप अभी फिर दर्शन करियेगा। अधिक जानकारी प्राप्त होगी।” परन्तु सेठ जी ने मक्खी का प्रसंग देखने के बाद आनन्दमयी के दर्शन का विचार छोड़ दिया, और अपने

उस खोज पूर्ण निर्णय को वे अपना सौभाग्य मानते थे । वह सौभाग्य था कि दुर्भाग्य ; कौन कह सकता है ?

आनन्दमयी मां का मिलन—२

माता आनन्दमयी का मिलन सोलन में २ जून स० १९४६ ई० को हुआ था । इसके बाद जून का सारा महीना ऐसे ही वातावरण में गया ।

धरमपुर आने के तीन दिन बाद मैं सोलन गया । माता जी ने मेरी व्यवस्था का कार्य तो बंगाली गृहस्थों को सौंपा । वे गृहस्थ वहाँ उनके दर्शन करने आये थे । उन लोगों ने मेरी व्यवस्था कर दी । परन्तु उन सबके साथ रहना मुझे पसन्द न आया । उनमें प्रान्तीयता अधिक थी । स्त्री पुरुष मिला के वहाँ पर प्रायः पचास व्यक्ति थे । उनका भण्डारा स्वतन्त्र चलता था, खर्च सोलन के राजा देते थे ।

मेरा परिचय ज्योतिषी श्री हरदेव शर्मा से था । उनके पास एक छोटा सा मकान खाली था । वहाँ उन्होंने मेरी व्यवस्था कर दी । और मैं उनके साथ रहने लगा । इस तरह निवास स्थान की कठिनाई तो दूर हो गयी, परन्तु मुझे आनन्दमयी माता के सम्पर्क में रहना था । उनके साथ मुझे बहुत बातें करनी थी, उसके लिए समय निकालना था । प्रायः समस्त दिन वहाँ सत्संग चलता था, बहुत सवेरे कीर्तन करने हरी बाबा आते थे, फिर ९ बजे से ११ बजे तक आनन्दमयी मां का जीवन चरित्र पढ़ा जाता उसके बाद भोजन व शयन होता था । सायं काल को ४ बजे से ५॥ बजे तक हरि बाबा रामायण पढ़ते थे, उसके बाद ३० मिनट का विराम होता । ३ बजे से ७॥ बजे तक राजमाता का समय था, उस समय कोई पुरुष वहाँ नहीं रहता था । रात को ८ बजे से १० बजे तक कीर्तन सत्संग इत्यादि चलता था । इस प्रकार के बंधे

कार्यक्रम से समय निकाल कर मुझे माता जी से बात करनी थी। यह काम कुछ कठिन अवश्य था परन्तु इसी समय में मेरा मन वहां से उचट गया। मुझे इस प्रकार के सत्संग की भूख न थी। सत्संग तो मैं स्वयं अपने साथ कर सकता था और वह सत्संग इतनी ऊंची श्रेणी का था भी नहीं। मुझे तो माता जी से वार्तालाप करनी थी, जिसके लिए मेरा मन आतुर था।

एक दिन शाम को एक और घटना हुई। माता जी से वार्तालाप करने वालों को क्रमानुसार समय मिला। मैं उधर गया मेरी भी बारी आई, मैं कह सकता हूं कि इस समय मेरा दिल पूर्ण भावनामय था और उस कारण आनन्दमयी मां के प्रति मैं बड़ी-बड़ी कल्पनाएं कर बैठा था।

वातचीत के प्रारम्भ में मैंने माता जी को अपने जीवन की एक उड़ती झलक दिखाई, और पूर्व जन्म की झांकी कराई जिसको सुनकर माता जी ने आनन्द व्यक्त किया। एक आध वार उनका आनन्द उड़ भी गया, जो उनके मुख से अवगत हो गया था। उस समय मैं उसे तुरन्त समझ सका था। माता जी के सामने अपने जीवन की कुछ बातें प्रगट करने में मैंने भूल की थी। मैं समझता था, कि मेरी बातें सुनकर माता जी मुझसे अधिक प्रेम करेंगी और सहायता करेंगी। परन्तु मेरी यह धारणा निर्मूल थी।

मैंने निर्णय किया कि अब कभी भी कोई अनुभव साधारणतः नहीं प्रगट करना चाहिये। जो हुआ, अच्छा हुआ। माता जी तो मुझे साधारण साधु समझती थीं। मैं यह समझता था कि माता जी मुझे मिलते ही मेरी योग्यता जान लेगीं और मुझे न्याय देंगी, परन्तु वह कुछ न हुआ। इससे उनकी शक्ति के बारे में अश्रद्धा तो न हुई, परन्तु उनके पास रहने में कोई अर्थ न हो सकेगा, यह भाव दिन प्रति दिन दृढ़ होता गया।

मेरा उनका सम्पर्क अचानक हो गया था। परन्तु उसके कारण एक बड़ा भ्रम दूर हो गया। मेरा सारा ध्यान रामकृष्ण देव की ओर दौड़ा जिनकी प्रार्थना व पूजा मैं आज तक करता रहा।

मैंने इस मिलाप के संयोग के लिए प्रभु का आभार माना क्योंकि उन्होंने मुझे अधिक भ्रम में न रखकर मेरी अधूरी इच्छा को पूर्णकर उसको निर्मूल कर दिया। उनकी करुणा अपार है, जो उनकी शरण लेता है उसकी सारी रक्षा का उत्तरदायित्व वे अपने ऊपर लेकर उसकी देख रेख करते हैं, उसकी सभी आकांक्षाओं की पूर्ति करते हैं और उसकी बुद्धि को सब ओर से समेट कर केवल अपने श्री चरणों में एकाग्र करते हैं।

[२]

मैंने माता जी से भविष्य में उनके साथ रहने के बारे में पूछा। उन्होंने उत्तर दिया, “दीदी को पत्र लिखने से वह हो सकता है अबकी बार जब एकान्त में रहूंगी तो आप को बुला लूंगी। आप लिखियेगा।”

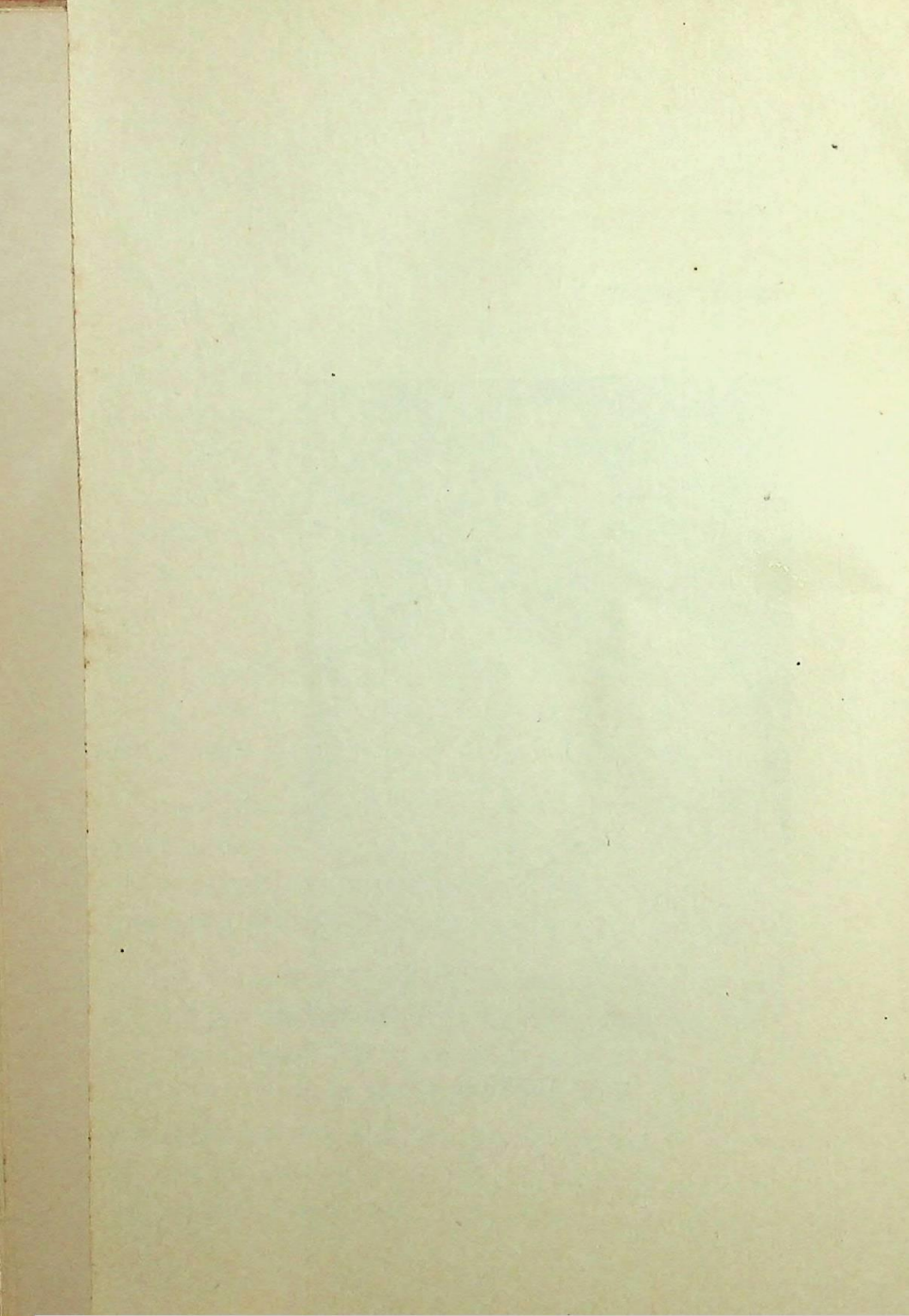
अन्त में उनकी गोद में सर रखकर मैंने उनसे विदा ली। आनन्दमयी माता के साथ का वार्तालाप पूरा हुआ। मुख्य-मुख्य सब बातें मैंने कर लीं। विशेष कुछ बाकी न रहा। अब उनके पास अधिक रुकने की आवश्यकता न थी। दूसरे दिन मैंने प्रस्थान करने का विचार किया।

रात को मैं पण्डित श्री हरदेव शर्मा के पास बैठता था। पण्डित जी बड़े प्रेमी, नम्र और बुद्धिमान थे। उन्होंने मेरी कुण्डली देखी और कहा, “ऐसी कुण्डली कृष्ण या राम की थी। लाखों में कोई एक ऐसी भाग्य से मिलती है। मैंने तो नहीं देखी। २८ या २९ वर्ष के बाद पूरा समय कोई अवतारी कार्य करने के लिए है। यह तो अवतारी पुरुष की कुण्डली है। इसके बाद उन्होंने बहुत सी बातें कहीं। जो महात्मा १९४२ ई० में मुझे ऋषिकेश में मिले थे उन्होंने भविष्य के बारे में बहुत सी बातें

श्रेय और साधना



माता आनन्दमयी



बतायी थीं, उसके बाद दूसरी और सुनने की मेरी इच्छा न थी परन्तु जब पण्डित जी कहने लगे तो मैं सुनता रहा। उनके कथन में कितनी सत्यता है यह तो वे ही जाने परन्तु मुझमें तो अभी बड़ी त्रुटियाँ हैं और उन्हें दूर कर पूर्ण बनना है।

महापुरुष या अवतारी पुरुष के शब्द बड़े सुन्दर हैं, परन्तु उनका उत्तरदायित्व बड़ा कठिन है। ईश्वर प्राप्ति करने का, धर्म पालन का, और पूर्णता प्राप्त करने का मानव का धर्म है मुझे उसी में आनन्द आता है। बड़े या छोटे के झगड़े में पड़ना मुझे पसन्द नहीं। महापुरुष तो अपने को सबकी रज के बराबर समझते हैं, उनको किसी बात का मिथ्याभिमान कहां से हो सकता है ! परन्तु पण्डित जी मेरी बात मानने वाले नहीं थे, वे कहते ही गये, “आपका जीवन उज्ज्वल है और अति शुभ उज्ज्वल होने वाला है।” चर्चा बन्द होने पर मैंने उनसे कहा कि मैं कल सबेरे धरमपुर जाऊँगा। माता जी के पास रहने की अब इच्छा नहीं है। पण्डित जी की इच्छा थी कि मैं अभी कुछ और अधिक रहूँ परन्तु मेरे निर्णय पर उनका क्या अधिकार !

दूसरे दिन सुबह सामान का थैला कन्धे पर रख और पीतल का डब्बा हाथ में लेकर मैंने सीलन छोड़ दिया। १० मील पैदल चल कर लगभग ११-११।। बजे धरमपुर पहुँचा। सिन्धी सेठ बड़े प्रसन्न हुए कहा, “मैंने आपसे कहा था वहाँ के बजाय यहां कितना अच्छा है। अब इधर ही रहिये।” मैंने कुछ उत्तर न दिया भोजन के उपरान्त मैं चम्पक भाई के पास गया और उनको सारी बात बताई।

आनन्दमयी माता का मिलन-३

रविवार को फिर सेठ जी के साथ मुझे सोलन घूमने का अवसर मिला, वहाँ पहुँच कर यह विचार हुआ कि देखूँ तो सही आनन्दमयी

माँ क्या करती हैं। वहाँ जाकर देखा कि वे बाहर खड़ी थीं। बहुत सी बहनों के साथ बातचीत करती थीं। मुझे देखकर कहा, “अरे आप कहाँ चले गये थे, हम लोगों को कोई सूचना भी न दिया?”

मैंने कहा, “यहाँ पर मन न लगा। इसलिए मैं चला गया।” उनकी आँखों में प्रेम के आंसू आ गये वे बोलीं, “यहाँ आप किस काम के लिये रहते? आप की सेवा करने वाले तो बहुत होंगे।” फिर हम लोग अन्दर हाल में गये, वहाँ कुछ देर बैठे, माता जी का मुख बहुत प्रेम पूर्ण था।

थोड़ी देर में वे कहने लगी, “गुजराती भजन की चाल कैसी है? मुझे सुनने की इच्छा है।”

मैंने कहा, “गुजराती भजन बहुत मधुर होता है, सुनाऊँ?”

उन्होंने कहा, “हाँ”। एक दो दौड़ कर मंजीरा ले आये, परन्तु उस समय माता जी ने कहा कि अभी सब लोगों के भोजन का समय हो गया है मुझे भी ये लोग बुलायेंगे उठकर जाना पड़ेगा।

मैंने कहा, “अधिक देर न लगेगी। फिर भी आप भोजन कर आइये तब तक बैठा हूँ। बाद में सुनाऊंगा।”

भोजन के उपरान्त वे फिर आयीं और कहा, “अब सुनाइये।” मैं गाने लगा।

“सकल ऋष्टि नुं मधुलई ने नन्यूमहारी भानु मुख,
प्रेमलई ने सफल स्टष्टि नुं प्रकट थयुं ए पुण्य-प्रफुल्ल”।

इत्यादि गीत उन्होंने बहुत पसन्द किया उधर बैठी बहनों को लिख लेने को कहा मैंने कहा फिर आऊंगा तब लिख लीजियेगा, परन्तु माता जी

भजन गाया। फिर सब लोग इधर उधर चले गये, वहां पर एक की आज्ञा से बहनों ने तुरन्त लिख लिया। उसके बाद मैंने एक दूसरा भजन गाया। फिर सब लोग इधर उधर चले गये, वहां पर एक अंगरेजी महिला थी, वह श्री अरविन्द महर्षि के पास कुछ दिन रहीं थीं। आनन्दमयी माता के पास उन्हें बहुत अच्छा लगता था। उन्होंने भी मेरे भजन सुने उसको बहुत पसन्द आये। मैंने उनका हिन्दी अनुवाद करके उनका अर्थ समझाया। उसने कहा आपके भजन बहुत सुन्दर हुये। तब से उस बहन का प्रेम मेरे प्रति बढ़ गया।

सायंकाल को हम लोग धरमपुर वापस आगये। फिर पं० श्री हरदेव शर्मा जी के आग्रह के कारण मैं कुछ दिन सोलन में उनके पास रहा। वहां माता जी से भी मिलता था। उनसे व्यक्तिगत रूप से मिलने की इच्छा तो उनसे प्रथम संवाद के उपरान्त समाप्त हो गयी थी, यूं कहिये कि शान्त हो गयी थी।

माता जी स्वयं महान् हैं। उनका प्रेम, आनन्द, भाव और उनका निराभिमान होना सब बहुत ही प्रशंसनीय है, पहिली बार देखते ही आप कह देंगे कि वे एक महान् योगिनी हैं, भारत की महान् आध्यात्मिक विभूतियों में उनका स्थान उच्चकोटि का है और सदा रहेगा इसमें लेश मात्र भी शंका नहीं।

सोलन की विशेष स्मृति

सोलन में माता आनन्दमयी के सान्निध्य में जो दिन बीते वे वास्तव में आनन्द से परिपूर्ण थे। उन दिनों की स्मृति होने पर आज भी हृदय गद्गद् हो जाता है।

उस समय की मेरी दशा कैसी थी ? लगभग २५ वर्ष की अवस्था का एक महत्त्वकांक्षी, उत्साही, हिम्मती नव युवक की कल्पना ठीक होगी। कन्धे पर खादी का थैला लटका कर, हाथ में पीतल का डब्बा लेकर, मैंने आनन्दमयी माँ के आश्रम में प्रवेश किया, प्रातःकाल का समय था माता जी ध्यानादि में थीं। उनके कमरे के किवाड़ बन्द थे। मैं बाहर बैठ गया। उस स्थान से ऊँचे-ऊँचे पर्वतों का दृश्य बड़ा ही रमणीक था, वातावरण अत्यन्त आकर्षक और सुन्दर था।

थोड़ी देर के बाद वहाँ पर एक और सत्संगी व्यक्ति आये। वे माता जी के सत्संग का लाभ लेने कलकत्ते से आये थे। उनसे मैंने माता जी का समाचार पूछा। थोड़ी बातचीत के उपरान्त मैंने उनसे पूछा—
“आप यहां सत्संग करने आये हैं ?”

उन्होंने मुझे बड़े गौर से देखकर कहा, “मैं लड्डू खाने आया हूँ।”
वे यह समझते थे कि मेरे समान नवयुवक इधर प्रसाद खाने ही

आया करते होंगे, अस्तु मुझे लक्ष्य करके इस प्रकार का व्यंगात्मक उत्तर दिया फिर वे अंगरेजी में इधर उधर की बात करने लगे । मैं उन्हें हिन्दी में उत्तर देने लगा ।

वे बोले, “अंगरेजी में बात करिये अंगरेजी भाषा बहुत अच्छी है ।”

मैंने कहा, “अंगरेजी के स्थान पर मुझे हिन्दी में बोलना अधिक अच्छा लगता है । अंगरेजी का ज्ञान बहुत थोड़ा है बहुत कुछ भूल गया हूँ । उन्होंने मुखाकृति कुछ भिन्न करके कहा, “भूल गये हैं ?”

“यह कैसे ? आप तो सभी भूल जायेंगे ! ”

“ भूलने वाली वस्तु को यदि भूल जाय तो कोई आपत्ति नहीं है” मैंने उत्तर दिया—“ यदि केवल प्रभु की प्राप्ति की याद रह जाय और बाकी सब भूल जाय तो भी कोई हानि नहीं । प्रभु की कृपा या आत्मा की उत्पत्ति के मार्ग में भाषा के ज्ञान भण्डार की कोई आवश्यकता नहीं, उसमें तो पवित्र हृदय, सद्गुण और प्रेम की आवश्यकता है । रामकृष्ण परमहंस देव का नाम तो आपने सुना होगा । वे अंगरेजी नहीं जानते थे । उनके महात्मा होने में क्या अंगरेजी के ज्ञान की आवश्यकता थी ?”

उनको कुछ क्रोध आ गया और आवेश में आकर वे बोले—“परन्तु सब तो परमहंस देव नहीं बन सकते ? वैसे पुरुष तो अरबों में एक ही प्रायः निकलते हैं ।”

“यदि प्रभु की इच्छा हो तो, उनकी कृपा से कोई भी वैसी उत्तम अवस्था प्राप्त कर सकता है, उसमें शंका नहीं ।”—मैंने कहा ।

वे चुप हो गये परन्तु मेरी बात कुछ उनके पसंद न आयी । थोड़ी देर बाद वे कहने लगे, “आपको यहां कैसे अच्छा लगेगा । यहां पर तो बी० ए० और एम० ए० पास बड़े घरों की कितनी लड़कियाँ हैं ।”

मैंने कहा—“आपको अच्छा लगता है तो मुझे क्यों न लगेगा ? मुझे लड़कियों से क्या काम ? मुझे तो माता जी से सरोकार है। बी० ए० व एम० ए० पढ़ी लड़कियों को मैंने भी देखा है उनसे आप क्यों घबड़ाते हैं ?”

इस प्रकार की बातचीत में ९ वज गये। माता जी के कमरे का द्वार खुला, उन्होंने उसी सत्संगी महाशय को मेरी व्यवस्था करने का आदेश दिया। माता जी का मेरे प्रति प्रेम देखकर उनको कुछ आश्चर्य हुआ। उनके साथ मैंने ठहरने के स्थान पर जाने के लिए विदा ली। रास्ते में यह विचार आया कि इस भद्र पुरुष ने काफी समय के सत्संग का कैसा सार ग्रहण किया है ? यदि किसी को नम्रता व मानवता से व्यवहार करना भी न आ सका तो उसका सत्संग सब व्यर्थ हो गया, उसने अपना अमूल्य समय बेकार गंवाया।

[२]

इतने में यदि उन महाशय की स्मृति पूरी हो जाती तो कोई बात न थी। उनकी माला में अभी तक एक दो दाने और पिरोने थे। भोजन करते समय और लोगों के साथ वे भी परोसने लगे। माता जी का प्रसाद परोसने का काम उनका था। भक्तों और प्रेमी भाइयों को प्रसाद देते-देते वे मेरे पास आये। मैंने “ना” कह दिया इस पर उन्होंने बड़ा आश्चर्य प्रगट किया। “सब प्रसाद लेते हैं और आप ‘ना’ करते हैं। यह तो माता जी का प्रसाद है, बड़ा पुण्यदायक है। सब पाप को दूर कर देगा इसका मूल्य कुछ कम नहीं है।” मैंने कहा—“आप की बात ठीक है मैं उसे समझता हूँ परन्तु इस बात में जबरदस्ती करने की कोई आवश्यकता नहीं है। प्रसाद लेने की उपयोगिता बताना और जो न ले उस पर क्रोध करना यह उचित नहीं। प्रसाद देने का आपको अधिकार है, उसका सिद्धान्त समझाने का और उसके लाभ का वर्णन

करने का आपका हक है परन्तु उसके लेने न लेने का निर्णय करने की सबको स्वतंत्रता है। यह बात तो आप समझते होंगे।”

मैंने प्रसाद नहीं लिया अतः उनका दिमाग फिर गया। उनको शान्त करने के लिए मैंने कहा—“माता जी का प्रेम भाव चाहिए प्रसाद की यह पद्धति मुझे ठीक नहीं लगती इसीलिए मैंने प्रसाद नहीं लिया है आप बुरा न मानियेगा।” सम्पूर्ण मण्डली में यह बात कहने वाला अकेला मैं ही था। इसलिए सब मेरी ओर देखने लगे।

[३]

प्रतिदिन प्रातःकाल ९ से १२ बजे तक माता जी का सत्संग चलता था, इसका उल्लेख मैं प्रथम कर चुका हूँ। इसी समय के मध्य में हरिबाबा माता जी का जीवन चरित्र बंगाली भाषा में पढ़ते और उसका हिन्दी में अनुवाद कर समझाते थे। माता जी बीच-बीच में आवश्यकतानुसार अपनी स्मरण शक्ति से कोई-कोई बातें समझाती थीं। मेरा स्वभाव कुछ संकोचशील था अतः उस समय मैं मकान के बाहर वाले छज्जे पर बैठकर ध्यानादि में समय बिताता। एक दिन मैंने माता जी से कहा—“सुबह जो सत्संग होता है क्या उसमें मैं बैठ सकता हूँ?” सत्संग अंतरंग मनुष्यों के लिए होगा, इसी विचार से मैंने ऐसा कहा।

माता जी कुछ सोच में पड़ गयीं उन्होंने कहा, “आप हरीबाबा से पूछिये वे आज्ञा दें तो बैठ जाइयेगा।” मुझे कुछ आश्चर्य हुआ। यह सत्संग माता जी का है न कि हरीबाबा का फिर इसमें बैठने के लिए हरीबाबा से क्यों पूछा जाता है? फिर भी मैंने हरीबाबा से बातचीत की प्रथम में उन्होंने ठीक तरह से बात न की परन्तु अन्त में उन्होंने आज्ञा दे दी। बाद में मुझे ज्ञात हुआ कि पहले अनेकों मनुष्य बिना प्रवेश पत्र के सत्संग में आते थे तब कोई आपत्ति नहीं करता था तो

अब मेरे लिए हरीबाबा ने इतना गंभीर रूप क्यों दे दिया है ? यह बात मैं समझ न सका । माता जी का मेरे प्रति विशेष आकर्षण देखकर हरीबाबा भी मुझसे प्रेम करने लगे थे और वे सत्संगी महाशय भी स्नेह दिखाने लगे थे । यह प्रसंग छोटा व साधारण अवश्य है परन्तु उसकी छाप वैसी की वैसी ताजी रह गई है ।

[४]

संत शरणानन्द जी से उन्हीं दिनों परिचय हुआ था । वे माता जी के पास प्रति दिन आते थे । वे प्रज्ञाचक्षु थे । उनकी वाक् छटा और विद्वत्ता अच्छी थी । कभी-कभी हम लोग सोलन पर्वतीय प्रदेश में बड़ी देर तक साथ-साथ घूमते रहते थे । उनकी नम्रता और सरलता की छाप मेरे ऊपर बहुत अच्छी पड़ी थी ।

देवप्रयाग में दीक्षा तो मिली थी परन्तु उसके द्वारा कोई परिणाम नजर न आता था । इसी की पिपासा उन दिनों बहुत थी । रात्रि का सब समय प्रार्थना और वेदना में व्यतीत हो जाता था । उस समय ध्येय को प्राप्त करने की लगन वास्तव में बड़ी विचित्र थी । उसका अवलोकन करने से मुझे इस बात का सन्तोष होता था कि जीवन की प्रत्येक क्षण मैं यथार्थ रीति से यापन करता हूँ । और यथार्थ रीति से जीने का प्रयास करता हूँ । मैं अपनी अन्तरात्मा की आवाज के अनुसार चलता रहा हूँ । उसकी स्मृति से मुझे वास्तव में आनन्द होता है । हिमालय की इस पुण्य भूमि में बैठकर भूतकाल के उन दिनों का चित्र तटस्थ रूप से देख रहा हूँ । ऐसा विचार करते-करते यह आभास होता था कि मैं कोई पुण्य प्रवास या महान यात्रा में निकला हूँ ।

जीवन के मंगल की यात्रा । पूर्णता की प्राप्ति का पुण्य प्रवास ।

चेल का महात्मा

हिमालय के विख्यात हिल स्टेशन शिमला के मार्ग में एक चेल नामक स्थान है। वहाँ पर पटियाला स्टेट का ग्रीष्मकालीन निवास स्थान था। उत्तुंग और रमणीक पर्वतमाला पर बसे हुये चेल नगर से प्रायः ४ मील दूर एक गाँव था। वहाँ एक महात्मा पुरुष रहते थे। लोग उनको “भगत” कह कर पुकारते थे। वे गृहस्थाश्रम में थे, उनके दो पत्नियां थी, जो उसी गाँव की थीं। माता आनन्दमयी का प्रसंग पूरा होने के उपरान्त, हम लोगों ने उनके दर्शन करने का निर्णय किया। यह निर्णय उन क्षय रोग से पीड़ित सिंधी सेठ के विशेष आग्रह के कारण था। सेठ जी का रसोइया पर्वती प्रदेश का था, वह उस ओर के मार्गों से परिचित था, अतः उसे साथ लेकर हम लोग निकले।

धरमपुर स्टेशन बहुत छोटा है। स्टेशन पर पहुंचने के समय कोई विशेष भीड़ न थी। लोग ट्रेन की प्रतीक्षा में इधर उधर खड़े थे। थोड़ी दूर प्लेटफार्म के दूसरे सिरे पर एक भगवा वस्त्र धारी साधु अंगड़ाई ले रहे थे। उनकी गतिविधि पागलों के समान थी। रसोइया ने, पूछते ही तुरन्त कहा, कि वह साधू नहीं है वह तो कोई खुफिया पुलिस का आदमी है। आजकल ऐसे मनुष्य बहुत फिरा करते हैं। गुप्त रीति से

यदि कोई पता लगाना हुआ तो ये लोग उसका पता लगा कर सरकार को सूचित कर देते हैं। इतनी देर में ट्रेन आ गयी।

प्रातःकाल का लगभग सात बजे का समय होगा। गाड़ी में बिल्कुल भीड़ न थी हम लोगों ने अन्दर प्रवेश कर अपना स्थान ले लिया। उसी समय वह पागल सदृश साधू मेरे डिब्बे के पास आ पहुँचा। हाथ से अधजली सिगरेट फेंक कर उन्होंने अपना मुँह साफ किया, फिर मेरी ओर देखकर ऐसे मुस्कराया कि मानों वह भली प्रकार से मेरा पूर्व परिचित हो। उसने बड़े धीमें और मधुर शब्दों में मुझसे पूछा, “वयों कहां जा रहे हो?” इस कल्पनातीत प्रश्न से मुझे आश्चर्य हुआ, रसोईया भी बड़े आश्चर्य से उनकी ओर देखने लगा। बिना किसी उत्तर के मैं भी उनकी ओर देख कर मुस्कराया। उन्होंने मेरे उत्तर की कोई प्रतीक्षा न की और वे कहने लगे, “चेल के महात्मा के पास जाते हो, मुझे पता है, वहां कुछ भी नहीं है आपको अपने अन्दर से सब कुछ मिल जायगा शान्ति, शक्ति, सिद्धि, जो मागों सो सब।”

मैंने कहा, “यह तो ठीक है। पर मैं तो वहां क्या है? और कैसा है? यही देखने जाता हूँ।”

गाड़ी चल दी, वे मुस्कराये और मुझसे विदा ली। अन्त में चलते-चलते कह गये, “आप अपने अन्दर श्रद्धा रखिये महात्मा जी। आपको सब कुछ मिल जायगा।”

[२]

इस साधु पुरुष के सम्पर्क और शब्दों से मैं बड़ा प्रभावित हुआ। उस ओर के तमाम लोगों में चेल की महात्मा की बहुत बड़ी ख्याति है। ट्रेन से अनेकों व्यक्ति उनके दर्शनार्थ जाते हैं, गाड़ी में भी बैठे हुये मनुष्य उनकी चर्चा करते रहते हैं। किसी का रोग उनके कहने से दूर हो

गया तो किसी को सन्तान न थी, उन्होंने आशीर्वाद देकर उन्हें पुत्र दिया, ऐसी कितनी बातें जगह-जगह पर होती जाती थी। रोग निवारण और सन्तान दो मुख्य विषय थे, जिनकी चर्चा आशीर्वाद के फल स्वरूप अधिक थी, परन्तु इतने पर भी उस साधु पुरुष ने जो शब्द कहे थे वे वास्तव में कीमती और हृदय में उतर जाने वाले थे। मैंने विचार किया कि चेल के महात्मा चाहे जैसे हों उनके दर्शन तो अवश्य किये जायेंगे, परन्तु जिस साधु ने वे शब्द कहे थे वह कुछ कच्ची मिट्टी का मनुष्य या साधारण साधु नहीं था वह भी वास्तव में महान् और अनुभवी ज्ञात होता था। उसके बिना इस प्रकार की महत्व की बात, मार्ग दर्शन, और मंगलवाणी उनके मुख से निकल नहीं सकती थी। उस वाणी की महिमा बड़ी है अतः वह माननीय है। श्रेयार्थी साधक या अपने विकास की इच्छा करने वाले को समझ लेना चाहिये कि परावलम्बन एक प्रारम्भिक सीढ़ी है परन्तु उसकी आवश्यकता सदा नहीं रहती जिसको आगे बढ़ना है उसे अन्त में तो अपने ही पैरों पर खड़ा होना सीखना पड़ेगा। उसे अपने पुरुषार्थ या आत्मबल पर विश्वास रखकर आत्मा या परमात्मा की आवाज का अनुसरण कर, आगे चलना होगा, और अपनी पूंजी बढ़ाकर उसमें से ही पोषण करना होगा। परावलम्बन और वह भी सदा के लिए साधक को शोभा नहीं देता, यह दुर्गुण है। भूषण नहीं दूषण है एक दो दिन में अपने व्यक्तित्व में विश्वास जगाने और उसके आधार पर आगे बढ़ने का काम यदि असंभव नहीं तो कठिन अवश्य है, ऐसा हो सकता है कि प्रारम्भिक अवस्था में अपने बल पर चलने में कुछ न सूझे, तो उस समय किसी की सहायता की आवश्यकता पड़े इतनी सहायता निरर्थक अथवा मिथ्या नहीं है, परन्तु सदा के लिये उसके आश्रित बन जाना और उसकी इच्छा रखना बाधक है। साधना करने वाले को यह महत्वपूर्ण विषय भली भाँति समझ लेना चाहिये।

ऐसा विचार आता है कि यदि उस महात्मा के पास कुछ समय अधिक बैठने का अवसर मिलता या उसके हृदय के प्रकाश को देखने का

कुछ और समय मिलता तो उससे अत्यधिक ज्ञान प्राप्त होता और उसके सम्पर्क से आध्यात्मिक जीवनमुक्त पुरुषों के अमर इतिहास में एक प्रकरण और बढ़ गया होता। मैंने अपने जीवन में तीन या चार ऐसे त्रिकालज्ञ ज्ञानी या अनुभवी पुरुषों को देखा है, और जब भी उनकी याद आती है तब मेरा अन्तस्तल प्रसन्नता से आप्लावित हो जाता है। भारत में अब भी प्राण है। महापुरुषों की कमी इस धर्मपरायण और साधना सम्पन्न देश में आज भी नहीं है। कैसे-कैसे त्यागी, विचारक, साधक और अनुभवी सिद्ध पुरुष आज भी इस देश में विराजमान हैं। भारत तेरे चरणों में मेरा मस्तक नम जाता है।

[३]

गाड़ी दौड़ती जाती थी। थोड़ी देर बाद में कण्डा घाट आ गया। शिमला यहां से थोड़ी ही दूर है। कण्डा घाट से चेल तक यातायात मोटर बस द्वारा था परन्तु गाड़ी देर से पहुंची और मोटर चली गयी अतः हम लोगों को पैदल जाना पड़ा। पर्वत की चढ़ाई बड़ी कठिन थी दशरथाचल की याद आ जाती थी। उत्साह और हिम्मत से कुछ मील चल कर हम लोग भगत जी के पास पहुंच गये। संत पुरुषों के दर्शन और मिलन के लिए उमंग होने के कारण, पर्वतीय प्रदेश की कठिन व लम्बी यात्रा समाप्त हुई। संत समागम के लिए ऐसे उत्साह और उत्कंठा की आवश्यकता है। उसके बिना कुछ भी नहीं बनता।

भगत जी की मूर्ति बड़ी आकर्षक है परन्तु प्रथम दृष्टि में कुछ कम सात्विक जान पड़ती है। लम्बे बाल, सुन्दर व गौर मुखाकृति, रेशमी वस्त्र व शान्तिमय नेत्र उनकी विशेषता थी। फूलों के कुञ्ज में परिवेष्टित मकान के बाहर बैठ कर वे नवागन्तुक को आशीर्वाद देते थे। साथ में मोरछल रहता था। आस पास भक्तगण खड़े रहते थे और व्यवस्था करते थे। पर्वतों के बीच अनजान इस छोटे से गांव में इस महापुरुष के

दर्शन के लिए लोग हमेशा आया जाया करते थे। अधिकांश लोग पंजाब के होते थे। भगत जी के सामने बड़ी जनसंख्या बैठी थी फिर भी अच्छी शान्ति थी। एक एक मनुष्य वारी वारी से उनके सामने आता जाता था और उसे वे आशीर्वाद देते थे। वे आशीर्वाद में केवल दो बातें कहते थे। “महात्मा का भजन करो, भगवान का भजन करो, इच्छा पूरी होगी।” दूसरे से कहते, “महात्मा का सुमिरन करो, भगवान का भजन करो, रोग दूर होगा।” अधिकांश लोग इन दो इच्छाओं को लेकर इनके पास आते थे और यही दो तरह के इनके आशीर्वाद के वाक्य थे।

सन्तान प्राप्ति और रोग निवारण का योग यदि किसी को न हो तो भगत जी बता देते थे। वे अधिक बात नहीं करते थे और स्वयं कोई भेंट नहीं लेते थे। यदि किसी की इच्छा की पूर्ति न हुई तो वह फिर से आशीर्वाद लेने आता था। भगत जी सबको दो तीन वाक्यों में ही निपटा देते थे। स्वाभाविक है कि इस प्रकार से उनका प्रभाव लोगों पर अच्छा पड़ता था। यदि कोई परिचित व्यक्ति उनकी स्त्रियों को मकान में जाकर कोई भेंट देता था तो वे उसे स्वीकार कर लेती थीं। किसी प्रकार की जबरदस्ती या प्रलोभन की वृत्ति का सर्वथा अभाव था। जो भी था वह बहुत सुन्दर था। ऐसा कहा जाता है कि एक महापुरुष कभी इस गांव में आये थे भगत जी ने उनकी बड़ी सेवा श्रुश्रूपा की। विदा होते समय उसने प्रसन्न होकर भगत जी को आशीर्वाद दिया, जिससे उनको दूसरे के मन की बात जानने की और वाक्सिद्धि की शक्ति प्राप्त हो गयी। उसका सदुपयोग कर वे लोगों को सहायता कर रहे थे।

[४]

मेरी कल्पना कुछ और ही थी, मैं समझता था कि चेल में कोई साधु महात्मा होंगे। अनुभवी होंगे, अथवा कोई योगी होगा। परन्तु वहां तो दृश्य दूसरा था। भगत जी करें भी तो क्या करें? लोग दोनों

समय आते थे, यदि कहीं भगत जी उनको लौकिक सहायता अथवा रोग निवारण के आशीर्वाद न देते तो लोगों का आना जाना ही क्यों होता और तब केवल आत्मोन्नति के जिज्ञासु ही उनके पास आते परन्तु भगत जी को वही ठीक लगता था, इस विषय में क्या कहा जाय ? प्रत्येक पुरुष को उसके दृष्टिकोण से सहानुभूति के साथ समझने का प्रयास करना ही उचित है ।

तुलसी या संसार में, भांति भांति के लोग ।
सबसों हिलमिल चालिये, नदी नाव संयोग ॥

[५]

एक महापुरुष से ज्ञात हुआ कि भगत जी उस वाक्-सिद्धि और भीड़ से कष्ट में आकर उकता गये हैं, उन्होंने यह भी कहा कि भगत जी ने उनके पास संदेश भेजकर पूछा था कि ऐसे समय क्या करना चाहिये। उत्तर में महापुरुष ने कहा—“जो बोया है उसे काटना ही पड़ेगा पहिले से क्यों नहीं संभाला ?” यदि यह बात भगत जी की सत्य मानी जाय, सत्य निश्चय होगी, क्योंकि अकारण वे महापुरुष असत्य क्यों बोलेंगे, तो यह सिद्ध होता है कि भगत जी का वह कार्य क्रम प्रथमता लोक कल्याण की भावना से आरम्भ न हुआ था क्योंकि कल्याण की सच्ची भावना कभी किसी को कष्ट नहीं देती। भगत जी की उस प्रवृत्ति के पीछे कोई कामना निहित थी। कभी-कभी यह देखने में आता है कि साधारण सेवा भावना वाले मनुष्य बाद में कारण वश कष्ट पाने लगते हैं परन्तु वहाँ पर सेवा की भावना उसका कारण नहीं होती वास्तव में मनुष्य ही उसका कारण होता है ।

भगत जी की पद्धति में निश्चयात्मक सेवा है। बहुत है। अपने अपने तरीके से दूसरों के लिए उपयोगी होना सेवा ही है। परन्तु

मेरे दृष्टिकोण से अकेली ऐसी सेवा बहुत उपयुक्त नहीं है यदि उसके साथ कोई क्रियात्मक उपाय भी सम्मिलित हो तो बहुत लाभ हो सकता है। जैसे रोग निवारण के आशीर्वाद के साथ-साथ नियम के पालन का प्रतिबन्ध भी यदि दिया जाय तो अधिक लाभ होने की सम्भावना है। अमुक नियम लेना और उसका पालन करना आत्मिक उत्थान की औषधि होगी। उस प्रकार लौकिक सेवा के साथ-साथ दूसरे की आत्मिक सेवा भी हो सकती है।

भगत जी फिर भी बड़े निस्पृह लगते थे, और उन्होंने अपने कार्यों द्वारा लोगों पर अच्छा प्रभाव डाला था इसी कारण से उस तरफ उनकी ख्याति बहुत अच्छी थी।

[६]

भगत जी के यहां का जन समुदाय क्रमशः विदा हुआ। अंत में मेरे साथ के रसोईदार की बारी आयी। भगत जी ने उससे आने का कारण पूछा परन्तु रसोइया ने दूसरी युक्ति निकाली उसने कहा, “आपतो सब जानते हैं।” इतना कह कर वह सामने हाथ जोड़ कर बैठ गया। भगत जी तुरन्त बोल उठे, “आपके सेठ बीमार हैं। ठीक है न ? भगवान का भजन करिये, महात्मा का भजन करिये, बीमारी दूर हो जायगी, परन्तु कुछ देर लगेगी।”

भगत जी की शक्ति का विश्वास करने के लिए यह प्रसंग काफी था। सेठ जी की बीमारी का हाल वे स्वयं अपने आप जान गये थे। पास में मैं बैठा था मुझसे कहा, “आपको क्या चाहिये ?”

मैंने सोचा यदि बात चल गई तो अवसर का लाभ उठाया जाय मैंने कहा, “दीक्षा की आवश्यकता है। यद्यपि मिल गयी परन्तु उसका कोई निश्चित परिणाम नज़र नहीं आता।”

“दीक्षा हो जायेगी, अवश्य हो जायगी।” वे बोले, “सब चिन्ता दूर हो जायगी।”

आधा घन्टा बाद हम लोग विदा हुये। भगत जी ने बहुत कहा मगर रुकने की कोई इच्छा न थी। पैदल कण्डा घाट तक चलकर रात की ट्रेन से हम लोग धरमपुर पहुंच गये।

उस महापुरुष की वाक्सिद्धि से अथवा अपनी अंतरंग साधना के कारण जो भी हो, दूसरे दिन जब मैं चम्पक भाई के पास बैठा था तब वहीं पर लगभग सायंकाल के चार बजे, मेरे बायें कान में घंटा का नाद प्रारम्भ हुआ। दीक्षा के परिणाम स्वरूप ऐसा नाद हो सकता है। प्रथम बायें फिर दाहिने कान में उस नाद को सुना बाद में वह बराबर चालू रहा। अनवरत दिन रात चलता रहा। उसकी सहायता से समाधि में प्रवेश सरल हो गया।

उस प्लेटफार्म पर मिले साधू की रसोइया ने बड़ी खोज की परन्तु वह न मिला। उसकी याद आज भी आती है और रहेगी। भगत जी को भी नहीं भूला जा सकता है कैसे भूला जाय ? भारत में जो नानाप्रकार के महात्मा पुरुष हैं उनमें भगत जी की भी एक विशेषता है।

• • •

हनुमान दर्शन और मेरा ही दिव्य दर्शन

नादानुसंधान एक स्वतंत्र साधना है। किसी सिद्ध महात्मा द्वारा दीक्षा प्राप्त करने के उपरान्त जागृति दशा में कान में नाद आरम्भ होता है, वह नाद सामान्य रूप से पहले बाये कान में फिर दांये कान में होने लगता है। पहिले वह शब्द जोर पकड़ता है फिर धीरे धीरे धीमा होने लगता है। आगे चल कर अधिकांश दाहिने कान में चालू रहता है उसके अन्दर वृत्ति का अनुसंधान करने से तुरन्त एकाग्र हो जाता है और समधि अवस्था सरलता से प्राप्त हो जाती है।

योग के ग्रंथों में १० प्रकार के नाद का वर्णन है। यह सत्य है इस प्रकार के नाद मैंने भी सुने हैं। भारत में नाथ सम्प्रदाय तथा कबीर और राधा स्वामी जैसे दूसरे सम्प्रदायों में नाद का महत्व बहुत अधिक है। नाद का वर्णन उपनिषद में भी आया है।

नाद चालू होने से साधना का काम सरल हो जाता है परन्तु साधक को चालू हुये नाद का यथा सम्भव लाभ उठाकर ध्यान करने की आवश्यकता है तभी उसका सदुपयोग होगा। निस्सन्देह नाद बहुत उपयोगी वस्तु है मुझे उसका अनुभव भी हो गया उससे मेरे आज तक के आध्यात्मिक अनुभव में बहुत उन्नति हुई। साधना की इस महत्वपूर्ण प्रवृत्ति का मुझे परिचय मिला।

चेल से वापस आने के बाद नाद प्रारम्भ हो गया था उससे बहुत आनन्द होता था और ध्यान में एकाग्रता शीघ्र हो जाती थी। इसी समय के अन्तरगत एक विचित्र अनुभव हुआ।

१७ जून १९४६ ई० का दिन था। मैं ध्यान में बैठा था। अचानक शरीर भान समाप्त हो गया। इस अवस्था में कोई साधारण मानव दिखाई दिया। परन्तु वह आकृति अधिक देर तक न ठहरी और उसमें से हनुमान जी प्रगट हुये। वे हाथ जोड़े खड़े थे उनकी दृष्टि मेरी ओर स्थिर थी। मुख मण्डल बड़ा तेजस्वी और लाल था। जिस प्रकार चित्रों और मूर्तियों में देखने को मिलता है उसी प्रकार का उनका मुख था, शरीर बड़ा हृष्ट पुष्ट था इस दर्शन को प्राप्त कर मुझे बड़ा आनन्द हुआ। मुझे हनुमान जी के प्रति पूज्य भाव था और है। वे “परम भक्त” विख्यात हैं और अनेकों लोग उन्हें उपास्य मानते हैं। उनकी कृपा के बिना उनका दर्शन एक क्षण के लिए भी किसे हो सकता है ?

उन्हीं दिनों एक दूसरा विचित्र अनुभव हुआ था। एक बार ऐसी ही देहातीत दशा में मेरा अपना ही स्वरूप मुझे दिखाई दिया। उस समय मेरे दाढ़ी थी। परन्तु जो रूप दिखाई पड़ा उसमें दाढ़ी न थी। मुख और शरीर बहुत तेजोमय और गौर था। स्वच्छ श्वेत वस्त्र पहने था एवं ध्यान मुद्रा में पद्मासन लगाये बैठा था, मुख पर पूर्ण शान्ति विराजमान थी।

इस अनुभव के कारण मेरे मन में एक विचित्र भाव आया इस प्रकार का दर्शन मुझे दो तीन बार हुआ है। मेरी समझ में सिद्ध पुरुष सूक्ष्म शरीर से इसी प्रकार के तेजोमय स्वरूप में रहते होंगे। मानव को पूर्ण मुक्त होने से इसी प्रकार की तेजोमय दशा की प्राप्ति होती होगी जहाँ व्याधि नहीं, शोक नहीं, मृत्यु नहीं, पूर्ण शान्ति, आनन्द पूर्णता और

अमरता है। उस पद की प्राप्ति के बाद मानव की ऐसी ही अलौकिक स्वरूपावस्था हो जाती होगी।

अपने स्वरूप का इस प्रकार का दर्शन प्रतीक दर्शन कहलाता है। साधना में इस प्रकार के दर्शन बहुत होते हैं। कितने तो इतने विचित्र होते हैं कि उनका वर्णन भी नहीं किया जा सकता है। वह केवल अनुभव की वस्तु है परन्तु एक बात निश्चित है कि इस मार्ग में किसी को भी निराश होने की आवश्यकता नहीं। हिम्मत कर श्रद्धापूर्वक आगे बढ़ते रहना चाहिये। यदि साधना अखण्ड हुई तो अनेकों अनुभव प्राप्त होंगे। परन्तु किसी भी प्रकार के अनुभव में अटक जाने के बदले उसे गौण मान कर आगे चलते जाना चाहिये जब तक प्रकाश का पंथ पूरा-पूरा न प्रगट हो जाय। भ्रान्ति पूर्ण आत्म संतोष साधना का ही नहीं अपितु विकास का भी बाधक है। यह बात सभी प्रकार के साधकों को अनिवार्य रूप से समझना चाहिये।

• • •

शिमला और नेपाली बाबा

धरम पूर के निवास काल में साधना बहुत सुन्दर रूप से चलती थी। एक समय देहरादून के प्रेमी और योगी श्री भैरव जोशी धरम पूर आये। उनको उसी सिंघी सज्जन ने आमंत्रित किया था।

हम दोनों सेनीटोरियम में रहते थे, परन्तु यह वहाँ के सर्वसत्ता-धिकारी पारसी डाक्टर को अच्छा न लगता था। फिर भी हम लोगों के साथ उनका व्यवहार एक सद्गृहस्थ जैसा था। हम लोगों की उपस्थिति में वे कुछ न कहते थे, परन्तु बाद में चम्पक भाई से कहते, “अभी तक तो एक ही महात्मा थे अब सेठ जी ने और दूसरा बुला लिया, सेनीटोरियम में यदि महात्मा लोग रहने लगे तो फिर हो गया हम लोगों को कौन पूछेगा?” चम्पक भाई क्या उत्तर देते, परन्तु मैं डाक्टर की भावना को समझ सकता था। सेनीटोरियम में रोगी को जीवन की आशा के लिए यदि महात्माओं की सहायता की इच्छा हो और यदि उससे लाभ हो, तो डाक्टर की आमदनी का साधन कम हो जायगा, यदि ऐसी विचारधारा है तो डाक्टर को अधिक लाभ किसमें है? दवाखाना या अस्पताल में रोगी मरते रहने में या रोग से विनिर्मुक्त होकर दवा की आवश्यकता से परे हो जाने में?

दुर्भाग्य से जीवन के कितने ही क्षेत्रों में हम लोग मानव के हित की दृष्टि बजाय धन कमाने की ही दृष्टि अधिक रखते हैं। उसी से

हम लोगों में सेवा, प्रेम और सहकारिता के तत्व कम हो गये हैं।

डाक्टर की चिंता अधिक दिन तक न चली कारण कि हम लोग— मैं व जोशी जी—शिमला जाने वाले थे। शिमला जाने के बाद उसके बर्फीले-प्रदेश देखने का विचार था, और शिमला में जोशी जी के सम्बन्धी भी रहते थे उनसे भी भेंट करना था। इन दोनों कारणों के अतिरिक्त एक और ईश्वरीय हेतु इस प्रवास के पीछे था जिसकी हम दोनों को खबर न थी। ईश्वर के ऐसे कितने ही अगम्य कारण मनुष्य को कब अवगत होते हैं ?

धरमपूर से मोटर द्वारा एक बहुत लम्बा प्रवास कर हम लोग शिमला पहुंचे, वहाँ से केथ्यू गये। केथ्यू शिमला का एक सुन्दर व एकान्त स्थान है। जोशी जी के सम्बन्धी यहीं रहते थे। हम लोगों ने वहाँ ठहरकर पहला काम मार्ग श्रम दूर करने का किया। शिमला के विशाल पर्वत, नेत्रों के सम्मुख उपस्थित थे, यहाँ के पर्वत सुन्दर और हरियाली से परिपूर्ण थे। गायें भी बहुत काफी थी। शिमला के जीवन के साथ यहाँ के जीवन की तुलना में वैभव के साथ हृदयद्रावक दरिद्रता की उपमा अनुपयुक्त न होगी। भारतवर्ष में जहाँ जहाँ जाइये वहाँ दरिद्रता का दर्शन एक सर्व व्यापक देवता की तरह होता है। देवता शब्द के प्रयोग से किसी को चौंकना न चाहिये क्योंकि देवता अच्छे और बुरे दोनों प्रकार के होते हैं, वे मनुष्य को तारते हैं और मोहान्ध करने का काम भी करते हैं। दरिद्रता के दृश्यों को देखकर मेरा हृदय द्रवित हो जाता है। बम्बई, कलकत्ता, मद्रास, रामेश्वर और शिमला यहाँ तक कि ठेठ बद्रीनाथ तक यह दरिद्रता भारतवर्ष में व्याप्त है, न जाने कब इस देश के लोग सुखी और समृद्ध होंगे वह दिन देखने के लिये मैं बड़ा व्यग्र हूँ। जब कि प्रत्येक को पूर्ण अन्न, वस्त्र और निवास स्थान प्राप्त होगा विद्या के साधन व संस्कार प्रचुर मात्रा में प्राप्त होंगे। तभी यह देश देव प्रिय बनेगा। ऐसी विचारधारा गरीबों की है यह

रोग भयंकर है परन्तु अमीरों का रोग भी कुछ कम भयंकर नहीं उसे तो महा भयंकर कहना चाहिये, यदि संभले नहीं तो मानव उसके पाश में फंस कर मानवता को खो देता है। वैभव का देवता भी यहाँ पर बहुत फैला है और फैलता जाता है। कोई भी देश केवल भौतिक समृद्धि से महान् नहीं कहा जा सकता। मुख्य वस्तु केवल मनुष्य का हृदय है। उसके भौतिक व आध्यात्मिक संस्कार उसे मानव बनाते हैं, इन संस्कारों से मुक्त मानवता के साथ-साथ यदि वैभव विकसित हों, तो उसे देखने को मैं लालायित हूँ। यह योग भारत व समस्त संसार में प्रगट हो, ऐसी इच्छा रखता हूँ। मानव का ऐसा नैतिक आध्यात्मिक विकास भारतवर्ष में था, फिर से वे दिन आयेंगे और विश्व भी इसी मार्ग पर चलेगा, ऐसा मेरा विश्वास है।

[२]

विचारों के उथल पुथल में न जाने कितना समय बीत गया। जोशी जी किसी के हाँथ का भोजन नहीं करते थे, मेरे लिए भी उन्होंने रसोई बना ली। हम लोगों ने भोजन के उपरान्त थोड़ा आराम किया। जोशी जी अत्यन्त प्रेमी थे। वर्षों से गृहस्थ जीवन में रहकर विरक्त पुरुष की तरह साधना करते थे। मैं उनका बड़ा आदर करता था।

दूसरे पहर का समय हो गया था, अभी बात चीत कर ही रहे थे, सहसा द्वार पर नजर पड़ी तो एक विशदकाय तेजस्वी पुरुष सामने खड़े दिखाई दिये। आधी बाहों की रंगीन कमीज, धोती, पैर में चप्पल, हाँथ में लकड़ी, सिर व मुँह साफ बिना बालों का, यदि सुन्दर न कहीं जाय तो भी छोटी और तेजस्वी आँखें और कन्धे पर शाल पड़ा था। वह स्वरूप घर के सभी लोगों से अपरिचित था।

अपना परिचय देने की चिन्ता के बिना, चप्पल उतार कर उन्होंने

नमस्कार किया और हम लोगों के सामने जमीन पर बैठ गये । मैंने दो मिनट बाद पूछा, “आपका परिचय ?” परिचय देने के पूर्व इतना बता देना आवश्यक है कि यद्यपि बाहर से वे साधारण देख पड़ते थे तथापि वे एक बड़े सिद्ध महापुरुष थे, उनका नाम नेपाली बाबा था ।

नेपाली बाबा-२

नेपाली बाबा का परिचय देते हुए मुझे बड़ा आनन्द होता है । इस महात्मा की दशा बहुत ऊंची थी । उस प्रकार के महात्मा भारतवर्ष में शायद ही कोई देखने को मिले । वे स्वयं साधक न थे । साधक दशा को पार कर वे जीवनमुक्त अथवा सिद्धावस्था में प्रतिष्ठित हो गये थे । उनकी सहायता, उनका संग, उनके दर्शन प्रत्येक प्राणी के लिये कल्याणकारी थे । उनको देखकर मैंने विचार किया कि इस समय भी भारत महान विभूतियों से संपन्न है और इसी कारण से इसका भविष्य भी उज्ज्वल है ।

शिमला जैसे भोग प्रधान स्थल में नेपाली बाबा का रहना आश्चर्य युक्त है । गत २० या २५ वर्षों से नेपाली बाबा इधर ही निवास करते थे, शिमला के बाहर एकान्त में उनका स्थान था । उनको महात्मा करके कोई न जानता था । नेपाली बाबा की आँख बड़ी तेजस्वी थी । मुख पर दृढ़ निश्चय, कष्ट सहन, तीव्र वैराग्य के अतिरिक्त निराभिमानता का प्राकट्य था वे कहने लगे :—

“शिमला में कितने साधु संत आते रहते हैं मैं किसी से मिलता नहीं । यह प्रसंग पहिली बार ही उपस्थित हुआ है कि मैं मिलने आया हूँ ।” थोड़ी देर चुप हो कर वे फिर बोले, “रात को मुझे लामा गुरु ने आकर कहा, यहां दो सन्त पुरुष आये हैं, उनमें जो कम अवस्था वाले हैं उनसे तुमको मिलना है । उन्होंने जो पता दिया था उसी के अनुसार मैं यहाँ पर आपसे मिलने आया हूँ ।”

हम लोग उनकी बातें ध्यानपूर्वक सुन रहे थे, जब उन्होंने समाप्त किया तो जोशीजी ने पूछा, “आपके लामा गुरु कहां रहते हैं।”

“मेरे गुरु चीन में रहते हैं”—उन्होंने उत्तर दिया, “उनकी शक्ति अपार है। एक स्थान पर रहते हुये भी वे काल या स्थान के बन्धन में नहीं हैं। वे सभी बन्धनों के परे हैं। मुझे वे रोज लगभग दर्शन देते हैं और मेरे साथ वार्तालाप भी करते हैं।”

सिद्ध योगी के लिए ऐसा करना असम्भव नहीं हैं। योग की विविध क्रियाओं द्वारा योगी, अपने तन और मन पर अधिकार प्राप्त कर लेता है। स्थूल और सूक्ष्म दोनों शरीर का वह स्वामी बन जाता है। वह जहां चाहे जा सकता है और स्थूल शरीर द्वारा महान आश्चर्यजनक कार्य कर सकता है। इन सभी बातों में हमारा विश्वास था। मुझे तो उसमें लेश मात्र भी शंका न थी, क्योंकि प्रभु की कृपा से जीवन में ऐसे दर्शनानुभव प्राप्त हो चुके थे। संसारी पुरुष जिस शक्ति की कल्पना भी नहीं कर सकते वह शक्ति इन योगियों को प्राप्त रहती है। प्रत्येक मनुष्य में इस शक्ति के विकास की क्षमता रहती है। परन्तु पापी मनुष्य विषय के रस में ही सर्वस्व प्रतिष्ठित कर देता है। इन्द्रिय, मन, बुद्धि के क्षेत्र में ही बंध जाता है उससे अतीत जो विराट है। उसकी ओर ध्यान ही नहीं देता। अतः वह मानव की पूर्ण शक्ति का उपयोग नहीं कर पाता है। यदि उसका सम्पूर्ण सदुपयोग हो तो मानव निश्चयात्मक विकास कर सकता है।

संभवतः नेपाली बाबा मेरे इन विचारों को समझ कर सहमत होते हुये बोल उठे हों। उन्होंने यही विषय उठाकर कहा:—

“संसार में क्या है? संसार के सारे पदार्थ विनाशवान हैं। मानव उनमें चिपटकर बरबाद हो जाता है परन्तु जो सनातन है, पूर्ण आनन्द-

मय और कल्याणकारक है, उसकी आराधना मानव नहीं करता है इससे अधिक आश्चर्य और क्या हो सकता है ?”

इसके उपरान्त का उनका सार वार्तालाप ज्ञान और वैराग्य का था । उनकी वाणी अस्खलित, मृदु और गंभीरतापूर्ण अनुभव युक्त थी । उसको सुनने से तृप्ति न होती थी । ऐसा लगता था कि वे बोला ही करें और उनके सुखद सहवास में हम बैठे ही रहें ।

[२]

जिसकी धरमपुर से निकलने पर कल्पना भी न थी वह अमूल्य वस्तु ईश्वर की कृपा से हम लोगों को प्राप्त हुई । क्या महापुरुष के सत्संग का मूल्यांकन किया जा सकता है ? जगत का समस्त ऐश्वर्य उसके आगे नीरस प्रतीत होता है । संतपुरुष आत्मा को ढूँढ़ते हैं, चेतना देते हैं, और परम प्रकाश से हृदय को आलोकित कर देते हैं । उस घर के अन्य लोग भी प्रेमी थे, वे भी सब बाबा की वाणी सुनने लगे । बाबा के दर्शन करने लगे, और आश्चर्य अनुभव करने लगे । शिमला में ऐसी विभूति के कभी दर्शन ही न होते । फिर जब वे स्वयं दर्शन देकर कृतार्थ करने आये हों, तो उनके सत्संग का कोई लाभ क्यों न उठाये ?

उस दिन तो बहुत रात तक नेपाली बाबा बैठे रहे और अनेकों प्रसंग पर वार्तालाप हुआ । उसके बाद भी जब तक हम लोग शिमला में ठहरे तब तक वे रोज कृपाकर आते रहे । उनके साथ एक २० वर्ष की नेपाली लड़की भी रहती थी । नेपाली बाबा कहते थे कि नेपाल के जंगल में एक जगह फिरते-फिरते एक लड़की पड़ी मिली उसके पेट के आर पार एक लकड़ी घुसी थी और वह बेहोश पड़ी थी, मुझे दया आयी एक औषधि का प्रयोग करके उसे ठीक किया और उसको घर पहुंचाने को कहा, परन्तु वह कन्या मेरे उपकार के आगे सब कुछ भूल गयी उसने मेरे पास रहने की जिद पकड़ ली । अन्त में अपने सम्बन्धियों से

आज्ञा लेकर वह मेरी सेवा में ही रहने लगी। यह वही लड़की है जो इतनी सयानी हो गयी है साधना में बड़ी उच्च अवस्था में पहुंच गयी है, सारी रात ध्यान में बैठी रहती है। इसको समाधि प्राप्त हो गयी है। और भी शक्तियां मिल गयी हैं। इसका शादी करने का विचार नहीं है। मेरे पास रहकर यह जड़ी बूटियों का प्रयोग और साधना सीखती है।

नेपाली बाबा जड़ी बूटियों के प्रकाण्ड पण्डित थे। भारतवर्ष के कोने-कोने में कौन-कौन बूटी कहां प्राप्त होती है और उसका प्रयोग क्या है, सब उनको ज्ञात था। वे मुफ्त में औषधियां वितरण करके जन सेवा भी करते थे। एक बार वे हमारे पास एक ग्रंथ लेकर आये, वह ग्रंथ प्राचीन लिपि में था और उसमें नानाप्रकार की औषधियों के गुणों का वर्णन था, जोशी जी को औषधियों में बड़ी रुचि थी। उनके ही आग्रह से बाबा वह ग्रंथ लाये थे।

[३]

उनकी अनेकों बातें बड़ी विचित्र थीं। एक दिन उन्होंने कहा, “मैं बार बार तिब्बत, चीन, नेपाल, जाता हूं। नेपाल मेरा मूल स्थान होने से लोग मुझे नेपाली बाबा कहते हैं। जब मेरी इच्छा होती है तब प्रवास के लिए निकल पड़ता हूं। भूटान के प्रदेश में अनेकों महान् योगी निवास करते हैं। उस तरफ के प्रदेश में तो सतयुग, त्रेता और द्वापर युग के महात्मा भी हैं। उनका मुख्य भोजन उन प्रदेशों में उत्पन्न होने वाली वनस्पतियां ही हैं। पांच सौ से १००० वर्ष वाले तो बहुत से महात्मा हैं। साधारण मनुष्य को उनका दर्शन होना दुर्लभ है। यदि उनकी इच्छा हो तो उनको देख सकते हैं अन्यथा नहीं। मैंने ऐसे बहुत से योगी पुरुषों को देखा है। एक बार एक स्थान पर एक विशाल वृक्ष के नीचे काक भुशुण्डी जी को देखा था। उनके दर्शन

मुझको हुये थे। यह बात भी मैं किसी से नहीं कहता क्योंकि आज के अश्रद्धालु लोग उस बात को कब मानने वाले हैं। प्रेम के कारण अधिकारी समझ कर आपसे कहता हूँ।” इन महात्मा ने कैलाश मान सरोवर की यात्रा अनकों बार की थीं वे कहने लगे, “ एक बार मैं देव प्रयाग आऊंगा। हम लोग उधर से कैलाश की यात्रा करेंगे। उस समय मैं आपको महान् योगी पुरुषों का दर्शन कराऊंगा आप को बड़ा आनन्द आयेगा।” यद्यपि उसके बाद अभी तक नेपाली बाबा देव प्रयाग नहीं गये।

उनकी बताई हुई एक और विचित्र बात लिख कर मैं यह प्रकरण पूरा करता हूँ। उन्होंने बताया कि पिछली शिमला परिषद के समय मैं यहां पर था उस समय सुभाष बोस और हिटलर दोनों छद्म वेश में इधर आये थे। मैंने उन्हें पहिचान लिया और कहा कि आपके पीछे खुफिया पुलिस लगी है आप इधर से अफगानिस्तान चले जाइये, तत् पश्चात् वे शिमला छोड़ कर चले गये।

इस बात में कितना तथ्य हो सकता है यह तो विवेकी पुरुष ही सोच सकते हैं। परन्तु एक बात तो सत्य है कि भारत सरकार के बहुत खोज करने पर भी अभी तक सुभाष बोस का ठीक पता नहीं चला है। लोग उनके अस्तित्व की आशा को खो चुके हैं।

नेपाली बाबा-३

शिमला में झाकू नामक एक सुन्दर स्थान है, हम लोग वहां गये। वहां पर हनुमान जी का एक मन्दिर है। मन्दिर में हनुमान जी की मूर्ति बड़ी सुन्दर और बहुत ऊंची है। वहां एक सन्यासी महात्मा रहते थे। कोई सिद्ध पुरुष प्राचीन काल में उस स्थान पर निवास करता था, जिसे एकान्त में रहकर भजन करना हो उसे वह स्थल उपयुक्त लगेगा।

दूसरे पहर नेपाली बाबा से फिर भेंट हुई। उन्हें भी हम लोगों के

प्रति प्रेम हो गया था इससे वे हम लोगों के पास आ जाते थे। उन्होंने कहा, “आज लामा गुरु आये थे और उन्होंने कहा है आज रात को दो बजे वे आप दोनों को दर्शन देंगे।”

मैंने सोचा कि नेपाली बाबा और लामा गुरु का सत्यासत्य पत्रखने का अच्छा अवसर प्राप्त हुआ। यदि उनके कथनानुसार आज दर्शन न हो तो उनकी बात झूठी होगी। जोशी जी ने कहा, “आज रात को हम लोगों को सोते रहना है, जल्दी सोकर देर तक न उठा जाय, देखें भला लामा गुरु किस प्रकार दर्शन देते हैं।”

सिद्ध पुरुषों के सामर्थ्य का क्या पूछना? मेरी शंकाशील वृत्ति के कारण मुझे तो कुछ स्पष्ट न हुआ परन्तु जोशी जी ने प्रातः काल बताया कि ठीक २ बजे रात को उनकी आँख खुल गई थी और उन्हें लामा गुरु के दर्शन हुये थे। उन्होंने आपकी ओर संकेत कर कहा था, “यह किस लिए सब जगह फिरते हैं? इनकी पूर्णता का समय आ गया है। इनको अब कहीं फिरने की आवश्यकता नहीं अब ये देव प्रयाग ही जाय और उधर रहें ऐसा इनसे कह दीजियेगा। मुझसे कहा कि आपको अभी देर है परन्तु निराश होने की कोई आवश्यकता नहीं आप साधना करते रहिये।”

मैंने कहा, “मुझे तो कुछ भी न दिखाई दिया आपने दर्शन किये और बातें सुनी यह मैं किस प्रकार मान लूँ? यदि मुझसे कुछ कहना था तो सीधे मुझी से क्यों न कहा? उसी रात को मुझे थोड़ा आभास हुआ परन्तु स्पष्ट न दिखाई दिया उसमें कोई आकृति भी थी और उसने मेरे शरीर पर हाथ भी फेरा था। इतना अनुभव हुआ था।”

उसके बाद श्रावण शुक्ल द्वादशी को मैंने मौन व्रत रखा। ध्यान में बैठा था तब यकायक देहाभान समाप्त हो गया और लामा गुरु का दर्शन प्राप्त हुआ। लामा गुरु बहुत ऊँचे थे उनके लम्बी दाढ़ी थी। पैर की ऐंडी तक एक लम्बा काला चोगा पहने थे। उनके दर्शन पाकर मुझे

बड़ा आनन्द हुआ। लामा गुरु के साथ दो तीन महात्मा और भी थे जिन्हें मैं पहचान न सका सम्भवतः वे लामा गुरु के शिष्य होंगे। लामा गुरु की शक्ति का इसी दिन परिचय प्राप्त हुआ।

[२]

मेरा बिचार शिमला से नहान जाने का था। नहान स्टेट पंजाब में है यमुना नदी का प्रवाह है। वहाँ के एक महात्मा ने ई० १९४४ में मुझसे जब वे उत्तर काशी में मिले थे कहा था, “अनुकूलता होने पर नहान आइयेगा बड़ा सुन्दर स्थान है, आश्रम में पूर्ण व्यवस्था है वहाँ पर खेचरी मुद्रा करने में मैं आपकी सहायता करूँगा। यद्यपि खेचरी मुद्रा का विचार तो प्रभु ने उत्तर काशी में पूरा कर दिया था तथापि शिमला से नहान पास होने के कारण थोड़े दिन उस तरफ जाने की इच्छा थी। इसी के निमित्त एक दिन सायंकाल को मैंने नेपाली बाबा से बात किया।

बाबा ने कहा, “नहीं नहीं, वहाँ जाने की कोई आवश्यकता नहीं। वे साधू नामधारी हैं साधू पुरुष नहीं। उनमें योगी या महात्मा के लक्षण भी नहीं। वहाँ जाने से कुछ न होगा। आप तो देव प्रयाग ही जाइये। और वहीं रहिये, देखिये वहाँ क्या होता है। सब प्रकार से आनन्द ही आनन्द रहेगा। आपको किसी के पास जाने की आवश्यकता नहीं यूँ तो कितने संत महात्मा आपके दर्शन करने आयेंगे।” तदुपरान्त नेपाली बाबा ने उसका नाम ग्राम और पहनावा बताया जो बिल्कुल ठीक था। मैंने सोचा कि नहान जाने की अन्तरप्रेरणा हो तो ही जाना। अन्यथा नहीं, परन्तु शिमला के निवासन्तरगत् कोई समर्थन न प्राप्त हुआ अतः वहाँ जाने का विचार स्थगित कर दिया। किसी को भी इसमें आश्चर्य करने की आवश्यकता नहीं है। प्रभु की कृपा से सन् १९४३ से सर्वदा इस प्रकार मुझे भीतरी आज्ञा मिला करती है। जिस प्रकार एक मनुष्य दूसरे के साथ बात करता हो उसी प्रकार “माँ” मुझे प्रेरणा देती है। कठिन

परिस्थिति में मैं इस प्रेरणा के अनुसार ही अधिकांश चलता हूँ और उसी में मेरा हित निहित होता है। इस ईश्वराज्ञा ने आज तक मेरे जीवन में बहुत महत्वपूर्ण भाग लिया है। एक गुरु सखा या पथ प्रदर्शक का काम किया है जिसके कारण मेरे में आत्म-विश्वास अधिक हो गया है और सुदृढ़ बन गया है। इन प्रेरणाओं से मुझे प्रतीत होता है कि ईश्वर की दृष्टि मेरे ऊपर मड़राती है। माँ ही मुझे प्रोत्साहित करती है और मुझे निमित्त बनाकर मेरे द्वारा साधना कराया करती है। इस प्रेरणा का स्थान मेरे जीवन में अनोखा है। इस विषय में यहां और अधिक विस्तार न करूंगा क्योंकि अपने जीवन का प्रत्येक अनुभव प्रगट करना मैं पसन्द नहीं करता उसकी कोई विशेष आवश्यकता भी नहीं है।

[३]

नहान की यात्रा स्थगित हो गयी, अतः हम लोगों ने धरमपूर जाने का विचार किया। शिमला में अकारण रहना ठीक न था। जाने का मुहूर्त भी ठीक हो गया। मैंने नेपाली बाबा को सूचना दी तो उन्होंने कहा मैं स्टेशन आऊंगा।”

दूसरे प्रहर हम लोग तैयारी करके बैठे थे आकस्मात् मुझे विचार आया और मैंने जोशी जी से कहा, “शिमला में हम लोगों ने बड़ा आनन्द किया अब निकलने का विचार बहुत ठीक है परन्तु एक बात रह गयी। नेपाली बाबा शिमला में रहते हैं परन्तु उनका स्थान आज तक नहीं देखा।”

जोशी जी को मेरा विचार पसन्द आया, उसी समय हम लोग नेपाली बाबा के यहां चल दिये। वर्षा हो रही थी हम लोग थोड़ा भीग भी गये। बहुत दूर चलने के बाद हम लोग बाबा के स्थान पर पहुंचने वाले ही थे कि देखा, बाबा भीगे हुये, वर्षा में रास्ते पर खड़े हैं।

हम लोगों ने कहा, “अरे आप यहां बरसात में।”

नेपाली बाबा ने कहा, “ मैं आपका स्वागत करने के लिए यहाँ आया हूँ, आप मेरे यहाँ इतनी दूर से आये हैं तो मैं बाहर रास्ते पर भी न आऊँ । आज दूसरे पहर ठीक दो बजे आप और एक स्त्री इधर आने की चर्चा कर रहे थे । मैं इधर से सुनता था । इसलिए मैंने जान लिया कि आप आज जाने वाले नहीं हैं और इधर आने वाले हैं । ” बात सत्य थी, नेपाली बाबा की अद्भुत शक्ति का यह प्रमाण सबसे अधिक था, कि जब दो बजे हम लोग आपस में बात कर रहे थे तब उस घर की एक स्त्री भी वहीं पर थी ।

नेपाली बाबा का कमरा जीर्ण तथा छोटा था । अगल बगल में पहाड़ थे इस स्थल पर ऐसे महान् पुरुष रहते हैं ऐसी कल्पना करना भी कठिन था । वहाँ पहुँच कर हम लोग बाहर बैठे । थोड़ी देर में नेपाली लड़की हुक्का भर लाई । जोशी जी ने स्वीकार किया, मैंने केवल पानी माँगा । नाना प्रकार की बातें हुई । नेपाली बाबा के पास पाँच सात मुसलमान रहते थे । उनमें से एक दीमार था नेपाली बाबा ने उसे अपने घर में रखा था । और उसकी चिकित्सा करते थे । नेपाली लड़की भी बड़ी तेजस्वी थी इसकी मुखाकृति से अलौकिकता और सुन्दरता प्रस्फुटित होती थी जो उसके आत्मिक विकास का प्रमाण थी ।

मैंने बाबा के स्थान पर बैठने की इच्छा की । उस लड़की ने तुरन्त ही वहाँ पर एक आसन डाल दिया । आस पास देवी देवताओं के सुन्दर चित्र लगे थे । वहाँ बैठते ही मुझे भावावेश जैसा प्रतीत हुआ । आँखों से आँसू चलने लगे । बड़ा आनन्द प्राप्त हुआ । सिद्ध पुरुषों के आसन पर ऐसी अपूर्व शक्ति होती है ।

आते समय रास्ते में मैंने जोशी जी से नेपाली बाबा से एक प्रश्न पूछने को कहा था । जोशी जी ने न पूछा । प्रश्न को फिर मैंने ही पूछा, “ आपके अनुभव के आधार पर समाधि का सबसे सरल उपाय क्या है ? ”

नेपाली बाबा ने तुरन्त उत्तर दिया, “सुरत-शब्द-योग ।” नेपाली बाबा के इस उत्तर में अनुभवी साधक को बहुत कुछ प्राप्त होगा । साधक के अन्दर जो नाद उत्पन्न होता है उसमें मन की वृत्ति लगाने से जल्दी समाधि की दशा हो जाती है । नेपाली बाबा के कथन से हम लोगों को बड़ा आनन्द प्राप्त हुआ इस कथन का मेरे अनुभव से सामञ्जस्य था ।

मैंने फिर पूछा “आपने दूसरी कोई औषधि भी खोजी है ।” नेपाली लड़की पास में थी वह तुरन्त बोल उठी, “लामा गुरु ने कहा था कि आप एक महान आत्मा है आप का ठीक प्रकार से सत्कार किया जाय और औषधि तथा फोटो भी दिये जाय ।” फिर वह नेपाली बाबा के आदेशानुसार औषधि लेने चली गयी । नेपाली बाबा ने लामा गुरु की आज्ञानुसार मुझे उनकी एक फोटो दिया । बहिन औषधि ले आई । मैंने दोनों वस्तुओं को आदर पूर्वक बड़े प्रेम से स्वीकार किया । औषधि बहुत थोड़ी थी । उसका प्रयोग कैसे करना यह बाबा ने बताया, साथ साथ यह भी कहा—“जोशी जी को औषधि अभी न दीजियेगा उनको अभी देर है । लामा गुरु ने केवल आप के लिए ही आज्ञा दी है ।”

इसके अनुसंधान में इतना बताना आवश्यक है कि देहरादून आकर मैंने उस औषधि का प्रयोग किया और जोशी जी को भी दिया । जोशी जी को उसका असर कुछ न हुआ परन्तु मैं वह औषधि लेकर रात को १० बजे ध्यान में बैठा । थोड़ी ही देर में भान जाता रहा, बहुत आनन्द आया, सुबह जोशी जी मेरे सामने खड़े थे उस समय मैं सचेत हुआ । प्रायः ९ बजे होंगे जोशी जी ने कहा, “मैं दो तीन बार आया हूँ आपके मुख पर तेज झलकता था ।”

[४]

सांयकाल को नेपाली बाबा हम लोगों को पहुंचाने आये । हम लोगों ने

बहुत बातें की। मुझे अकेला पाकर कहने लगे, “आप का जयजयकार हो जायगा, दिग्विजय हो जायगी।”

उस समय सूर्यास्त हो चुका था। आकाश में लाली फैल गई थी उसे देख कर नेपाली बाबा ने उधर संकेत किया, कदाचित मेरे उज्ज्वल भविष्य को इंगित कर रहे होंगे।

वह हमारी अन्तिम मुलाकात थी। उसी रात को हम लोगों ने शिमला छोड़ा। उसके बाद नेपाली बाबा नहीं मिले परन्तु उनकी स्मृति आज भी विद्यमान है। एक महान पुरुष के स्थान पर मेरे दिल में उनके प्रति अपूर्व मान है। दो वर्ष के बाद एक पत्र मैंने उनको लिखा था वह डेड लेटर आफिस से वापस आया, जिस पर यह नोट लगा था कि नेपाली बाबा मर गये। इस बात में कितना तथ्य है वह प्रभु जाने, मैंने कोई खोज नहीं किया। वे जहां भी हों उनको मेरा प्रेम पूर्वक प्रणाम स्वीकार हो। भारत और विश्व के माननीय सिद्ध महापुरुषों की गणना में उनका स्थान कायम रहेगा।

[५]

शिमला से धरमपुर की यात्रा बहुत अच्छी थी। घुमाव पर मोड़ लेती हुई ट्रेन बड़ी सुन्दर मालुम होती है। धरमपुर में अधिक ठहरने का विचार न था। अस्तु एक दिन हम लोगों ने देहरादून को प्रस्थान कर दिया। देहरादून को जोशीजी ने बहुत काल से अपना निवास स्थान बनाया था इतने बड़े व्यवसायी शहर में भी वह आज साधना परायण जीवन व्यतीत करते हैं। जो मनुष्य गृहस्थाश्रम में रहकर अपना जीवन आत्म-दर्शन पथ पर लगाना चाहते हैं, उन्हें जोशी जी के जीवन से बड़ी शिक्षा प्राप्त होगी—जोशी जी का हृदय बड़ा ही दयालु है। दूसरे का दुःख देखकर वे द्रवित हो जाते हैं और संत सेवा से उनका बड़ा प्रेम है। सौभाग्य से उनकी स्त्री भी ऐसी मिली है कि वह उनके कार्यों में सब

प्रकार का सहयोग देती है। जो व्यक्ति उत्तर भारत में आध्यात्मिक विकास वाले पुरुषों से मिलना चाहे उन्हें जोशी जी से मिलना चाहिए। उनसे मिलकर उसे बड़ी प्रसन्नता होगी इसमें सन्देह नहीं।

जोशी जी की इच्छा थी कि देहरादून में मैं अधिक समय रहूँ परन्तु मेरा मन देव प्रयाग जाने के लिए बड़ा उत्सुक था। फिर भी जोशी जी के आग्रह के कारण कुछ समय तक मुझे देहरादून रुकना ही पड़ा और यह बात भी थी कि मेरे दाहिने पैर के तलवे में एक फोड़ा निकल आया था जोशी जी ने बड़े प्रेम से मेरी सेवा किया।

देव प्रयाग पहुँच कर मैंने फिर से मौन व्रत ले लिया। रात दिन ध्यानावस्था में निमग्न रह कर राम कृष्ण देव से दर्शन देने के लिए प्रार्थना करने लगा। इस प्रकार कई महीने बीत गये एक बार फिर मेरे पैर में व्याधि उत्पन्न हो गयी वह भी मिटी, फिर मैंने गुजरात की यात्रा के लिए प्रस्थान किया।

ज्ञानेश्वर महाराज की आलन्दी में कृपा

गुजरात की यात्रा उस वार अनेक प्रकार से यादगार बन गयी । प्रभु की कृपा से उन दिनों महापुरुष श्री ज्ञानेश्वर महाराज के पवित्र लीला स्थल आलन्दी में जाने का अवसर प्राप्त हुआ । आलन्दी की वह यात्रा मेरे लिए अत्यन्त आनन्ददायक और लाभप्रद सिद्ध हुई । इस यात्रा में मेरे साथ बम्बई के ५ या ६ और पूना के दो सज्जन भी साथ हो लिये । सब लोग जिज्ञासु और उत्साही थे, अस्तु बड़ा आनन्द आया ।

हिमालय के निवास काल में संत ज्ञानेश्वर जी का प्रथम दर्शन मुझे उत्तरकाशी में हुआ था । उसका उल्लेख पीछे कर चुका हूँ उस प्रसंग के कारण आलन्दी से मेरा बड़ा आकर्षण था, अतः बम्बई पहुंचने पर जब अवसर प्राप्त हुआ तो उस तीर्थ स्थान के दर्शन का लाभ लेने का प्रसंग मैंने हाथ से जाने न दिया ।

आलन्दी गांव छोटा होते हुये भी सुघड़, सुन्दर और सुव्यवस्थित है । ज्ञानेश्वर महाराज के समाधि-मन्दिर के कारण उसकी ख्याति विशेष है । मन्दिर अत्यन्त सुन्दर और विशाल हैं उसके पीछे एक बड़ी सुन्दर छोटी नदी है । पूना से केवल २० मील दूर होने के कारण जन समुदाय की अपार संख्या इस पवित्र स्थल के दर्शन करने जाती है ।

मन्दिर में पहुंच कर हम लोगों ने समाधि के दर्शन किये। समाधि मन्दिर के अन्दर प्रवेश करते ही वहाँ के पुजारी ने समाधि से एक फूलों का हार लाकर मेरे गले में पहना दिया। उस अचानक प्रेम प्रदर्शन से मुझे बड़ी प्रसन्नता हुई, ऐसा ज्ञात हुआ कि स्वयं महा राज ज्ञानेश्वर जी ने पुजारी के मन में प्रेरणा उत्पन्न कर मेरे ऐसे एक साधारण व्यक्ति का सत्कार किया हो।

समाधि के दर्शन के बाद हम लोग मन्दिर के चारों तरफ घूम फिर कर वापस आये। स्थान बड़ा ही हृदयस्पर्शी और आकर्षक था। मन्दिर और उसकी धर्मशाला दोनों ही बड़े विशाल हैं परन्तु मेरी दृष्टि कुछ और खोज कर रही थी। सं० १९४४ ई० में मैंने ज्ञानेश्वर महा-राज को समाधि की दशा में देखा था। उस समय वे एक वृक्ष के नीचे चबूतरे पर समाधिस्थ दशा में बैठे थे। उसी प्रकार का कोई स्थान यहाँ पर होगा यह मेरी कल्पना थी और उसी के अनुसार उसे देखने की उत्सुकता भी थी परन्तु इधर कहीं वह स्थान मुझे न दिखाई दिया अस्तु मुझे निराशा हो गई, वैसे ही एक अपरिचित व्यक्ति ने आकर बगैर किसी भूमिका के सीधा मुझसे यह प्रश्न किया, “आपने सब देख लिया ?”

मैंने कहा, “देखने को तो सब देख ही लिया परन्तु पूर्ण सन्तोष नहीं हुआ।”

उसने कहा, “आपने और सब देखा होगा परन्तु एक स्थल न देखा होगा। वह विशेष महत्व का है चलिये दिखाऊँ।”

हम लोग उसके पीछे पीछे चल दिये। मन्दिर के पिछले भाग में सीढ़ी थी। उसपर चढ़कर हम लोग ऊपर पहुंचे। वहाँ पहुंचते ही उसने कहा, “देखो यह स्थान आपने नहीं देखा बहुत लोग नहीं देख पाते आप शान्ति से देखिये मैं अब अपने काम से जाता हूँ।”

वह अपरिचित व्यक्ति चला गया। वह स्थान देख कर मेरे आश्चर्य और आनन्द का ठिकाना न रहा। उत्तरकाशी में जो स्थान मैंने ध्यान में देखा था और जिसे देखने की मेरी कामना थी।

उस स्थान में केवल अन्तर इतना ही था कि वहाँ ज्ञानेश्वर महाराज विराजमान न थे बाकी वही एकान्त, वही चबूतरा और वही पेड़ था। इस स्थान का दर्शन कराने वाले वे अपरिचित सज्जन कौन थे ? क्या वे ज्ञानेश्वर महाराज स्वयं होंगे ? अथवा उनके कोईदूत, सम्भव है उनकी प्रेरणा से भेजे हुये कोई भक्त हों। इन बातों का ठीक उत्तर कौन दे सकता है। इस सुन्दर स्थान को देख कर हम लोग आनन्द विभोर हो गये और उस बात का कोई ध्यान न दिया। वृक्ष के नीचे जो कच्चा चबूतरा था उस पर पद्मासन लगाकर मैं ध्यान में बैठ गया और संत ज्ञानेश्वर महाराज की स्मृति में लीन हो गया। अन्य साथ के लोग भी प्रभु स्मरण करने लगे। उन्होंने मेरी ६५७ फोटो भी खींची परन्तु एक भी ठीक न आई। सम्भवतः ज्ञानेश्वर महाराज की इच्छा ऐसी ही हो, जो भी हो परन्तु मेरे हृदयस्थल में उस सुन्दर स्थान की जो फोटो खिंच गई, वह तो बहुत बढ़िया आयी उसे कभी भी भूला नहीं जा सकता।

उस प्राचीन सुन्दर स्थान को देख कर मैं बड़ा प्रभावित हुआ। कितना शान्तिमय ? कितना सुन्दर ? यही स्थान मैंने उत्तर काशी में देखा था। महाराज जी का स्थान शून्य था इतना ही केवल अन्तर था कि यदि कहीं वे बैठे होते तो आनन्द का, क्या पूछना कितना होता ?

मैंने प्रार्थना की कि, “ हे ज्ञानेश्वर महाराज आप मन्दिर के बाहर निकलिये। मेरे पास आइये, आपका उसमें क्या जायगा ? आप तो देश और काल से मुक्त हैं। आप ईश्वर हैं। आपके दर्शन बिना यहां की यात्रा कैसे सफल होगी ? ”

ऐसे महापुरुष यदि स्वयं दया कर प्रगट न हों तो उन्हें कौन देख

सकता है, और देखने पर पहचान भी कौन सकता है। चित्रकूट के घाट पर सन्तों का समागम हुआ जनसमुदाय अपार था उस समय राम व लक्ष्मण राजकुमार के वेष में उनके पास आये परन्तु तुलसीदास जी पहिचान न सके प्रभु की लीला बड़ी विचित्र है। तभी तो तुलसीदास ने लिखा है,

“ सोइ जाने जेहि देहु जनार्ई । ”

वही यथार्थ रूप से जान सकता है जिसपर वे कृपा करें और अपने रहस्य को बताएं ।

[३]

मैंने विचार किया कि यदि इस स्थान पर ज्ञानेश्वर महाराज का कीर्तन करें तो बड़ा सुन्दर हो, बड़ा आनन्द आयेगा। समाधि मन्दिर के विशाल हाल में बड़े प्रेम से मैंने नृत्य के साथ कीर्तन आरम्भ कर दिया। कीर्तन की ध्वनि इस प्रकार थी —

“निवृत्ति ज्ञानदेव, सोपान मुक्ताबाई

एकनाथ नामदेव तुकाराम, तुकाराम, तुकाराम”

और अन्त में केवल ज्ञानदेव, ज्ञानदेव की ध्वनि में हमलोग तल्लीन हो गये। मेरे हाथ में करताल थी। नेत्र बन्द थे पैर अपना काम कर रहे थे हृदय भी ज्ञानेश्वर को मिलने के लिए उछल रहा था। श्री ज्ञानेश्वर जी दर्शन दें और हम लोगों की प्रेम-पुकार से प्रसन्न होकर हम लोगों के आगे प्रगट हों इस प्रकार का भाव मेरे मन से यूँ कहिये रोम-रोम में व्याप्त हो रहा था। उसी समय एक वृद्ध पुरुष अकस्मात् आ गये। वे किधर से आये कोई जान न सका अधिकांश मनुष्यों को खबर न पड़ी। माता जी ने कहा कि वे मन्दिर के बाहर के भाग से आये थे, कीर्तन चल रहा था। वे शरीर पर एक पोतड़ी जैसा रेशमी वस्त्र पहने थे और उनके हाथ में चमकती हुई पूजा की थाली और लोटा

था । थाली और लोटे को जमीन पर रख कर उन्होंने मण्डली में प्रवेश किया और मेरे साथ नाचते नाचते ध्वनि बोलना प्रारम्भ कर दिया । जिस प्रकार मेरे पैर पड़ते थे उसी प्रकार उनका पैर पड़ता था । वृद्ध होते हुए भी उनके शरीर में विचित्र फुर्ती भरी थी । उनका शरीर गंद की तरह उछल रहा था ।

थोड़ी देर में मेरा शरीर नीचे गिर पड़ा । उस समय कोई मुझे पंखा करने लगा, और कोई मेरे लिए पानी लेने गया । बड़ी भीड़ इकट्ठा हो गई । दो तीन सज्जन उस वृद्ध पुरुष को ढूँढ़ने लगे । उनका विचार था कि बुढ़े को कुछ इनाम दिया जाय ; परन्तु... .. उन्हें बड़ा आश्चर्य हुआ जब वे उस वृद्ध को खोज न सके वे कहने लगे, “जरा सी देर में बुढ़ा किधर से निकल गया ।” मन्दिर के भीतर और बाहर सब जगह देखा परन्तु उसका पता न चला । उसकी थाली और लोटे का भी पता न था । मन्दिर के बाहर बैठे दुकानदारों से भी पूछा तो उन्होंने साफ इन्कार कर दिया कि इधर से कोई ऐसा व्यक्ति नहीं गया । खोज करने वाले निराश हो गये उनमें से अधिकांश को यह विश्वास हो गया कि संत ज्ञानेश्वर हमारे भावों से प्रसन्न होकर स्वयं वृद्ध पुरुष के स्वरूप में हम लोगों को दर्शन देने आए थे ।

हां, अवश्य अज्ञात रूप से ।

सचेत होने के उपरांत जब मैंने यह सब बातें सुनी तो मेरे मन में कुछ विचित्र भाव उत्पन्न हुए । ज्ञानेश्वर महाराज के दर्शन करने की इच्छा मुझको भी थी परन्तु कीर्तन के समय मेरी आँख बन्द होने के कारण मैं उनके दर्शन से वंचित रहा इस बात का दुख होना स्वाभाविक था परन्तु क्या हो सकता था और उपाय ही क्या था ?

सायंकाल को हम लोग पूना वापस गये । उस दिन मेरा मन बहुत उदास था । मेरा काफी समय प्रार्थना और उस चमत्कारिक प्रसंग के

चिंतन में व्यतीत हो गया। उसी रात को स्वप्न में ज्ञानेश्वर महाराज ने मुझे दर्शन देकर कहा—“उस समय आप को दर्शन न हुआ दूसरी बार जब इधर आना होगा तो दर्शन अवश्य होगा।”

इस सुन्दर अनुभव से मेरे आनन्द की सीमा न रही। साथ साथ यह भी विश्वास हो गया कि वे वृद्ध पुरुष दूसरे कोई नहीं वरन श्री ज्ञानेश्वर महाराज स्वयं थे। दूसरी बार आलन्दी की यात्रा करना पड़ेगी अथवा यूँ कहिए कि अवसर प्राप्त होगा उस समय उनके दर्शन अवश्य होंगे इस प्रकार का निश्चय हो गया।

ज्ञानेश्वर का अनुभव

[४]

काल, जल के प्रवाह के समान कितनी शीघ्रता से गतिमान है। देखते दो वर्ष व्यतीत हो गये। इस समय और कितने अनुभव उल्लेखनीय हुये उनका वर्णन समय-समय पर क्रम से करूँगा। यहाँ इस प्रसंग के अन्तरगत इतना कहना है कि दूसरी बार जब मैं आलन्दी गया तो बम्बई से १०-१५ सज्जन मेरे साथ में थे, उपरोक्त घटना को सुन कर उन्होंने विचार किया कि इस बार जब वे वृद्ध पुरुष या वैसे कोई दूसरे चमत्कारिक व्यक्ति आयेंगे तो उनको जाने ही न देंगे और उनके द्वारा सभी लोग कृतार्थ होंगे, परन्तु प्रभु की लीला को कौन जान सकता है ? मनुष्य सोचता कुछ है, होता कुछ है।

रात को मुझे प्रेरणा हुई कि धर्मशाला के बजाय मन्दिर में रहना है। उसके अनुसार हम लोग मन्दिर में जाकर बैठे, चाँदनी का प्रकाश फैल चुका था, नदी की शोभा निराली थी मन्दिर में बैठकर मैंने श्री ज्ञानेश्वर महाराज से प्रार्थना की, “हे प्रभु इस समय तो आपको मुझे दर्शन देना ही चाहिये आपके बचनानुसार आपको अब मेरे सामने प्रगट होना

ही चाहिये । मैं आपके द्वार पर आया हूं । आपका अतिथि हूं मेरा सत्कार करना आपका कर्तव्य है । “रात जैसे-जैसे बीतती गयी मेरी प्रार्थना बढ़ती गयी ।

“ हे ज्ञानेश्वर महाराज !

तमारू होय खरे खरे साच,

सजी ने बधो साज

घने तो दर्शन आयो आज,

हे ज्ञानेश्वर महाराज ! ”

सभी साथी क्रम-क्रम से सो गये । मन्दिर में एकतारा लेकर एक भक्त फिरते-फिरते ज्ञानेश्वर, तुकाराम और एकनाथ के पद गा रहे थे उससे वातावरण बड़ा सुखद और आनन्दमय बन गया था । रात को दो बजे के बाद मुझे लय की दशा हो गयी उस दशा में ज्ञानेश्वर और निवृत्ति नाथ जी मेरे सामने प्रगट हुये । दोनों महापुरुष बड़े सुन्दर और तेजस्वी थे उन्होंने सुमधुर मुस्कराते हुये मेरे हाथ में फूल दिया । और भी अनेकों बातें करके उन्होंने मुझे आशीर्वाद दिया तदुपरान्त अदृश्य हो गये ।

दूसरे दिन और सब साथियों से मैंने सारी बातें बताई उनको बड़ा आनन्द हुआ, इस प्रकार हम लोगों ने आलन्दी से विदा ली ।

अभी यह इच्छा तो बाकी ही है, कि जिस प्रकार संत ज्ञानेश्वर श्री एकनाथ जी को मिले थे, वैसे ही तेजपुञ्ज दिव्य स्वरूप में साक्षात् मुझसे भी मिलें और अपना प्रेम बरसा कर मुझे पुलकित करें ऐसे समर्थ पुरुष के लिए कुछ भी असम्भव नहीं है ।

“ समर्थ संत श्री ज्ञानेश्वर महाराज का जयजयकार हो । ”

नारद जी का अद्भुत अनुभव

बदरीनाथ की यात्रा के उपरान्त मैं लगभग एक महीना वहां रह कर फिर देवप्रयाग आया। देवप्रयाग पहुंचते ही मेरा स्वास्थ्य ठीक हो गया। बदरीनाथ में और रास्ते में जो दस्त आते थे, वे वहां बिलकुल बन्द हो गये। उन दिनों मुझे एक बात का विचार अवश्य हुआ, कि अभी मेरे में बड़ी कमी है क्योंकि सच्चे और पूर्ण योगी को इन्द्रिय विजय के साथ साथ शरीर विजय अर्थात् शरीर के गुण धर्मों पर अधिकार, प्राप्त करना चाहिये। साधारण मनुष्य शरीर की व्याधि, बुढ़ापा, और मृत्यु जैसे विकारों से पीड़ित होते हैं और विकारों के बन्धन में बँधे हैं। योग की चरम सीमा तो, पूर्णता अर्थात् आत्म दर्शन, जगत में सबमें आत्मदर्शन अथवा ईश्वर दर्शन, और व्यक्तिगत मर्यादाओं को हटाकर ईश्वरीय शक्ति की प्राप्ति है। शान्ति, निर्वाण, मुक्ति परमानन्द, यह सभी ध्येय इस विराट आदर्श में समा जाते हैं। शरीर की बाह्य विजय के बिना भी उपरोक्त सभी प्राप्त हो सकते हैं, फिर भी शरीर विजय अत्यन्त आकर्षक और महत्व पूर्ण है। इस विषय पर हठ योगियों ने और नाथ सम्प्रदाय के योगियों ने बहुत विचार किया है, शरीर जप सम्बंधी प्रक्रियायें भी उन्होंने बताई हैं। इस प्रकार की विजय कामना बदरी-नाथ में दस्त लगने की नोटिस के कारण उत्पन्न हुई थी। मैंने सोचा,

कि दस्त जैसी छोटी विकृति से मैं पार नहीं पाता, तो पूरे शरीर का विजय मेरे से बहुत दूर है ।

मनुष्य को डुबाने और पार लगाने वाला उसका मन है । अपने बिना अपना सही उपकार अथवा अपकार कोई नहीं कर सकता । गीता के ये वाक्य अक्षरशः सत्य हैं । अपनी त्रुटियों को देखने और सुधारने की आदत बहुत उपयोगी है । मनुष्य को आगे बढ़ना हो तो उसका आश्रय लेना ही पड़ेगा । यद्यपि अपना ही दोष देखने का काम कड़वा है, परन्तु कड़वी दवा अत्यन्त लाभकारी होती है । साधक को अपनी छोटी से छोटी कमी के प्रति बहुत सतर्क रहना चाहिये । उस कमी को खोज कर चुपचाप बैठे देखते ही न रहा जाय वरन् उसको निर्मल करने का पुरुषार्थ करना चाहिये । जो ऐसा करते हैं वे संसार सागर को पार कर सकेंगे बाकी जो अपने को पवित्र निष्कलंक और बड़ा मान बैठे हैं वे डूब जायेंगे । प्रभु की कृपा से लड़कपन से ही मेरी आदत, अपनी त्रुटियों के प्रति सावधान रह कर उनको दूर करने की रही है । निर्जीव सिद्धियों से तृप्त और कृतार्थ होकर चुप हो जाने के बजाय पूर्णता के पग पर प्रयास करते जाने की क्रिया इसी स्वभाव के कारण है वाकी यदि गलत तरीके से धन्य बन कर बैठ जाना हो तो ऐसे अवसर जीवन में कहां नहीं है । समझदार मनुष्य जानता है यह आत्म-वंचना है और वह उससे दूर ही रहता है, इसी आदत के कारण ही मैं उत्तरोत्तर अधिकाधिक विकास कर सका हूं । मुझे निर्वलता की चिंता बहुत थी । गांधी जी के सहायक होने की और उसी तरह भारत व संसार को मदद करने की मेरी महत्वाकांक्षा कब पूरी होगी ? अभी तो मुझे अधिक प्रतीक्षा करनी है । भारत में अनोखी घटनायें होती जाती हैं । इन सबका साक्षी बन कर मैं तटस्थ बैठा रहूं, हाँ एक दिन भारत और समस्त संसार को आलोकित करने की और पथ प्रदर्शन की मेरी इच्छा है । इसीलिए मेरा जन्म हुआ है । आज के युग को मुझे अपने को साधना

करके ईश्वर प्राप्ति और पूर्णता का आदर्श बताना है और साथ-साथ देवी शक्ति से विभूषित ईश्वर का आशीर्वाद ले संसार को शांति का मार्ग पहिचनवाने का कार्य करना है और दिशाओं को ईश्वरीय महिमा से परिपूर्ण करना है। मेरे बिना यह किसी से होने का नहीं क्योंकि ईश्वर ने मुझको ही इस काम के लिए पसन्द किया है परन्तु..... मेरा यह मंगल स्वप्न कब पूरा होगा.....पूर्णता प्राप्त कर मैं शरीर का सार्थक्य कब कर सकूंगा। दूसरे महात्माओं की तुलना में मेरे में कोई विशेषता नहीं इस प्रकार के विचारों में सराबोर होकर बैठा था उसी समय यह प्रसंग उपस्थित हुआ।

मध्यरात्रि व्यतीत हुई होगी, मेरा शरीर भान जाता रहा। जंगल में एक कुटिया दिखाई दी उसमें स्वामी रामतीर्थ के समान कोई महापुरुष विराजमान हैं। स्फुरणा हुई कि वे देवर्षि नारद स्वयं हैं उनके साथ मैंने बहुत बातें की उनमें यह भी था कि मुझे बड़ी चिंता है कि मुझमें कुछ भी तो नहीं है। नारद जी ने कहा “अरे आप कौन ? आपका भूत महा गौरव ! उसे याद तो करिये।”

मैंने कहा, “वह सब याद करता हूं तभी कहता हूं कि मेरे पास कुछ नहीं है।” “नहीं” नारद जी ने कहा, बड़े-बड़े सम्राट भी आपके सामने क्या हैं ? दुनिया आपके पीछे मुग्धवत होकर रहेगी। समय आता है। आप यह आर्तवाणी क्या कहते हैं ?” मुझे यह सुनकर बड़ा आनन्द हुआ। मेरा आत्मगौरव नया हो गया।

फिर नारद जी को आर्लिगन कर मैंने कहा, “नारद जी, जब आपको याद करूं और देखने की इच्छा करूं तब आप मेरे सामने प्रगट होंगे ऐसा कहिये।” “क्या मैं” ?—उन्होंने कहा। फिर मैंने वही वाक्य तीन बार उनके कान में कहा उसके बाद वे अदृश्य हो गये। धन्य हो देवर्षि महासिद्ध भगवान नारद ! भगवान नारद की जय।

जाते जाते वे कह गये कि व्योम के विशाल पट पर फैले हुये वर्षा ऋतु के बादल अधिक समय और हमेशा के लिए नहीं ठहरते, उसी तरह आपकी चिंता का भी अन्त आयेगा। आपकी यह परेशानी की अवस्था अधिक समय तक नहीं चलेगी। आपके जीवन का यह संक्रान्ति काल है उसके समाप्त होते ही जीवन उज्ज्वल और बहुत उज्ज्वल बन जायगा।

ठीक है साधक के जीवन में परेशानी के समय बार बार आया करते हैं। उस समय साधक को हताश और कायर बनने की आवश्यकता नहीं, उस समय स्थिरता, समभाव रख कर प्रार्थना करने की आवश्यकता है। उससे धीरे धीरे मार्ग खुलता जाता है और चिंता, भय एवं परेशानी, दूर हो जाती है। महापुरुषों की सहायता भी मिलती रहती है।

शांताश्रम में देवर्षि नारद का यह अनुभव २४ जून १९४७ ई० के मंगलवार को हुआ था। नारद जी ने कृपा करके दर्शन दिया था उस समय भी अपनी उल्लास-जनक और प्रेरक वाणी में कहा था, परन्तु इस अनुभव से मेरे में विचित्र बल आ गया। चाहे जितनी मेरी कमजोरी हो सिद्ध पुरुष और ईश्वर की कृपा होने के कारण वह बिल्कुल दूर हो जायगी। भारत की सेवा और विश्व कल्याण, उनको मेरे द्वारा कराना है यह सत्य, मैंने इसी प्रकार के प्रसंगों से विशेषतः स्पष्ट प्रकार से जाना है। इस स्थान पर यह कह देना अनुचित न होगा कि मेरा मूल भूत और प्रथम आदर्श ईश्वर और पूर्णता की प्राप्ति है। उसके बाद यदि ईश्वरेच्छा हो तो जगत को यथाशक्ति उपयोगी होने का संकल्प है। यही बात मैं पहले भी कह चुका हूँ।

नारद जी के अनुभव के बाद वह भावना अधिक बलवती हुयी। हृदय कहने लगा—इसीलिए शक्ति चाहिये। और ईश्वरीय कृपा से

बदरीनाथ में मुझे रिद्धि सिद्धि भी वर चुकी हैं परन्तु इससे क्या होगा ? मेरा दिल तो मुख्यतः प्रेमी या भक्त का है । अतः प्रभु को रात दिन देख सकूँ इस प्रकार का साक्षात् करना चाहिये तभी मुझे शान्ति मिलेगी, उसके मिलने के उपरान्त क्या शेष रह जायगा ? प्रभु से मिलने की ही प्रथम आवश्यकता है फिर बाद में जो आवश्यकता होगी वह वे स्वयं प्रदान करेंगे । यह बात कोई खास मेरे लिये नहीं है । दक्षिणेश्वर से वापस आने पर यह विचार मेरे मन में रात दिन आते रहते थे, और इसी भावना से मैं रामकृष्ण देव का साक्षात् करना चाहता हूँ । तो फिर अब विलम्ब किस लिए ? दिन तो बीतते जाते हैं । एक बार, फिर दशरथाचल पर्वत पर जाकर, प्रभु की कृपा के लिये पलथी मार कर बैठूँ । प्रभु अवश्य कृपा करेंगे । जब वह दुष्ट और संसारी मनुष्यों की इच्छा पूरी करते हैं, तो क्या अपने प्रेमी की इच्छा को ठुकरा देंगे ? अपनी पूर्णता के लिए तरसने वाले और सब जगत की शान्ति और सुख की कामना करने वाले की इच्छा वह क्यों न पूरी करेंगे ? गंगा उल्टी बहे, वृक्ष बोलने लगें, और सूर्य गिर पड़े, फिर भी ईश्वर अपने अच्छे या बुरे, पूरे या अधूरे, भक्तों की कामना की पूर्ति अवश्य करेंगे । भगवत भक्तों की जय हो ?

एक महात्मा से सम्पर्क

सरोड़ा से हम लोग साबरमती पहुंचे। साबरमती का निवास काल बड़ा सुन्दर रहा वहाँ के लोग बड़े प्रेमी थे। उन दिनों ओम स्वामी जिनका परिचय ऋषिकेश में स० १९४३ में हुआ था अकस्मात् फिर मिल गये। ओम स्वामी अच्छे विद्वान् थे। स्वामी विवेकानन्द के ग्रंथों में और आध्यात्मिकता में उनको रुचि पहिले से ही थी। ऋषिकेश में हम लोग बार-बार मिलते थे। काफी अरसे से उन्होंने हिमालय छोड़ दिया था। अहमदाबाद में अचानक वे मिल गये।

ओम स्वामी बहुत आनन्दी और बहुश्रुत थे। बार-बार वे प्रेम वश साबरमती आने लगे। इन्हीं दिनों अहमदाबाद में एक प्रसिद्ध स्वामी जी पधारे थे। ओम स्वामी से उनका अच्छा परिचय था, मैंने भी उनके सम्बन्ध में बहुत कुछ सुना था परन्तु उनसे मिलने की इच्छा न थी। एक समय था जब किसी भगवा वस्त्र धारी को देखते ही उसके सम्पर्क की अभिलाषा होती थी। और उनसे कुछ न कुछ प्राप्त अवश्य हो जाता था, परन्तु हिमालय जाने के उपरान्त इस मनोदशा में परिवर्तन हो गया। जैसे-जैसे मेरी अनुभूति बढ़ती गयी और साधना के मार्ग में, प्रकाश के पथ में भगवत् कृपा से अग्रसर होने लगा, वैसे वैसे किसी से मिलने और बाहर घूमने की इच्छा कम होती गयी। मैं

केवल ईश्वर के ही भरोसे पर आगे बढ़ता रहा। इसमें आश्चर्य नहीं कि मुझे जिस समय जैसी अनुभूति की आवश्यकता पड़ी वैसी ईश्वर ने समयानुसार मुझे प्रदान की।

ईश्वर के कृपापात्र महापुरुषों की भी जब आवश्यकता आयी तो उसी ने ही उन्हें मेरे पास भेज दिया। इससे मेरी आत्मश्रद्धा बलवती हो गई। जो मांगना होता था वह ईश्वर से ही मांगता था। परावलम्बन के बदले स्वावलम्बन, चिन्ता के स्थान पर आशा, मेरे जीवन में प्रगट हुई। यह सब ईश्वर की कृपा का ही फल है। जिसको उसकी कृपा में विश्वास है वे सुखी हैं। उसको दूसरे से व्यर्थ में आशा रखने की कोई आवश्यकता नहीं।

इसका अर्थ जड़ता या गुण-ग्राहक का अभाव नहीं है। ईश्वर का प्रेमी तो सब जगह गुण ही देखता है, अपने को वह सबकी चरण रज समझता है कारण यह कि स्थावर जंगम में सब जगह वह परम प्रभु का ही दर्शन करता है। वह सबको नमता है। वह हाड़ मांस अथवा रंग रूप से पूर्ण किसी स्वरूप को नहीं नमता वरन् सब में निवसित और सबके अंग से प्रस्फुटित ईश्वरीय प्रकाश को—अन्तस्थल के देवता को नमता है। ऐसा बड़भागी यदि गुणग्राहक न हो तो और कौन होगा ?

ओम स्वामी ने जब परिचय बताते हुये, उपरोक्त, स्वामी जी की ख्याति का विवरण दिया तो ऐसे महात्मा के दर्शन करने का मैंने अनुमोदन किया। इसका एक कारण और दूसरा भी था। दो या तीन वर्ष प्रथम एक स्वामी जी देवप्रयाग में आये थे, वे वहां पर थोड़े ही समय रहे। वे मुझसे बराबर मिलते थे। वे इन महात्मा के शिष्य थे और इनकी बड़ी प्रशंसा करते थे, अस्तु अब अवसर आया जान कर मैंने ओम स्वामी के साथ उनसे मिलने का निश्चय किया।

महात्मा जी के पास हम लोग पहुंच गये। उनका शरीर बड़ा भव्य

था, चेहरा एकदम लाल था। उनके वस्त्र उनके रंग से मिल जाते थे, इस प्रकार के रंग रूप महात्मा का मैंने दूसरा न देखा था। अनेकों मनुष्य उनके पास बैठे थे एक बहन तुलसीकृत रामायण सुना रही थी हम लोग वहाँ जाकर यथा स्थान बैठ गये।

रामायण बन्द हुई। ओम स्वामी ने पहिले अपना पूर्व परिचय का उनको स्मरण कराया और प्रेम पूर्वक कबीर के दो भजन भी सुनाये। “समाधि किस को कहते है”—ऐसा प्रश्न पूछा। स्वामी जी ने अपने ढंग से उत्तर दिया, “मन की वृत्ति का निरोध हो जाय वह समाधि है। इससे विशेष समाधि आप जानते हो तो कहिये।” स्वामी जी के अन्तिम वाक्य में ज्ञान की गरिमा का भाव था। ओम स्वामी ने फिर अधिक कोई चर्चा न की क्योंकि मैंने उनसे उठने का संकेत किया था।

सूर्यास्त हो गया था। सावरमती जाने की आवश्यकता थी, क्योंकि रात को उधर सत्संग होता था। उससे पहले सायंकाल के नित्य क्रम से मुझे निवृत्त होना था। हम लोग चल दिये। मेरी ओर इंगित कर ओम स्वामी ने मेरा परिचय देते हुये कहा, “यह बड़े योगी हैं और हिमालय में रहते हैं।”

महात्मा जी ने एक विचित्र प्रकार से मुझे देखा और तुरन्त कहा, “योगी होकर भटकना !” आशय यह कि यदि योगी है तो इधर उधर क्यों भटकते हैं ?

उन्होंने बड़ी विचित्र शैली से अप्रत्याशित बात कही। ओम स्वामी को इससे थोड़ा दुःख हुआ क्योंकि उनको मेरे से बड़ा प्रेम था। उनको इस प्रकार के उतावले शब्दों की आशा न थी। ओम स्वामी बोले, “आप भी योगी हैं न ? जैसे आप घूमते-घूमते यहां आये हैं, वैसे यह भी आपके दर्शन के लिये पधारे हैं।”

मैं तो बाहर निकल चुका था। बाद में क्या बातचीत हुई मुझे ज्ञात नहीं। थोड़ी देर के बाद ओम स्वामी भी बाहर आ गये, उनके मुख पर कुछ उदासी नजर आती थी परन्तु वह किस लिये ? जगत की विविधता और विचित्रता का दर्शन कर मनुष्य को तटस्थ रहते हुये सदा सुख मनाना चाहिये। मैं जानता था कि उनका दुःख मेरे प्रेम के कारण था। परन्तु उसका उपाय क्या है ? महापुरुष के लिए कहा है, “सुख दुःख दोनों समकरी जाने, और मान अपमान”, इसको व्यवहार में लाकर सदा आनन्द में रहने की आवश्यकता है। प्रत्येक प्रसंग से कुछ न कुछ मनुष्य को सीखते ही रहना चाहिये, उस महात्मा से मेरी वह पहिली व अन्तिम भेंट थी। परन्तु उनके अन्तिम शब्द मेरे मन में सदा के लिए अंकित हो गये। इस प्रकार के मर्मभेदी वे थे। दत्तात्रेय की तरह मैंने उनसे भी सार लिया।

[२]

ओम स्वामी बड़े आनन्दी और विनोदी थे। एक दिन वे दो सद्-गृहस्थ व्यापारी सज्जनों को लेकर आये। थोड़ी देर वार्तालाप हुई। फिर वे लोग विदा होने लगे। उठते समय उन्होंने मुझे माथा टेक कर प्रणाम किया और उसी अवस्था में बोले, “सर पर हाथ रख कर आशीर्वाद दीजिये।” ओम स्वामी की भी यही इच्छा थी। वे बोले, “उनके माथे पर हाथ रखिये।” मैंने कहा—जिसे माथे पर हाथ रख कर आशीर्वाद देने की शक्ति है वह वैसे भी आशीर्वाद दे सकता है अतः हाथ रखने का आग्रह व्यर्थ है।” अन्त में काफी प्रतीक्षा के बाद वे व्यापारी उठे। मैंने कहा, “प्रभु का स्मरण करियेगा, नीति रखियेगा, आशीर्वाद देने वाले वही हैं, ऐसा करने से ही उनका आशीर्वाद प्राप्त हो जायगा।”

व्यापारियों ने विदा ली। थोड़ी देर के बाद ओम स्वामी भी चले गये। दूसरी बार जब ओम स्वामी मिले तब उस प्रसंग को याद कर

उन्होंने कहा, “ उस दिन आपने उन व्यापारियों के माथे पर हाथ न रखा, यह ठीक हुआ वे तो काला बाजार करने वाले हैं । ” मैंने कहा- “अपने कर्म से ही मनुष्य के लिये पाप या आशीर्वाद रूप होते हैं । मैं हाथ रखता तो भी क्या ? कर्म के फल से वह मुक्त न होता । ”

मनुष्य को अपने कर्म सुधारना चाहिये, सबसे प्रमुख बात यही है । ज्ञान, योग और भक्ति सभी प्रकार की उपासना में इसी प्रकार की मान्यता सुदृढ़ रूप से प्रतिपादित है । कर्म सुधारे बिना या उसकी चेष्टा के बिना यदि कोई संत महात्मा की कृपा से अपने उद्धार की आशा लगाए तो वह असंभव है । इस रोग को मिटाने की आवश्यकता है । पहिले आत्म कृपा, फिर दूसरे की कृपा, यथार्थ बात यही है ।

जादूगर साधू

हिमालय की पवित्र भूमि में नानाप्रकार के विचित्र साधक और महात्मा आते रहते हैं। इसी भूमि के प्राचीन महत्व से परिचित, अनेक पथिक आकर्षित होकर, आध्यात्मिक साधना को पूरा करने को यहाँ पर आते रहते हैं, कितनी बार उनमें, विचित्र मनुष्यों का समावेश हो जाता है। सन् १९४९ ई० के जून मास की एक सायंकाल में, मैं नीचे बैठा था उस समय अकस्मात् एक साधु पुरुष का आगमन हुआ। उसकी आंखें लाल थी, कन्धे पर झोला हाथ में लकड़ी, भगवा वस्त्र और लम्बी लम्बी दाढ़ी थी। उनकी वेपभूषा देखकर पहले मुझे आश्चर्य हुआ परन्तु मैंने उन्हें प्रेम पूर्वक बैठने को कहा।

आते ही उन्होंने गौशाला फंड के लिए चन्दा मांगा, परन्तु इतनी सरलता से मेरे पास से पैसा निकालना कठिन समझकर उन्होंने दूसरी युक्ति निकाली। मेरे हाथ में एक डोरा देकर उसके ९ टुकड़े करने को कहा। मैं समझ गया कि ये महात्मा बाजीगरी दिखाकर मुझे प्रभावित करना चाहते हैं। मैंने तटस्थ रहकर उनके कौतुक को देखने के लिए कोई विरोध न किया। “नौ टुकड़े हो गये”, “अच्छा अब सब टुकड़ों को मुट्ठी में बंद रखियेगा।” उन्होंने कहा मैंने भी वैसा ही किया।

वे फिर बोले, “यदि डोरा फिर जैसे का तैसा हो जाय तो मुझे सच्चा मानियेगा।” थोड़ी देर उनके कहने पर जब मैंने मुट्ठी खोली तो डोरा जुड़ गया था। नौ टुकड़ों के बजाय एक टुकड़ा था, साधू के मुख पर प्रसन्नता छा गयी। उन्होंने कहा,—“यह टुकड़ा कोई विघ्न बताता है। उसको शान्त करने का एक उपाय है।” इतना कह कर उसने अपने झोले से एक गिलट का विचित्र रुपया निकाला और कहने लगा, “लीजिये इसको पास रखियेगा सब विघ्न बाधा दूर हो जायगी, इसके बदले आप मुझे एक रुपया दे दीजिये।”

साधू की व्यापारिक वृत्ति का परिचय मैं पहले ही पा गया था, इसलिए मैंने रुपये के लिए मना कर दिया, इस पर साधू ने कहा,—“अच्छा अभी और कुछ चमत्कार देखना चाहते हैं। आपको किस मंत्र पर प्रेम है?”

“सभी मन्त्रों पर एक सा प्रेम है।” मैंने उत्तर दिया। उसने कहा,—“ओंकार पर प्रेम है? हाँ तो देखिये, आप के दाहिने हाथ के पीछे वह मंत्र लिखा मिलेगा।”

मैंने देखा उधर कुछ नहीं था। “कुछ नहीं है?” उसने कहा,—“अच्छा तो बायें हाँथ पर देखिये।”

उधर ठीक था। काला ॐ लिखा था। मुट्ठी के अन्दर भी पैसे के बराबर, दोनों जगह लिखा था।

थोड़ी देर के बाद फिर उसने कहा,—“अब एक रुपया दीजिये।” मुझे इस विनोद में आनन्द आता था मैंने कहा,—“देने को तो दूंगा परन्तु कोई और चमत्कार दिखाइये तो अच्छा हो।” उसको कुछ आशा हुई उसने मेरे सामने देख कर, कहना प्रारम्भ किया, ‘अब तक आपने बड़े कष्ट सहन किये हैं, परन्तु अब श्रावण से आपके सुख का आरम्भ होता है। यहाँ भी आपकी इच्छा पूरी हो जायगी फिर सदा सुख ही सुख

है। खूब यश मिलेगा। भाद्रपद में आप यहाँ से वम्बई की ओर जायेंगे।”

इतना होते हुये भी जाते समय उसको केवल २ आना मिला, वह भी उनकी जादूगरी के कारण नहीं, वरन साधू है और मांगता है, इस कारण से। अतः कुछ गुस्से में आकर चलने लगा और कहा, ‘आखिर २ आने निकलवा ही लिये इतनी तो सफलता मिली इसका आपके पास क्या उत्तर है?’ मैंने कहा,—“आपने तो दो आने ही निकलवाये हैं। परन्तु मैंने तो बदले में आपका कितना अधिक क्रोध निकलवाया है आपकी याचना और लोभ की वृत्ति का उद्घाटन किया है इस प्रकार क्यों नहीं विचारते हैं, मेरे तो दो आने ही गये वह भी मांगने वाला जान कर दिये हैं, परन्तु आपकी तो सारी सम्पत्ति, साधु वृत्ति जाती रही इसका ह्योश है?” क्या उत्तर था ?

एक सुखद समागम और शारदादेवी का अनुभव

गोपीनाथ भगवान् के दर्शन को जाते समय गौड़ीय मठ के मैनेजर मिले । उसने हम लोगों ने लौटती बार मठ में मुलाकात करने को कहा ।

हम लोगों ने मठ में प्रवेश किया ही था कि तुरन्त उन्होंने कहा “पुरी में देखने योग्य यही एक स्थल है : गौड़ीय मठ !” “जगन्नाथ जी का मन्दिर भी नहीं ?”—मैंने पूछा । उनको अपनी अतिशयोक्ति समझ में आ गयी, उनकी वार्ता अंग्रेजी में होती थी ।

मठ में जाकर उन्होंने हम लोगों से कहा,—“क्या आपको उन वृद्ध महापुरुष के दर्शन करने की इच्छा है जिन्होंने श्री चैतन्य महाप्रभु पर एवं अन्य भक्तों पर अनेक ग्रंथ लिखे हैं ? वे इस समय यहीं पर रहते हैं ।”

मैंने उत्तर दिया, “अवश्य” । मठ में कुछ विशेष आकर्षण नहीं था अस्तु सहज प्राप्त इस निमंत्रण की स्वीकृति हम लोगों ने दे दी ।

थोड़ी देर में वे हम लोगों को उन महात्मा के पास ले गये । वे बहुत वृद्ध थे, पीछे पीठ का सहारा लगाए एक तख्त पर बैठे थे, मेरे साथ

एक गृहस्थ थे उन्होंने कहा, पिछली बार जब वे उनसे मिले थे तो समाचार पत्र पढ़ते थे। हम लोगों के आने का समाचार पाकर वे कपड़ा पहन कर हाथ में माला लेकर बैठे, कदाचित्त उन्होंने सुना होगा कि हिमालय से कोई महात्मा आये हैं, अस्तु माला लेकर मिलना चाहिए। मैं तो अखबार पढ़ने में कोई दोष नहीं देखता, यदि वे अखबार भी पढ़ते होते तो भी उनके प्रति मेरी भावनाओं में अखबार पढ़ने के कारण कोई अन्तर न पड़ता।

थोड़ी देर में वे माला बगल में रख कर बहुत धीमे स्वर में हम लोगों की ओर देखकर बोले, “मैं भगवान के चरणदास का भी दास हूँ। एक साधु के नाते मेरा आप की सेवा करने का धर्म है, कहिए आपकी क्या सेवा करूँ ?”

उनकी बाणी बड़ी मधुर और नम्रता पूर्ण थी, यह उनकी मुखाकृति से प्रगट होता था।

मैंने कहा, “हम लोगों को तो आपके दर्शन पाकर बड़ा आनन्द हुआ है, बाकी आपसे सेवा की कौन आशा कर सकता है।”

उन्होंने कहा “शरीर के दर्शन में क्या आनन्द है ?”

मैंने कहा, “शरीर का ही नहीं शरीर में जो बैठा है, और शरीर द्वारा जो व्यक्त हो रहा है वह आत्मा-उसका दर्शन।” वे बोले, “मुझे तो अभी उस आत्मा का अनुभव नहीं होता। मैं तो अपनी चमड़ी ही देखता हूँ। परन्तु प्रयास करता हूँ। मुझे आशीर्वाद दीजिए, कि प्रभु की कृपा की मेरे ऊपर वर्षा हो उस आत्मा का दर्शन मैं कर सकूँ। उसका साक्षात्कार मुझे नहीं हुआ।”

कितने नम्र शब्द, आजकल के आत्म प्रशंसा के जमाने में नम्रता की ऐसी भाषा और वह भी एक वयो वृद्ध साधु पुरुष के मुख से, भाग्य

से ही निकलती है। इस महापुरुष का हृदय उच्च था, इसमें सन्देह नहीं।

मैंने कहा, “आत्मा का दर्शन अभी आप नहीं कर सके यह ठीक है। आत्मा का साक्षात्कार नहीं हुआ इस बात का तो साक्षात्कार हो गया है। यह बात क्या कुछ कम महत्व की है? इस सत्य के प्रति जागरूक रहना यह कोई छोटी बात नहीं। ईश्वर की कृपा होने पर ही ऐसी जागृति हो पाती है। हम लोग साधारण पुरुष आपको क्या आशीर्वाद दे सकते हैं। ईश्वर का आशीर्वाद आप पर बरस ही चुका है।”

उन्होंने मेरा नाम पूछा। मैंने कहा,—“गुजराती महात्मा कह कर लोग मुझे संबोधन करते हैं।”

“गुरु ने कोई नाम नहीं दिया।” उन्होंने पूछा।

मैंने कहा—“गुरु ने जो देने लायक था सो दिया है। नाम देना भूल गये मुझे उसकी कोई चिन्ता भी नहीं है। अब तो ईश्वर जो नाम दे वह ठीक, वही सब का गुरु है।” वे शान्त रहे, अन्त में बोले, “हे कृष्ण, हे गोविन्द।” मैंने प्रेम भाव से कहा, “बस यह नाम सबसे प्यारा है। याद रखने योग्य और जानने योग्य भी है। उसी से ही परम शान्ति मिलती है। दूसरे नाम तो हजारों हैं, परन्तु उनसे क्या?”

सायंकाल का समय हो गया था अस्तु हम लोग चलने लगे, उस मैंनेजर भाई का पता न चला। कहीं काम से गये होंगे। नदी के किनारे आकाश की रंग विरंगी छटा का दर्शन करते हम लोग उस महापुरुष को नम्रता को याद करने लगे। महापुरुष वास्तव में नम्र होते हैं, पके हुए फल के समान वे भीतर बाहर सब तरफ से कोमल होते हैं। नम्रता

को धारण करने का यह महामंत्र भी, जो इस महापुरुष के पास से सीखें तो जीवन धन्य बन जाय ।

हम लोग बाहर निकले । बाद में वे महापुरुष फिर अखबार पढ़ने लगे, यद्यपि उस समय अँधेरा हो गया था । महापुरुषों की लीला बड़ी विचित्र होती है, बाह्य आचरण से कभी उनके प्रति कोई धारणा बना लेना उचित नहीं ।

एक सुखद मुलाकात—२

जगन्नाथ जी का दर्शन करके वापस आते समय वर्षा प्रारम्भ हो गयी । मैंने सोचा कोई आश्रय खोजना चाहिये । अगल बगल एक छोटा सा मन्दिर था उसके छप्पर के नीचे दो तीन साधु पुरुष बैठे थे । उनमें एक महात्मा उच्चकोटि का था । इस विचार से कि बरसात से रक्षा होगी और महात्माओं का परिचय प्राप्त होगा, मैंने भी उसी छप्पर के नीचे आश्रय लेने का विचार किया ।

जैसा मैंने विचार किया था उसमें एक महात्मा वास्तव में उच्च कोटि के थे । उनके साथ वर्तालाप होने पर ज्ञात हुआ कि वे मूल गुजराती और बम्बई के एम० ए० थे । सन्यास का उनका नाम रसिकानन्द जी था । परन्तु हाल में उन्होंने सन्यास का भी न्यास कर दिया था और प्रेम-दशा में रहते थे । उनका नया नाम हरिदास जी था, और यह नाम श्री चैतन्य महाप्रभु ने उनको दिया था ।

उनके सम्बन्ध में सारी बातों का उल्लेख न करके केवल इतना बताना पर्याप्त होगा, कि वे पहले वृन्दावन में रहते थे । वहाँ एक दिन चैतन्य महाप्रभु ने उन्हें साक्षात् दर्शन दिया । उस समय महाप्रभु पीताम्बर पहने थे, गले में बड़ी फूल माला थी और अवकाश में खड़े थे । उन्होंने हरिदास जी से संकेत में कहा ।

“जगन्नाथ पुरी जाओ, वहाँ आपकी कृष्ण दर्शन की इच्छा पूरी होगी।” उसके बाद पिछले १५ दिन से वे पुरी में आये थे और प्रभु प्रेम में समय व्यतीत करते थे। सारी रात वे समुद्र के तट पर रेती में व्यतीत करते थे। उनकी योग्यता देखकर उनके प्रति आदर व प्रेम हुआ और हम लोगों ने आपस में अनेकों बातें की, मेरे साथ वे धर्मशाला भी आये, भोजन किया, और भजन सुन कर बड़े आनन्दित हुए।

भारत में सच्चे और महान् संत अनेक हैं परन्तु उनका मिलन ईश्वर की कृपा हो तो हो सकता है। इस प्रकार के आनन्द में पुरी का समय व्यतीत हो गया। १५ दिन के बात भाद्र कृष्ण एकादशी को हम लोगों ने जगन्नाथ पुरी से प्रस्थान किया।

शारदादेवी का अनुभव—३

जगन्नाथ पुरी में महात्मा हरिदास जी ने मुझसे पूछा था कि आपके जीवन का लक्ष्य क्या है ? मैंने उत्तर दिया कि “जिस प्रकार आपके पास हूँ आपको देखता हूँ, और आपसे बातें करता हूँ, उसी प्रकार इष्ट का मिलन इष्ट का सान्निध्य प्राप्त करना, यूँ कहिये—‘मैं तुम्हें देखा करूँ तुम मुझे देखा करो।’”

थोड़ी देर बाद मैंने फिर कहा,—“योग अथवा साधनात्मक प्रक्रिया के दूसरे छोटे बड़े कितने लक्ष्य हैं, वे सारे के सारे इस विराट् लक्ष्य के अन्तरगत आ जाते हैं। समाधि-सिद्धि, दिव्य या अलौकिक-शक्ति या रिद्धि-सिद्धि की प्राप्ति, अमृत पद या परम शान्ति, यह सब इष्ट या ईश्वर की परिपूर्ण कृपा से प्राप्त हो जाते हैं, अतः प्रेम मार्ग वाले साधक को यही लक्ष्य को लेकर आगे बढ़ना है। उसके बाद साधन का विचार करना आवश्यक है। परमात्मा के मिलन का एक मात्र साधन तीव्र प्रेम और व्याकुल हृदय से निकली प्रार्थना है। अन्तस्थल

से ईश्वर और एक ईश्वर की भूख को ही जगाकर यदि कोई ईश्वर की ही पुकार करे तो ईश्वर उसे अवश्य उत्तर देंगे। उसके सामने समय आने पर प्रगट भी होंगे, अतः इस साधन का विकास करने का प्रयास, साधक को करना चाहिये, तब ही साधना और उसका जीवन सफल हो सकेगा।”

हरिदास जी ने मेरा समर्थन किया। वे स्वयं एक अच्छे अनुभवी महापुरुष थे, अस्तु मेरे विचारों से अपने विचारों का सामञ्जस्य होने पर वे बड़े आनन्दित हुये। उस दिन और बहुत सी बातें हुई। उन दिनों एक नई समस्या उत्पन्न हो गयी। नवरात्रि के दिन पास आते थे, मेरी इच्छा पानी पर व्रत रखने की थी, अस्तु किस स्थल पर रहना उपयुक्त होगा यह समस्या उठ खड़ी हुई। जगन्नाथ पुरी में ही कोई अन्य साफ जगह खोजी जाय, गुजरात वापस जाया जाय अथवा ऋषिकेश जाकर किसी अच्छी धर्मशाला में निवास किया जाय, इस प्रकार के विविध विचार मेरे मन में उत्पन्न होते थे। परन्तु कोई निष्कर्ष न निकल पाता था। अन्त में मन्दिर में जाकर मैंने प्रभु से प्रार्थना की, कि हे प्रभु आपमें श्रद्धा भक्ति रखकर लाखों लोग यहाँ दर्शन करने आते हैं, यदि आप में सत्यता हो और आपकी महिमा आज भी सच्ची हो, तो तीन दिन के भीतर मुझे बताइये कि नवरात्रि का व्रत मुझे कहाँ पर करना चाहिए।

बड़ी गंभीर बात थी, परन्तु तीसरे दिन सुबह प्रभु ने मेरे मन को शान्ति दिया। बहुत सुबह जब प्रार्थना करने मैं बैठा, तो अचानक मेरे सामने शारदा देवी प्रगट हुई, उन्होंने कहा, “क्यों चिन्ता करते हो?”

“मुझे कहाँ जाना है मेरी समझ में नहीं आता।” मैंने उत्तर दिया “उसमें क्या असमञ्जस है?” उन्होंने कहा, “आप सीधे देव प्रयाग जाइये वहाँ सेठ के मकान में निवास करियेगा। वह मकान खाली नहीं है, उसमें

एक सरकारी मनुष्य रहते हैं, परन्तु आपको वे वहाँ रहने की अनुमति दे देंगे। आपके आश्रम में तो, मुझे ज्ञात है, बरसात और तूफान में रहने योग्य वह नहीं है।”

इतना कह कर वे अदृश्य हो गयीं, मुझे बड़ी प्रसन्नता हुई। कौन कहता है, देव स्थान में देवता नहीं है। आज भी उनकी महिमा पहिले की तरह सत्य है। मनुष्य का दैवत्य मरता जाता है, उसका हृदय शून्य होता जाता है। यदि वह श्रद्धा भक्ति से भरपूर बन जाय तो उसके जीवन में विचित्र अनुभव प्राप्त होने लगेंगे।

दूसरे दिन अपनी बनाई जगन्नाथ भगवान् की स्तुति “जगन्नाथ स्तवन माला” मैंने मन्दिर में गाकर भगवान् को सुनाई और शान्ति प्रदान करने एवं उपरोक्त सूचना देने के उपलक्ष में सजल नेत्रों से प्रभु का आभार प्रगट किया।

श्री शारदादेवी के अनुभव का मेरे जीवन में यह पहला प्रसंग था। जगदंबा ने ही उस स्वरूप में आकर मुझे प्रदर्शन कराया था।

शिरड़ी की यात्रा

शिरड़ी जाने के लिए हम लोग बम्बई से मनमाड़ होकर कोपर-गाँव गये, वहाँ से शिरड़ी की बस पकड़नी थी। स्टेशन पर बहुत जाड़ा था। बस के लिए बड़ी प्रतीक्षा करनी पड़ी। शिरड़ी बड़ा प्रसिद्ध स्थल है। अनेकों मनुष्य वहाँ दर्शन करने जाते हैं। वर्षों से यही कार्यक्रम चल रहा है, फिर भी तब तक यातायात की समुचित व्यवस्था न थी। स्टेशन के बाहर बस खड़ी रहती है, वहाँ पर यात्रियों के बैठने उठने की कोई व्यवस्था नहीं। एक बस छूट गयी बाद में दूसरी आ गयी, उसमें हम लोगों को बड़ी कठिनाता से स्थान मिला और एक घन्टे के भीतर हम लोग शिरड़ी पहुँच गये। शिरड़ी गाँव बहुत बड़ा नहीं है परन्तु स्वच्छ है, प्रथम दर्शन में यह छाप पड़ी। गाँव से थोड़ी दूरी पर एक नदी है। उसमें हम लोग सबसे पहले स्नान करने गये। नदी छोटी थी, ज्वार के खेत तट के दोनों ओर बड़े शोभायमान होते थे। दृश्य बड़ा रमणीक था। स्नानादि के लिए शिरड़ी में गरम पानी की व्यवस्था थी परन्तु समीप में नदी है यह जान कर सरिता स्नान करना निश्चय किया। वास्तव में सरिता को माता का विरद प्रदान किया गया है। सरिता के तट पर पहुँचने से एक साथ कई काम पूरे हो जाते हैं, स्नानादि के अतिरिक्त, प्राकृतिक सौन्दर्य के बीच में बैठकर शान्ति की

अनुभूति का अवसर मिलता है। आधुनिक शहरी प्रकृति विमुख जीवन वाले भी जब ऐसा स्थान पा जाते हैं, तो उनको भी बड़ा आनन्द प्राप्त होता है, तो फिर जो प्रकृति की गोद में ही खेलते हों, जनका नदी, प्रकाश और प्राकृतिक सुन्दरता से सदा का सम्बन्ध हो, उनके आनन्द का तो कहना ही क्या है? हम लोगों की शिरड़ी यात्रा में जो दस या बारह भाई बहन थे सबका ग्रामीण जीवन होने के कारण प्राकृतिक सौन्दर्य से प्रेम था। नदी को पाकर बड़े प्रसन्न हुये। स्नान करके परमानन्दित हो गये।

हम लोगों ने जब तक बाहर स्नानादि में समय व्यतीत किया तब तक अन्य प्रेमी भाइयों ने ठहरने की व्यवस्था कर ली। शिरड़ी में यात्रियों की संख्या बहुत अधिक थी। स्थान की कमी थी। साँई बाबा के प्रसिद्ध समाधि मन्दिर के ऊपर के भाग में हम लोगों को जगह मिली थी। जगह बहुत अच्छी थी। नीचे हाल था और साँई बाबा की समाधि का दर्शन ऊपर से अच्छी तरह से होता था। अपना अपना स्थान बना कर हम लोग समाधि के दर्शन करने गये।

शिरड़ी में मुख्य देखने लायक तीन मन्दिर है, साँई बाबा का समाधि मन्दिर जिस स्थान पर साँई बाबा रहते थे, दूसरा द्वारिका माई का स्थान, और तीसरा गुरु स्थान जहाँ पर साँई बाबा के गुरु प्रकट हुये थे।

समाधि मन्दिर बहुत विशाल और सुन्दर है, यहीं पर शिरड़ी गाँव के सिद्ध पुरुष साँई बाबा ने समाधि ली थी। इस घटना को हुये बहुत समय बीत गया है, परन्तु समाधि मन्दिर को बाद में किसी भक्त ने हजारों रुपये खर्च करके बनवा दिया है मन्दिर बड़ा आकर्षक है। समाधि मन्दिर के सामने साँई बाबा की खुली समाधि पर फूल माला पड़ी रहती है, एक ओर अखण्ड अग्नि प्रज्वलित रहती है और उसी ओर साँई बाबा

की पादुका भी है। सामने बाबा का बड़ा तैल चित्र है। समाधि मन्दिर में जाति पांति के मेद भाव बिना प्रत्येक को प्रवेश करने की स्वतंत्रता है, और पूजा करने की छूट है। प्रातःकाल प्रायः दस या ग्यारह बजे पूजा होती है। उस समय का दृश्य बहुत सुन्दर होता है। पुजारी और दूसरे भक्त साईं बाबा की स्तुति गाते हैं और बड़े आनन्द से भावपूर्ण होकर पूजा करते हैं।

पूजा में भाग लेकर हम लोग द्वारिका माई के दर्शन करने गये। द्वारिका माई की एक मसजिद है, परन्तु मसजिद जैसी कोई बात वहाँ नजर नहीं आती, केवल कहने की परम्परा चली आती है। छोटे से एक मकान की सीढ़ियों पर चढ़ कर हम लोगों ने ऊपर के भाग में प्रवेश किया। ऊपर साईं बाबा का एक बड़ा तैल चित्र था, जिसमें साईं बाबा की वैठी आकृति बनी थी चित्र बड़ा सुन्दर है। वह इतना आकर्षक बनाया गया है कि ऐसा ज्ञात होता था कि मानो साईं बाबा अभी उठ कर चलने वाले हों।

द्वारिका माई में एक ओर प्रचण्ड अग्नि प्रज्वलित रहती है। साईं बाबा अग्नि रखते थे और उसकी भस्म सबको देते थे। उनकी स्मृति में आज भी भस्म और अग्नि देखने को मिलती है। एक कोठे में साईं बाबा की पहले की दो तीन कफनी हैं दूसरी ओर उनकी चिलम हार बनाकर लटकी थीं। साईं बाबा चिलम पीते थे, यह बात प्रसिद्ध है। इसके साथ साथ यात्रियों को साईं बाबा के दो चार वर्तन भी देखने को मिलते हैं। एक कोने में चक्की तथा एक थैला रखा था। इस विषय में ऐसी कहावत है कि शिरड़ी में जब अकाल पड़ता था तो साईं बाबा स्वयं चक्की चलाते थे, दले हुये गेहूं के आटे को गांव के बाहर नदी में फेंकवा देते थे। गोदावरी नदी में आटा फेंकने से साईं बाबा के आशीर्वाद से अकाल दूर हो जाता था। थैले में भरा हुआ अनाज आज भी सुरक्षित रखा है। इन सब वस्तुओं के उपरान्त, साईं बाबा की स्मृति में उनका

रेशमी छाता भी वहां रखा है। बाहर जाने पर कभी कभी बाबा इसका उपयोग करते थे। उस समय बाबा कैसे लगते होंगे, यह पाठकगण स्वयं विचार कर सकते हैं। मोटे तैल चित्र में यह दृश्य दिखाया गया है। बाबा खड़े हैं, अगल बगल भक्त गण खड़े हैं, एक भक्त उनके ऊपर छाता लगाये है, चित्र बड़ा आकर्षक और सजीव है।

द्वारिका माई का स्थल बहुत सुन्दर है। जब साईं बाबा इधर विराजते होंगे, तब इस स्थल की महिमा कितनी अद्भुत होगी, कितने ही भक्त उनके दर्शन से धन्य हुये होंगे, और असंख्य साधकों को उनके वचन और जीवन द्वारा प्रेरणा मिली होगी। आज वे महापुरुष इस स्थल पर स्थूल शरीर से बैठे होते, और उसी तरह से बातें करने का और प्रेरणा देने का मंगल कार्य करते होते, तो कितना आनन्द होता ? और शिरडी की यात्रा बड़े महत्व की हो जाती। पर समय समय के कार्य विभिन्न होते हैं। आज जो है उसके दर्शन से तृप्त होना है।

साईं बाबा तो सिद्ध पुरुष थे, ईश्वर तुल्य थे। उनको काल या अवस्था का बन्धन नहीं था। आज भी जो जिज्ञासु अथवा साधक है, और उनके दर्शन को लालायित रहते हैं, उनके समक्ष वे अवश्य प्रगट होते हैं और उन्हें प्रेरणा व मार्गदर्शन देते हैं और इस प्रकार अपने भक्त को अपनी उपस्थित का भान कराते हैं।

शिरडी के बाहर भी ऐसे अनेक दृष्टान्त पाये जाते हैं जहां बाबा ने अपनी उपस्थिति की सूचना लोगों को प्रदान की है।

ये सब बातें होते हुये भी साईं बाबा की प्रत्यक्ष और सशरीर की उपस्थिति का महत्व और ही होता है। उसकी बराबरी किसी प्रकार की अन्य उपस्थिति से नहीं की जा सकती। उनकी दीर्घकालीन उपस्थिति से पवित्र हुआ वह स्थान आज भी साधक भक्तों को प्रेरणा देता है, इसमें सन्देह नहीं।

द्वारिका माई का दर्शन कर बाहर आते समय सामने दीवाल पर एक पत्थर है। इसी पत्थर पर साईं बाबा बैठा करते थे, उसी प्रकार का एक फोटो भी उनका मिलता है। साईं बाबा कहा करते थे कि द्वारिका माई की सीढ़ी पर जो चढ़ेगा उसका सब दुःख दर्द मिट जायगा, इस बात की जुम्मेदारी मेरी है। उनके ये शब्द इस स्थान पर आते ही याद हो जाते हैं।

द्वारिका माई के मन्दिर की दीवाल पर एक बोर्ड है, उसका उल्लेख करने की इच्छा यहां होती है। इस बोर्ड पर थोड़ी सूचना लिखी है, उसमें से एक इस प्रकार की है—“द्वारिका माई या समाधि मन्दिर के भाग में कोई हाड़ मांस के मनुष्य को प्रणाम न करना, ऐसे मनुष्य को साष्टाङ्ग प्रणाम करना साईं बाबा के अपमान करने के बराबर है।” यह सूचना कुछ विचित्र लगती है। साईं बाबा तो सब प्रकार के ऊंच नीच या छोटे बड़े के भेद से परे और विशाल हृदय के थे। उनके ऐसे महान् पुरुष के स्थल में उनके उपरान्त ऐसी सूचना लिखी जाय तो यह एक प्रकार से उनके आदर्शों का अपमान है। दुनियां में महत्ता या श्रेष्ठता कुछ एक ही आदमी को नहीं प्राप्त होती। ईश्वर की कृपा से अनेक महापुरुष इस संसार में हैं, उनके अनुयायी या प्रेमी भी अनेकों होंगे। यदि किसी महापुरुष को कारणवश इधर जाना हुआ और उसके भक्तगण यदि उसको प्रणिपात करें तो उससे साईं बाबा का अपमान किस प्रकार होगा, तदुपरान्त ये शब्द “हाड़ मांस के मनुष्य को,” बहुत ओछे हैं। कोई भी मानव शरीर धारी चाहे वह कितना ही साधारण क्यों न हो केवल हाड़मांस का ही बना नहीं होता। हाड़ मांस के मलवे में जब आत्मा का प्रगट होता है, तभी मानव मानव बनता है। यदि दूसरे प्रकार से देखा जाय तो प्रत्येक शरीरधारी को हाड़ मांस का होना ही पड़ेगा। हाड़मांस के होने से उसकी कोई बात अनुचित नहीं, उसकी तो आवश्यकता है, यदि ये सब विचार त्याग दें तो भी

जब कोई किसी को नमता या प्रणिपात करता है, तो उसके हाड़ मांस या रुधिर को नहीं नमता, वरन् उसके अन्दर रहने वाले प्रकाश को वह नमता है। महापुरुषों के गुण, त्याग ज्ञान और महत्व को ही वह नमता है। यह बात सबको विदित है तो फिर मनुष्य को केवल हाड़ मांस का बता कर उसको तिरस्कार की दृष्टि से देखना कहां की बुद्धिमान्नी है। स्त्री के शरीर को हाड़ मांस और गन्दगी का घर कह कर जहां निम्न माना है वहीं दूसरे प्रसंग में शास्त्र ने उसे माता तुल्य कह कर उसकी सराहना भी किया है। उसके प्रेम की प्रशंसा किया है और उसके शरीर को ईश्वर का मंगल मन्दिर मानते हैं। गंदगी या अशुद्धि का विचार शरीर के अन्दर रहने वाले चैतन्य के तिरस्कार के लिए नहीं है, वरन् शरीर सुख की आसक्ति का अन्त करने के लिए एवं शरीरस्थ चैतन्य को सदा ध्यान में रखने के लिए है, अस्तु साईं बाबा के स्थान में भी यदि कोई व्यक्ति किसी महापुरुष की वन्दना करे तो उसमें दोष है ऐसा नहीं मानना चाहिये।

लोभी साधू साईं बाबा के स्थान पर बैठ कर पुजाना आरम्भ कर दें और भोले मनुष्य उनके जाल में न फंस जाय अतः सम्भवतः दृष्टियों ने ऐसी सूचना लगा दी है, ऐसा समझा जा सकता है। परन्तु उपरोक्त विचार तो नहीं हटाया जा सकता ऐसे दिव्य स्थान पर कोई व्यवसाय करेगा यह नहीं कहा जा सकता, साईं बाबा की देवी शक्ति की महिमा बहुत बड़ी है।

इसी प्रकार के विचारों में मग्न होते हुये हम लोग साईं बाबा के तीसरे स्थान पर आ गये। इस स्थान पर नीम का एक वृक्ष है इसमें से दो बड़ी डालें फूटी है। एक डाल के सारे पत्ते मीठे हैं और दूसरी डाल के कड़वे।

कहा जाता है कि साईं बाबा के चमत्कार से ऐसा हो गया था।

उसी वृक्ष के नीचे एक शिवलिंग है, साथ साथ सांई बाबा के गुरुदेव के पद चिन्ह भी हैं। इस स्थान पर धूप आदि करने का बड़ा महत्व कहा जाता है। कहते हैं कि सांई बाबा ने स्वयं अपने श्रीमुख से यह बात कही थी।

समाधि मन्दिर में सामुहिक पूजा का समय हो गया था। पुजारी और भक्तगण समाधि के सामने अत्यन्त भाव पूर्ण स्तुति पाठ करते थे। उस समय छोटे बड़े सभी लोग खड़े रहते थे। अन्त में आरती होती थी।

पूजा से वापस आने पर भोजन का समय हो गया था, अतः हम लोग भोजन करने निकले। वहां का नियम था कि जो प्रथम से सूचना दे दे उसे एक समय का आठ आना देना पड़ता था। भोजन करने में कोई पंक्ति भेद नहीं था, बड़े विशाल भोजन कक्ष में पीढ़ों की कतारें लगी थीं उनके सामने पत्तल पड़े थे। प्रायः दो सौ व्यक्तियों के भोजन करने की व्यवस्था होगी। केवल धोती पहने, ऊपर उधारे, परोसने वाले प्रस्तुत थे। शाक, पराठा, रोटी और उपमा की पारस थी। जिसको यह भोजन रुचिकर हो उसके लिये ठीक है, बाकी जो इस प्रकार का भोजन न खाते हों और मिर्च कम खाते हों अथवा बिल्कुल न खाते हों उनको उस खाना में निराश होना पड़ता था। इतना होते हुये आठ आने में आजकल के कठिन समय में भोजन की वह व्यवस्था कुछ कम नहीं कही जा सकती।

रात्रि में मार्गश्रम की थकावट के कारण भोजन के उपरान्त सब लोग सो गये, प्रातःकाल देर तक सोकर स्वस्थ हुये। शाम को साकोरी जाना था। गाड़ी की व्यवस्था पहिले से ही करली गयी थी। साकोरी शिरडी से प्रायः तीन मील है। यह एक छोटा सा गांव है, जहां उपासनी बाबा का स्थान है—स्थान पर पहुंचते पहुंचते अंधेरा हो गया था।

अतः देखने का कोई आनन्द न आया, एक सज्जन ने वहाँ का सारा विवरण बताया ।

उपासनी बाबा के स्थान की सायंकाल की पूजा उसी समय समाप्त हुई थी । बाबा की शिष्या श्री गोदावरी माता प्रसाद देती थीं । एक ओर उपासनी बाबा की माता का मन्दिर था । सामने यज्ञ कुण्ड था । मन्दिर में सुन्दर सुन्दर चित्र लगे थे । सबसे ऊपर साईं बाबा का चित्र था । उपासनी बाबा साईं बाबा के शिष्य थे । साईं बाबा की ही कृपा से उनको सिद्धि प्राप्त हुई थी, अतः यहाँ सब जगह साईं बाबा के चित्र लगे थे ।

बाहर दन्त मन्दिर के दर्शन के बाद हम लोग गाड़ी के पास इकट्ठे हुये और वापस शिरडी चल दिये । अंधकार में तारागण अपनी छटा आकाश में बिखेर रहे थे ऐसा प्रतीत होता था कि मानों असंख्य योगी मृत्यु, शोक या भय के संसार का अतिक्रमण कर प्रेम, शान्ति और अमरत्व के पद में प्रतिष्ठित होकर हम लोगों को देख कर हमारे ऊपर अमृत की वर्षा करते हों । गाड़ी में बैठे-बैठे उस अमृत वर्षा का रसा-स्वादन करते हुए भजगोविन्दं, भजगोविन्दं की ध्वनि के साथ-साथ भजन गाते हुये शिरडी पहुँच गये ।

मेरा विस्तर साईं बाबा की समाधि के सामने ही था, रात को मन्दिर में भजन-कीर्तन होता था । यह आयोजन देख कर मुझे आलन्दी में श्री सन्त ज्ञानेश्वर महाराज के स्थान पर रात भर होने वाले भजनों की याद आयी । बहुत से लोगों का यह विचार है कि बहुत तासी बजा कर सादे तरीके से गाये भजन उत्तम प्रकार का होता है यहाँ उसी प्रकार की पद्धति थी । परन्तु शान्ति पूर्वक हृदय से धीरे-धीरे गाये भजन अधिक प्रभावशाली होते हैं इसी लिए मुझे आलन्दी की याद आयी क्योंकि वहाँ की गायन पद्धति बहुत ही मधुर और उत्तम लगती

थी। यदि भजन शान्तिपूर्वक मनुष्य के अतिरिक्त प्रभु को सुनाने के निमित्त गाये जाय और उसका भाव गाने वाले के जीवन में कुछ अंशों में उतर आये, तो उसमें अद्भुत बल आ जाता है, इसमें कोई सन्देह नहीं।

दूसरे दिन प्रातःकाल हम लोगों ने नदी में स्नान किया, वहां यह विचार आया कि कल रात में साकोरी गये थे परन्तु अंधकार में कुछ देखने का आनन्द न आया, यदि हो सके तो आज फिर चला जाय। साथ के लोगों ने खोज कर साइकिलों की व्यवस्था कर ली। चार साइकिलों पर चार लोग बैठ गये पांचवीं पर जो साथी बैठे थे उन्होंने मुझे अपने आगे बैठा लिया मैं साइकिल चलाना न जानता था, अस्तु और कोई उपाय न था। इस प्रकार सब लोग थोड़ी देर में साकोरी पहुंच गये।

हम लोग साकोरी पूजा आरती के समय पहुंचे। उपासनी बाबा के शिष्य स्त्री पुरुष सभी खड़े-खड़े प्रार्थना गा रहे थे। वातावरण बहुत सुन्दर प्रतीत होता था। रात में इस प्रकार का आयोजन इस स्थान की शोभा को और बढ़ा रहा था। प्रार्थना के उपरान्त हम लोग अच्छी प्रकार से विभिन्न स्थानों पर घूमे फिरे और फिर साइकिलों पर सवार होकर भोजन के समय शिरडी पहुंचे, कल के भोजन में कुछ विशेष स्वाद न था अतः बहुत से साथियों ने भोजन करने से इन्कार कर दिया था। दोपहर की मोटर से हम लोगों को मनमाड़ जाना था, जाने के पूर्व एक बार हम लोग साईं बाबा की समाधि के दर्शन फिर कर आये।

मेरी साधना के सम्बन्ध में कोई निश्चित संकेत साईं बाबा से नहीं प्राप्त हुआ। मेरी बड़ी इच्छा थी, और साईं बाबा के यहां पर मेरे आने का कारण भी यही था, परन्तु वह इच्छा पूरी न हुई, यदि कहीं यह भी इच्छा पूरी हो जाती तो साईं बाबा और शिरडी की यात्रा

सफल हो जाती, परन्तु प्रभु की इच्छा, उसमें सन्तोष और आनन्द माने बिना छुटकारा नहीं। साईं बाबा ने अपनी अद्भुत शक्ति से अनेकों दीन दुखी पीड़ित मनुष्यों की सहायता किया। रोगी, निर्धन, अपंग, अनाथ और असहाय को सहायता देने के साथ-साथ आध्यात्मिक विकास या अनुभव के प्रार्थी साधकों का उपकार किया था। अपनी शक्ति को गुप्त न रख कर इच्छापूर्वक अधिक से अधिक व्यापक ढंग से वे सबकी सहायता करते थे। उनके जीवन के ग्रंथ आज उपलब्ध हैं। विशेष जिज्ञासु को उनमें बहुत उपयोगी सामग्री प्राप्त होगी। साईं बाबा का जीवन चरित्र पढ़ कर और शिरड़ी की यात्रा कर मुझे एक बार फिर यह विचार आया, कि साईं बाबा की तरह सब प्रकार की सिद्धि और ईश्वर की कृपा किये हुये महापुरुष, यदि गांधी जी की तरह देश व दुनियां के मंगल के लिए सेवा का कार्य करें, तो मानव जाति का बड़ा कल्याण हो। ऐसे महापुरुषों को संसार में प्रगट कर मानव जाति का हित करने के लिए मैंने प्रभु से प्रार्थना किया और शिरड़ी के संस्मरण याद करते-करते बम्बई की यात्रा समाप्त किया।

अन्नदाता का मिलाप

धर्म परायण भारतवर्ष में इस समय धर्म की दशा क्षीण हो गयी है। धर्म के नाम पर अधिकांश जहां तहां अधर्म का दिग्दर्शन होता है। उसी तरह अच्छा या बुरा निर्णय करने की हंस बुद्धि अधिक प्रमाण में कुण्ठित हो गयी है फिर भी अंधकार पूर्ण मार्ग में दीपक की भांति कभी-कभी किसी ज्योतिर्मय महापुरुष का दर्शन हो जाता है। भारत में अब भी सच्चे संत महात्माओं का प्राकट्य हो जाता है, उस समय सत्य का प्रत्यक्ष स्वरूप समक्ष आने से, इस देश के उज्ज्वल भविष्य की आशा की जागृति हुए बिना नहीं रहती।

जिस महापुरुष का उल्लेख यहाँ पर करने जाता हूं उनसे साक्षात्कार करने की मेरी इच्छा बहुत पहले से थी। वे बड़ौदा में रहते थे अतः वहां जाने का कोई प्रसंग न बनने के कारण उनके दर्शनों का सौभाग्य भी न प्राप्त हो सका। उनकी थोड़ी बहुत जानकारी भाई भवानी शंकर द्वारा प्राप्त हुई थी, तबसे उनसे मिलने की इच्छा हुई, फिर अन्ततोगत्वा वह समय आ ही गया जब हिमालय जाने के पूर्व बड़ौदा जाना निश्चय हो गया।

महात्मा जी का नाम सरस्वती नन्दन था, उन्होंने कहला भेजा था कि यदि मैं न आ सकूँ तो वे स्वयं मेरे पास आयेंगे। परन्तु यह कैसे

हो सकता था ? एक वृद्ध महात्मा मुझे प्रेम पूर्वक बुलाये, उसके संदेश को मैं न सुनूं और उसको अपने पास आने का कष्ट दूं, इससे तो यही अधिक उपयुक्त होगा कि उधर जाकर स्वयं उनको इधर आने के लिए मना कर दिया जाय, अतः मैंने सूचित करवा दिया कि मैं उनके दर्शन करने आऊंगा और अवश्य आऊंगा ।

नियत समय पर महात्मा जी ने गाड़ी भेजी और हम लोग उनके पास जाने के लिए चल दिये । उनका मकान उनकी निजी सम्पत्ति थी । किसी भी महात्मा के निवास स्थान की कल्पना साधारण रूप से बस्ती के बाहर किसी एकान्त स्थान में की जाती है, परन्तु इस संत का मकान बस्ती के मध्य में था । इतना अवश्य था कि बस्ती पूर्ण शान्ति-मय थी । हम लोग गाड़ी से उतर कर मकान के ऊपर चढ़े । महात्मा जी खड़े थे । वे तुरन्त पास आये हम लोगों ने उन्हें प्रणाम किया । मैं नीचे बैठने वाला था वैसे ही उन्होंने ऊपर आसन पर बैठने को कहा । उनके ऐसे वयोवृद्ध पुरुष के आगे ऊँचे आसन पर बैठना, मर्यादा के अनुकूल न था परन्तु उनका आग्रह चलता रहा अस्तु कोई बचाव न देखकर मुझे उनकी बात स्वीकार करनी पड़ी, इस प्रथम प्रसंग से मुझे उनकी महानता का बोध हो गया । आजकल अवस्था, विद्या इत्यादि अनेक कारणों से बड़े छोटे में भेद भाव बढ़ता जाता है और कुछ भी योग्यता न होते हुये भी अहं भाव के कारण अपने को सर्वोत्तम मनवाने की वृत्ति अधिकाधिक फैलती जाती है । इतने वयोवृद्ध होने पर भी दूसरे को मान देने को तैयार रहना और देना कुछ कम महानता की बात नहीं, यह तो केवल अनुभवी एवं विवेकी पुरुष ही समझ सकते हैं ।

महात्मा जी की उम्र बहुत बड़ी थी । ऐसा कहा जाता था, कि एक वृद्ध को जिनकी अवस्था प्रायः ८० वर्ष की होगी महात्मा जी ने
फा० नं० २२

बाल्यकाल में, अपनी गोद में खिलाया था। अस्तु सौ वर्ष से अधिक उनकी अवस्था आंकी जाती थी और उनके शरीर से यह अवगत भी होता था।

हाथ में माला लेकर भगवन्नाम का जप करते हुये वे हम लोगों के पास बैठे, उस समय उनकी निर्मल मुखाकृति और नेत्रों को देख कर बहुत कुछ जानने को मिला। ऋषिकेश में बाबा काली कमली वाले की संस्था में जब बाबा रामनाथ जी थे, उस समय ये महात्मा ऋषिकेश में रहते थे और रामनाथ जी से बड़ा प्रेम करते थे। पिछले कितने वर्षों से वे बड़ोदा में अपना स्वतंत्र मकान लेकर रहने लगे थे। कभी-कभी अपने जन्म स्थान को भी जाते थे। उनके अनेकों भक्त, जलगांव, खंडवा इत्यादि अनेक स्थानों पर अधिक संख्या में थे। दो एक कुटुम्ब तो अपना सर्व समर्पण कर दिन रात उनकी सेवा में ही उपस्थित रहते थे। उनका स्वभाव शान्त, नम्र एवं प्रेमी था। विद्वान भी अपनी अनेकों समस्याओं का निराकरण पाने की इच्छा से इधर आते रहते थे। वे अपने को गुप्त रखने की चेष्टा में रहते थे, फिर भी लोग उनका पीछा न छोड़ते थे। अपनी ख्याति, कीर्ति एवं शिष्यगण व भक्त मण्डली को बढ़ाने में उनकी लेश मात्र रुचि न थी। युवा अवस्था में उन्होंने बड़ी तपस्या की होगी। हम लोगों ने उनका एक युवावस्था का फोटो जिसमें वे केवल एक कोपीन पहने हैं देखा था। महात्मा जी के साथ बड़ी वार्ता हुयी। उसके बाद उनकी इच्छा से मैंने दो तीन भजन गाये।

उसके बाद महात्मा जी ने अपने भक्तों से एक को मेरी पूजा करने को कहा। मैंने कहा “आपके सामने मेरी पूजा नहीं हो सकती मैं तो एक साधारण बालक हूं।” परन्तु वे कब मानने वाले थे? विधि पूर्वक चन्दन लगवा कर उन्होंने मेरी पूजा करवायी और एक सुन्दर हार पहिनाया, फूलों का गजरा दिया संभवतः यह प्रक्रिया किसी को रुचिकर न प्रतीत

हो परन्तु मेरे मन में महात्मा जी के प्रति उनकी महानता को बढ़ाने वाली यह एक मुख्य बात थी। अपने सामने अपने प्रमुख भक्तों द्वारा दूसरे की पूजा करवाना यह कोई साधारण मनुष्य का काम नहीं है। इसके लिए तो कितनी नम्रता, हृदय की पवित्रता और उदारता चाहिए। आडम्बर और अभिमान करने वालों से ऐसा काम नहीं हो सकता है। इस व्यवहार की मेरे मन पर बड़ी गहरी छाप पड़ी। मेरे दिल में उस महापुरुष के प्रति आदर भाव उत्पन्न हुआ और जब विदा मांगने का प्रश्न आया तो उनके स्नेह को देख कर हृदय गद्गद् हो गया।

इस पुरुष के प्रसंग से यदि दूसरी कोई बात न ग्रहण करके यदि केवल नम्रता ही सीखी जाय तो जीवन उज्ज्वल हो उठे, और मनुष्य महानता प्राप्त कर ले इसमें सन्देह नहीं। स्वभाव में ऐसी सरलता और माधुर्य बिना महापुरुष के दूसरे में कहां हो सकती है? ऐसे महापुरुष चाहे जिस देश या वेष में हों सदा सर्वदा सबसे वन्दनीय और पूज्य हैं। इसमें सन्देह नहीं।

इन महात्मा को अधिकांश लोग अन्नदाता के नाम से जानते हैं। उनके भक्तगण भी उनको इसी नाम से संबोधन करते हैं। बात यह थी कि कोई भी अभ्यागत उनके यहाँ से अन्न या प्रसाद पाये बिना वापस नहीं जा सकता था। उन पर प्रभु की कृपा हुई है। पंढरी नाथ या विठ्ठल भगवान पर उनकी प्रीति है अतः प्रभु की सेविका लक्ष्मी जी मानो उनके पास उपस्थित रहती हों। जब उन्होंने मुझको आमंत्रित किया, तो अपने एक भक्त भवानी शंकर को आदेश दिया, कि यद्यपि यहाँ पर सूखा मेवा व फल है, फिर भी महात्मा जी के लिए और जो फल मेवा की आवश्यकता हो वह सब बाहर से खरीद कर ले आयें।

इस महापुरुष के जीवन में ही कितने इस प्रकार के शक्ति

परिचायक और सुन्दर प्रसंग होंगे, परन्तु विश्वस्त सूत्र से प्राप्त एक प्रसंग का उल्लेख यहाँ पर करता हूँ। मध्य भारत में उदयगढ़ से पांच मील दूर चांदोद नामक एक गाँव है। वहाँ इस महापुरुष ने तीस दिन अन्न जल बिना तपश्चर्या करने का निश्चय किया। उदयपुर के महाराणा को महात्मा जी पर प्रेम था। उन्होंने महात्मा जी के मकान को बन्द कराकर बाहर पहरा लगा दिया और आदेश दिया कि बगैर उनकी आज्ञा के मकान खोला न जाय। महात्मा जी ने तीस दिन के उपरान्त पहरेदार से दरवाजा खोलने को कहा, परन्तु पहरेदार ने राजा के आने तक शान्ति रखने को कहा। महात्मा जी ने कहा कि “मुझे और राजा की आज्ञा? मैं तो केवल भगवान् की आज्ञा पालता हूँ।” ऐसा कहकर वे ईश्वर की कृपा और अपनी शक्ति से दरवाजा खोल कर बाहर आगये। जब राजा उधर आये तो महात्माजी को बाहर देखकर सब बात का पता लगाया और आश्चर्यचकित होकर महात्मा जी के पैरों पर गिर पड़े। जिस स्थल पर महात्मा जी ने यह प्रखर तप किया था वहाँ पर राजा ने विठ्ठल के मन्दिर की स्थापना की और वहाँ नियमित दर्शनार्थ जाने का नियम बना लिया। साधु, संत एवं क्षुधित वहाँ भोजन भण्डारे से पाते हैं।

दम्भ, कपट और पाखण्ड जिन्हें स्पर्श न कर सके, जो लौकिक प्रतिष्ठा के मोहपाश से मुक्त होकर गुप्त रीति से भगवद् प्रेम का अमूल्य रसास्वादन करते हों, जो सहृदयता, स्नेह, और सज्जनता में सदा सम्पन्न हों ऐसे महापुरुष इस संसार में बहुत कम हैं। मनुष्य के पुण्योदय होने पर ईश्वर की कृपा से जब उनका समागम होता है तो वह निष्फल नहीं जाता। जीवन को आनन्द से विभोर कर दूरवर्ती प्रभाव पहुँचाता है। अन्नदाता के समान महापुरुष के समागम से मुझे अपार आनन्द हुआ, यह कहना अत्यावश्यक है।

नर्मदा तट की यात्रा

इसी वर्ष सरोड़ा में साढ़े तीन महीना निवास करने के उपरान्त साबरमती होकर नर्मदा के किनारे जाने का अवसर आया। नर्मदा तट अत्यन्त प्रसिद्ध माना जाता है। शास्त्रों में उसकी महिमा अच्छी तरह गायी गई है अतएव उसके दर्शन व निरीक्षण करने की इच्छा अधिक समय से मेरे मन में थी। भगवत् कृपा से इस बार वह पूर्ण हुई।

करनाली में स्थित दामोदर मठ में हम लोगों ने स्थान जमाया। मठ नर्मदा नदी के पास ही है। नर्मदा का दर्शन पाकर गंगा जी का स्मरण हो आया। जल बड़ा स्वच्छ और मधुर है, परन्तु वर्षा की न्यूनता के कारण उस वर्ष प्रवाह कुछ कम प्रतीत होता था। करनाली के समीप नर्मदा का दृश्य बड़ा ही सुहावना है। तट पर मन्दिर व धर्मशाला काफी प्रमाण में बने हैं। उनमें से कितनों का निरीक्षण किया। उन सब में विशेष उल्लेखनीय स्वामी श्री विद्यानन्द जी महाराज का मकान, श्री गीता ज्ञान गुफा, कुबेर भण्डारी का स्थल, और हंसारूढ़ स्वामी का स्थल हैं। ये तीनों स्थल बड़े रमणीक हैं। व्यापारिक चहल पहल एवं अशान्ति रहित यह भाग कुछ सुनसान सा लगता है, परन्तु नर्मदा नदी का तट इसकी शोभा और आकर्षण को बहुत बढ़ा देता है। प्राकृतिक सौन्दर्य के इस प्रदेश में, मच्छरों की बड़ी बाहुल्यता थी।

रात्रि में बराबर उनके समाचार मिलते रहे । जहाँ गर्मी में इतने मच्छर हों वहाँ वर्षा ऋतु में क्या दशा होगी ? जीवन में जिस प्रकार सुख-दुख हर्ष शोक, धूप छाया, ओत-प्रोत हैं, उसी प्रकार इधर का मच्छर है । देखने में छोटे और निर्बल, परन्तु कार्यकुशल एवं अत्यन्त प्रभावशाली, वहाँ के मच्छर, रात भर सोने न देते थे । योगी जिस प्रकार रात में जग कर अपनी साधना में मग्न रहता है उसी प्रकार सारी रात मच्छर भी अपने कार्य में रत रहते थे । यहाँ तीर्थ स्थान में आकर यात्री को, रात्रि जागरण करना चाहिये, भगवान की प्रार्थना व स्मरण करना चाहिये, इसी से मच्छरों का सहयोग भी उल्लेखनीय है । यदि ऐसा ही हो तो बहुत सुन्दर है परन्तु स्थिर रहना भी तो असम्भव था, जिसका मनोबल उत्तम हो और जो अनुकूल व प्रतिकूल परिस्थितियों में समान रहकर ईश्वर स्मरण में अथवा आत्म दर्शन में समाधिस्थ हो सकता हो अथवा जो प्रगाढ़ सुषुप्ति अवस्था में रहने का साधक हो, वही वहाँ पर अपनी साधना कर सकता है । साधारण श्रेणी के साधकों को मच्छर वहाँ रहने भी नहीं देते ।

२ बुद्धदेव का दर्शन

नर्मदा नदी का तट बड़ा पवित्र माना जाता है । साधकों के लिए यह कम महत्व का नहीं है । नर्मदा का तट साधना के लिए अति उत्तम है । इसी विश्वास से प्रेरित होकर, संत, ज्ञानी, योगी इत्यादि नर्मदा के तट पर आते हैं और इच्छानुसार स्थल को चुन लेते हैं, वहीं पर साधनारत होकर परम सिद्धि के पथ पर अग्रसर होते हैं । प्राकृतिक सौन्दर्य शान्त और एकान्त नदी या पर्वतीय स्थलों को जीवन की साधना के साधकों ने अपने निवास के लिए पसन्द किया है । पर्वतीय या नदी तट के स्थलों के साथ किसी महान विभूति की बात यदि संकलित हो गयी, तो उस स्थल की महिमा तीर्थ के बराबर गिनी

जाती है, और जिज्ञासु एवं रसिकगण इन स्थानों पर एकत्र होकर शान्ति और आनन्द प्राप्त करते हैं ।

करनाली और चांदोद के बीच में नदी के तट पर एक महात्मा तपस्या करते थे, उनका नाम बुद्धदेव था । एक दो मनुष्यों से सुना था कि उनका स्थान रास्ते में ही पड़ता है अतः हम लोग होड़ी में उतर कर उनके दर्शन करने गये । यह महात्मा नदी के किनारे ही रहते थे । गर्मी से रक्षा के लिए चारों ओर लकड़ी से रोक कर, ऊपर टाट से छाया की गयी थी । कुछ भक्तों ने इधर उधर सरपत की झोपड़ी बना दी थी । महात्मा जी की अवस्था प्रायः ४० वर्ष की होगी । उन्होंने व्याघ्र चर्म लपेटा था । जब हम लोग पहुंचे थे उस समय वे भगवान श्री कृष्ण की फोटो सामने रख कर जप कर रहे थे । नर्मदा तट पर भिन्न-भिन्न स्थानों पर इसी प्रकार रहते २ उनको १२ वर्ष हो गये थे, परन्तु उनकी मुखाकृति से ज्ञात होता था कि जैसे अभी उनकी प्राथमिक अवस्था ही चल रही हो, बाकी महापुरुषों की अन्दर की गहराई कौन नाप सकता है ? वे मौनव्रत रखते थे, द्रव्यादि कुछ न लेते थे, और दर्शनार्थी को अपने पास अधिक देर न बैठने देते थे ।

जो दृढ़ता और लगन के साथ साधना चलाता रहेगा, वह निश्चयात्मक एक न एक दिन अच्छी दशा को पहुंच सकेगा । आध्यात्मिक विकास के किसी भी प्रामाणिक प्रवासी के लिए यह बात सत्य है कि दृढ़तापूर्वक पुरुषार्थ की निरंतरता, आदर्श की सिद्धि के लिए लगन, और प्रामाणिकता की इस पंथ में अत्यन्त आवश्यकता है । ये सब और अन्य साधन सम्पत्ति के साथ जो ईश्वर की शरण ले अथवा जो आत्म विकास की आकुलता करे, उस पर ईश्वर की कृपा अवश्य होगी, इसमें सन्देह नहीं । इस पंथ का प्रामाणिक प्रवासी, अपनी साधना की सफलता की चिन्ता ईश्वर को सौंप दे, और रात दिन नूतन और

मंगल प्रस्थान करता रहे, फिर भी उसको शान्ति सिद्धि या पूर्णता की प्राप्ति न हो, ऐसा आज तक सुनने में नहीं आया, भविष्य में भी ऐसा होना असम्भव है। आत्मबल और लगन की प्रतिमा बन कर, इसी नर्मदा तट पर आज तक कितने ही साधक आये गये होंगे। एक या दो नारायण स्वामी और ब्रह्मानन्द की बात तो जनता जानती है। परन्तु न जाने कितने स्वामी और आनन्द की मूर्ति यहां से जीवन की सफलता प्राप्त कर चले गये होंगे, और कितने ही यहां के शान्त वातावरण में विलीन हो गये होंगे। कौन जान सकता है ? “गोपनीयं गोपनीयं, गोपनीय, प्रयत्नतः” के सूत्र का उच्चारण करने वालों को अपने आत्मीय ढंग को सदा लोगों की नजरों से गुप्त रखने वाले महापुरुषों को इस विशाल वातावरण ने सरिता की शाश्वत शान्ति में समा लिया होगा। नम्र होते हुये भी गौरवशाली और गंभीर होते हुये मधुमयी नर्मदा और उसी के साथ खड़ी हुई यह भेखड़ा विश्व के वातावरण से चिर-परिचित आकाश, सूर्य, चन्द्र, बादल और तारागण से पूरित उसका भण्डार, वह पवन और संसार का चिर साथी प्रकाश और अंधकार और सब मिलकर यदि भारत के उन सच्चे जवाँमर्द महापुरुषों की कहानी न कहें तो दूसरा और कौन कहेगा। उनके ओजस्वी जीवन की साक्षी दूसरा कौन दे सकता है ? जिस इतिहास को मानव ने लिखा है और जाना है वह तो विशाल और सुन्दर है। परन्तु मानव की मर्यादा जिसे स्पर्श जान न सके ऐसा इतिहास भी बहुत है। उसकी सुन्दरता या विशालता की कल्पना भी मानव कैसे कर सकता है ? शक्ति की इस अल्पता का जब भान होता है, तब वह न्यूटन की तरह नम्रातिनम्र बन जाता है और अपने को विशाल सागर के तट पर सीप खोजने वाले छोटे बालकों की तरह मानने लगता है, इसमें सन्देह नहीं। बुद्धदेव का दृश्य, स्मृति पर सदा अंकित रहेगा। इस प्रकार के दृश्य विरले ही देख पाते हैं। संसारी मनुष्य को इस स्वरूप देखने का काम तो असंभव है। परन्तु जिन्होंने बाह्य त्याग किया है ऐसे महात्मा भी साधना की ऐसी

मगनावस्था में भाग्य से ही दिखाई पड़ते हैं। आज तो विद्वान वर्गों में कितने ही साधू, धन प्रतिष्ठा और लोक रञ्जन में पड़े हैं, साधु जीवन या त्याग मुख्यतः साधना और उसके द्वारा मुक्ति और शान्ति की प्राप्ति के लिए है और तदुपरान्त या उसके साथ साथ, निष्काम दूसरों के हित के लिए है। यह बात आज साधु वर्ग में एकदम भूली नहीं है। कारण कि शास्त्रों और संत पुरुषों का आधार लेकर दूसरों को तो वे ऐसा ही उपदेश देते हैं। परन्तु श्रद्धा या पुरुषार्थ में अपनी कमजोरी को दूर करने की इच्छा शक्ति का अभाव है। इसलिए अथवा दूसरे कोई कारण से, तपस्या या साधना का मूल ध्येय भूल गया है ऐसे कठिन समय में ईश्वर के लिए व्याकुलता की जागृति करना, रात दिन साधना का व्रत लेकर, पुरुषार्थ में लगना, इत्यादि क्रियायों को देखकर किसका चित्त प्रसन्न न होगा ? चाहे वह साधक हो अथवा आध्यात्मिक पंथ के आरम्भ का प्रवासी हर प्रकार से उसका जीवन प्रशंसनीय है। प्रेरणास्पद है, इसमें सन्देह नहीं।

साई बाबा का अलौकिक अनुभव

साबरमती में रहने का मकान अच्छा था। उसी मकान में तारा बहन भी अपने बालकों के साथ रही थी। परन्तु हम लोगों के साथ रहने पर भी उसके लिए सत्संग का लाभ उठाना कठिन था। उसके दोनों पैर में बाला निकले थे। सरोड़ा के लोग बावली के पानी को गंदा कर देते थे। वह पानी पीने के काम में भी आता था, अतः शहर में जगह जगह बाला का उपद्रव उत्पन्न हो गया था। तारा बहन का कमरा अहमदाबाद में बहुत छोटा था, इसलिए हम लोग उसे साबरमती ले आये थे।

साबरमती लाने के उपरान्त बहन के लिए उपचार जारी रखा, परन्तु पूरा आराम न हुआ। बाला के दर्द के कारण उसे घूमना फिरना तो क्या उठा बैठा भी न जाता था। रोग घटने के बजाय बढ़ता ही जाता था। हम लोगों का हिमालय जाने का समय निकट आता था, उस समय तक यदि बहन को आराम न होगा और दर्द इसी प्रकार से होता रहेगा तो उसकी पूरी तीमारदारी न हो पायेगी। उसके बड़े पुत्र, रमेश को भी बाला की पीड़ा थी अतएव समस्या बड़ी गंभीर थी।

अन्त में हम लोगों ने विचार किया कि इस कठिन समय में माता जी और बहन को लेकर सरोड़ा जाना चाहिये और वहीं रहना भी

चाहिये । माता जी बहन के साथ रहेंगी और मैं अकेले हिमालय के लिए रवाना हो जाऊंगा, इसी साल मुझे बदरीनाथ भी जाना निश्चय था । बदरीनाथ का जाड़ा माता जी से सहन हो जायगा, यह प्रश्न भी था और बहन की सेवा सुश्रूआ में माता जी को रुकना आवश्यक भी था । इन सब बातों को ध्यान में रखते हुये उपरोक्त विचार सबके पसन्द आ गया ।

तदनुसार एक दिन आवश्यक व्यवस्था करने के लिए माता जी सरोड़ा जाने के लिए विदा हो गयीं और तीन दिन उधर रुक कर वापस भी आ गयीं ।

हिमालय के लिए प्रस्थान का मुहूर्त पक्का हो गया था । दो दिन के उपरान्त मुझे प्रस्थान करना था । माता जी प्रायः सन् १९४८ ई० से सदैव मेरे साथ रहती थीं । यह पहिला ही अवसर था कि वे मुझसे अलग हो रहीं थी । परन्तु वे बुद्धिमान थीं और परिस्थिति की गंभीरता जानती थीं । धर्म, ईश्वर या आध्यात्मिकता के नाम पर स्वधर्म से आँख बन्द करने की, अथवा आवश्यक सेवा धर्म की अवहेलना करने की शिक्षा, उन्हें न थी । उसमें उनकी श्रद्धा भी न थी । अस्तु मेरे इस अकेले प्रवास के कारण उनको शोक न था । बहन के साथ रहने के लिए वे प्रसन्नता पूर्वक तैयार थीं, जीवन साधना के प्रथम भाग में मैं हिमालय में बरसों अकेले ही रहा था । ईश्वर की इच्छा से जो परिस्थिति आये उसे शान्तिपूर्वक झेल लेने की मेरी भी तैयारी थी । एकान्त जीवन का मुझे अभ्यास था । एकान्त वास के लिए मेरी अभिरुचि प्रथम से ही थी । बहन की विकट परिस्थिति का मुझे ध्यान था । इस परिस्थिति ने मेरे एकान्त वास में सहयोग दिया अस्तु माता जी का बहन के पास रुक जाना मुझे अच्छा लगा ।

विवेकी मनुष्य के जीवन में ऐसे अनेकों अनुभव होते हैं, जो उसे शिक्षा देते हैं कि अन्ततोगत्वा ईश्वर की इच्छानुसार, अथवा किन्हीं अदृष्ट

कर्मों के परिणाम के कारण ही सब प्रसंग आते जाते हैं। मेरे लिए यह बात कोई नई न थी। अतः अनेक वरसों से मेरी गतिविधि ईश्वर की इच्छानुसार हुआ करती थी। मेरे जीवन में काफी समय से ईश्वर की इच्छा का अनुवाद होता था। उसी के अनुसार बहन के बारे में ईश्वर की इच्छा क्या है ? उसकी जानकारी प्राप्त करने का मुझे विचार आया। और मेरा विचार सफल हो गया।

वैशाखी पूर्णिमा की वह रात थी। ता० १७-५-५४ को देर तक मकान के ऊपर के कमरे में बिछौने में ही मैं प्रार्थना करता रहा। प्रार्थना पूरी हो जाने के बाद मैंने ध्यान करना आरम्भ कर दिया। बाहर सभी जगह चांदनी फैल रही थी, वातावरण बड़ा ही सुहावना था। थोड़ी देर के बाद श्री परमहंस देव का दर्शन हुआ उसके बाद तुरन्त ही साईं बाबा का दर्शन हुआ। दर्शन देकर साईं बाबा ने मेरे अन्दर प्रवेश किया और सुमधुर और स्पष्ट शब्दों में बोलने लगे, “मैं साईं बाबा हूं। यूं तो विश्व में रहता हूं पर शिरड़ी में साक्षात् रहता हूं।” फिर मेरी ओर संकेत करके मानों किसी दूसरे से बात करते हों, “यह महान पुरुष है युगावतार है। इसके द्वारा भारत व विश्व के महान कार्य होने को हैं। इस पर मुझे प्रेम है अतः मैंने उसके अन्दर प्रवेश किया है। जिस समय इसकी साधना पूरी हो जायगी इसका काम हो जायेगा।” इन शब्दों के साथ उन्होंने मेरे पूर्व के दो जन्मों की बात भी बताई। इस सम्बन्ध में जो मुझे पहिले से ज्ञात था, उससे साईं बाबा की बात बराबर मिलती थी उसका यहां पर खोल देना ठीक न होगा।

इतनी बात कर साईं बाबा ने सुमधुर शब्दों में मुझसे कहा, “माता जी भले हिमालय जाय बहन व बालक यहां ही रहे, उनको क्या मैं दुःख होने दूंगा ? ना, ना, उन्हें कोई आपत्ति न आयेगी।”

इसके बाद वे अदृश्य हो गये। मुझे शरीर तथा अगल बगल का भान आया, मैं बिछौने पर वैसा ही बैठा था, घड़ी देखा तो सवा

बजा था। बाहर सभी जगह चन्द्रमा किरणों के रूप में आकर पृथ्वी पर खेल रहा था। थोड़ी देर बाहर छत पर खड़े रहने के उपरान्त मैं आराम करने लगा।

साई बाबा का अनुभव बहुत सुन्दर, अलौकिक और सामयिक था। उससे मेरे अन्दर आनन्द ही आनन्द छा गया। साई बाबा के समान समर्थ संत पुरुष मेरे पर प्रेम रख कर मेरे में कोई अधिकार न होते हुये भी मेरे ऊपर कृपा करते हैं, इसको मेरा सौभाग्य ही कहना चाहिये। उनके ऐसे महापुरुष की कृपा से ही, मेरी रही सही गंदगी दूर होगी। और अवगुण एवं अल्पता के सागर को गुण और शक्ति के भण्डार में पलट कर मैं सच्चा संत बन सकूँगा।

प्रातःकाल उठकर अपने अनुभव की बातें मैंने माता जी और बहन को बताया। वे बड़ी प्रसन्न हुईं, फिर भी अन्तिम निर्णय माता जी पर ही छोड़ा गया। उनको मेरी बात और मेरे अनुभव में श्रद्धा थी। बहन को विश्वास था, अस्तु ठीक अन्तिम घड़ी में माता जी ने मेरे साथ जाने का निश्चय किया। ईश्वर ने अपनी इच्छा को विचित्र रूप से कार्यान्वित कर दिया। दो दिन बाद बहन को मोटर में बैठाकर मैं अहमदाबाद उसके घर छोड़ आया, और फिर हम लोग स्टेशन पर पहुंचे। बहन से अभी उठा न जाता था। परन्तु साई बाबा के बचन का प्रभाव तो देखिये बहन को कोई कष्ट न हुआ और वे एक मास के भीतर पूर्णतया स्वस्थ हो गयीं। बहन और बालकों को साई बाबा अपने बालक मानते हैं इस बात का स्मरण करते ही मैं आनन्द से अप्लावित हो जाता हूं। इसी प्रकार साई बाबा, उन्हें सर्वदा अपना मान कर, उनकी रक्षा करें और उन्हें अपना और प्रभु का कृपापात्र बनायें, ऐसी मेरी उस महापुरुष से प्रार्थना है।

मनुष्य का जीवन जब इसी प्रकार ईश्वरच्छा से चले तो कितना

आनन्द आयेगा ? उसमें कर्त्तव्य का या कोई दूसरा अहंकार कदापि नहीं रहता । संकल्प विकल्प नहीं रहते, और भूत वर्तमान भविष्य की सब चिंताएँ दूर हो जाती हैं । ईश्वर की छत्रछाया में वह सदा निश्चिन्त बन कर मंगलमय, जीवनमुक्त की दशा का अनुभव करने लगता है । इस दशा की प्राप्ति कठिन है । परन्तु यदि किसी कारण से प्राप्त हो जाय तो फिर सभी तरह के भय, शोक, भ्रम और मोह का अन्त हो जायगा और जीवन उत्सवमय बन जायगा ।

श्री साईं बाबा के चरणों में इस अवसर पर फिर से प्रणाम करता हूँ । आशा है वे मुझे अपना जान कर मेरे पर सदा ही आशीर्वाद बरसाया करेंगे ।

• • •

“बदरीनाथ यात्रा के संस्मरण”

रामदास जी

प्रायः यह सुनने में आता ही रहता है कि “जिसको राम बचावे उसे कौन मार सकता है ?” इसलिए ईश्वर जिसकी रक्षा करने को तैयार है उसको गर्म आंच भी नहीं आती। उसकी रक्षा कभी तो कल्पनातीत आकस्मिक विचित्र ढंग से होती है, कि वह स्वयं और अन्य लोग भी, आचर्यचकित रह जाते हैं। इसी तरह का एक प्रसंग बदरीनाथ की यात्रा में उपस्थित हो गया। मार्ग में विष्णु प्रयाग से आगे बलदौड़ा चट्टी पड़ती है। वहाँ से घाटचट्टी का मार्ग कुछ कठिन पथरीला तीन मील लम्बा है। इसमें आगे चलते ही एक पुल आता है उसको पार कर हम लोग आगे बढ़ रहे थे कि एक आवाज सुनाई दी, हमलोगों के साथ दूसरा और कोई न था। अतः आवाज का कारण समझ में न आया, मैं और माता जी विस्मृत होकर थोड़ी देर खड़े रहे, और जब ध्यानपूर्वक देखा तो ज्ञात हुआ कि सामने गंगा पार अनेक लोग खड़े चिल्ला रहे हैं। चिल्लाने का कारण जानने के लिए हम लोगों ने आगे बढ़कर प्रयत्न किया तो सब बात समझ में आगयी। बात यह थी कि एक बूढ़ी मां बदरीनाथ से वापस होकर पुल की ओर जा रही थी, उसके साथी आगे निकल गये थे, और वह पीछे रह गई थी।

उसको ठीक दिखाई न देता था अतः रास्ता भूल कर एक दूसरी पगडंडी पर चलने लगी थी, जो आगे चल कर समाप्त हो जाती थी। पर्वत की कगार उस रास्ते को काटती थी, यदि उस जगह एक पग भी आगे बढ़ा जाय तो सीधे गंगा जी में पहुंच जाय। बूढ़ी माँ लकड़ी टेकते टेकते ठीक उस भय के स्थान पर पहुंच चुकी थी, उसका अन्तिम पग जो उसे गंगा जी में पहुंचा देता बढ़ने वाला था कि हम लोगों की दृष्टि उस पर पड़ गई वह पास में ही थी अतः तुरन्त मैंने आगे बढ़कर उसे पकड़ा और सीधे रास्ते पर उसको ले आया। परिस्थिति ऐसी थी कि एक ही पग उसके जीवन का वारा न्यारा कर देता परन्तु “जाको राखे साइयाँ” उसे कौन मार सकता है। बूढ़ी मां के साथ कोई न था, उसके सभी साथी आगे निकल गये थे, केवल प्रभु का साथ था, जो सभी के समीप रहते हैं। बूढ़ी मां ने जब सारी बात समझी तो उसकी आंखों में आंसू आ गए मुख्य मार्ग बताकर मैंने उससे कहा, “इस यात्रा का मार्ग विकट है इधर अकेले नहीं चलना चाहिये।”

उसकी आंखों से अश्रुधारा बहने लगी। उसने करुणापूर्ण होकर कहा—“साथ वाले लोग मुझे छोड़कर बढ़ते चले जाते हैं मैं उनके बराबर नहीं चल पाती !”

साथ वाले मनुष्य भी कैसे विचित्र थे ! अपने एक बुढ़े साथी को संभालने का कर्त्तव्य, वे भला किस यात्रा के पुण्य के कारण करते ? परन्तु यह भी प्रश्न है कि आखिर कौन से फल की प्राप्ति के लिए वे आगे बढ़ते जाते थे ?

बूढ़ी मां को मार्ग बताने में भगवान का बरद हस्त देखकर हम लोगों को अपार आनन्द हुआ। हम लोग विचार करने लगे कि ईश्वर जिसे उबारना चाहता है उसे कसे विचित्र ढंग से उबार लेता है, कुछ कहा नहीं जा सकता।

हम लोगों ने ईश्वर से प्रार्थना किया — “हे प्रभु ! जीवन के मुख्य मार्ग को भूल कर जब भी हम लोग, विपथगामी बनने लगें, तो ऐसे ही आपकी अदृष्ट मदद हम लोगों पर यथा समय मिलती रहे, और आपकी असी दृष्टि से हम लोगों का जीवन सफल हो जाय । आपका और हम लोगों का साथ कभी न छूटे, जीवन की यात्रा में आप सदा हम लोगों के साथ रहें ।”

वदरीनाथ से वापस आते समय जब यह स्थान आया, तो पूरा प्रसंग फिर ज्यों का त्यों आंखों के सामने आ गया, और ईश्वर की अपार अदृश्य शक्ति का विचार करते-करते हृदय गदगद हो गया ।

[२]

वदरीनाथ में शीत का बाहुल्य है । उस पर जब वर्षा हो जाती है तो ठंडक और बढ़ जाती है । सायंकाल को हम लोग तप्त कुण्ड पर जाते थे और वहां के रमणीक वातावरण में, थोड़ी देर बैठते थे । एक दिन सायंकाल को हम लोगों ने वहां पर एक साधु पुरुष को देखा । तप्त कुण्ड के पास गर्म पत्थर पर वे बैठे थे । उनमें हम लोगों को कोई विशेष आकर्षण न लगा परन्तु एक बात ध्यान देने के योग्य थी कि उनके पास पहनने और ओढ़ने के दो ही वस्त्र थे दूसरा कोई वस्त्र बिछाने को भी न था । वदरीनाथ के स्थान पर भीषण सर्दियों में पर्याप्त ओढ़ने बिछाने के साधन बिना, वहां रहना एक कठिन कार्य है । उस युवा साधु की सहन शक्ति देखकर हम लोगों को बड़ा आश्चर्य हुआ, और यह सोच कर दया लगी कि उसको पूरे साधन मिलते न होंगे । दो चार दिन बाद एक दिन हम लोगों ने उनसे पूछा, “क्या आप रात को भी यहीं पर रहते हैं ?” उन्होंने उत्तर दिया “हां ।”

मैंने कहा, “यहाँ तो सब खुला है। रात को बहुत ठंडक पड़ती होगी आपके पास ओढ़ने के लिए पूरे कपड़े भी नहीं हैं।”

“क्या करूँ,” उन्होंने लाचारी बताई, “जाड़ा तो लगता है परन्तु किसी तरह पड़ा रहता हूँ रात को जब बड़ा जाड़ा लगता है, तो उबलते पानी में नहा लेता हूँ” तप्त कुण्ड का यह पत्थर भी कुछ गर्म रहता है इसी से काम चल जाता है।

“यहाँ तो बहुत से यात्री आते हैं आप किसी से कम्बल की मांग करिये, किसी न किसी के हृदय में प्रभु प्रेरणा देंगे ही। आप को कम्बल मिल जायगा”। मैंने इस प्रकार बात को आगे बढ़ाया।

“किससे माँगू मनुष्य तो ठीक उत्तर भी नहीं देते। इसलिए मैं माँगता भी नहीं। जैसे तैसे काम निकल जाता है”। उन्होंने उत्तर दिया।

साधू का स्वभाव मुझे बड़ा पसन्द आया। उसी दिन रात को मैंने जाकर देखा तो वे एक पतला कपड़ा फैलाकर बैठे थे, और प्रेम के आवेश में आकर कोई स्तुति कर रहे थे। संभवतः वह स्तुति शंकर जी की थी। तप्त कुण्ड पर उस समय बहुत शान्ति थी। कुण्ड के उबलते पानी से भाप निकला करती थी, तारागणों के समूह पृथ्वी का दर्शन करने के लिए आकाश में एकत्रित हो गये थे। मुझे ऐसा प्रतीत हुआ कि साधू प्रामाणिक है। और उसको वास्तव में ओढ़ने और बिछाने के कपड़ों की आवश्यकता है।

मनुष्यों में एक समुदाय इस प्रकार का है कि उसे दूसरों का दुःख स्पर्श ही नहीं करता। इतना ही नहीं अनेकों को दुखी करने व देखने में उन्हें बड़ा आनन्द भी आता है। दूसरा वर्ग इस प्रकार का है कि वह दूसरे के दुख को देखकर पिघल उठता है परन्तु सहायता करने में अस-

मर्थ होने के कारण शान्त रहता है, तीसरा वर्ग जो सहायता करके दुख का भार कम कर सकता है परन्तु सहायता देने में अन्यमनस्क है । चौथा वर्ग अपने बाकी साधन और शक्ति का उपगोग कर दूसरे को सहायता करने का सतत प्रयास करता है ।

उस साधू की पूर्ण सहायता करने की शक्ति मुझमें न थी, तो भी सामर्थ्य के अनुसार उन्हें सहायता करने की इच्छा हुई । हम लोगों के पास खादी की एक मोटी चादर थी, जो पिछले जाड़े में बम्बई में खरीदी थी । मैंने दूसरे दिन उसे उस साधू की अर्पण कर दिया उसके आनन्द की सीमा न रही ।

बदरीनाथ धाम में बाकी के दिनों में जब शाम को हम लोग उधर तप्त कुण्ड की ओर जाते थे, तो उस साधू को जब वही चादर शरीर पर लपेटे देखते थे तो हृदय संतोष और आनन्द की सीमा पार कर जाता था ।

[३]

बदरीनाथ में एक दूसरे साधु पुरुष का दर्शन हुआ, वह मन्दिर के बाहर एक दूकान की दीवाल के पास चौक में रहते थे, उनका नाम रामदास जी था । कई वर्षों से जाड़ों में भी वहीं रहते थे । जाड़े में बदरीनाथ की भूमि बर्फ से ढक जाती है, उस समय की ठण्डक का सहज में अनुमान किया जा सकता है, ऐसी भीषण शीत में अकेले रामदास जी वहाँ रहते थे, यह उनकी नितान्त एकान्त प्रियता और तितिक्षा की द्योतक है ।

बदरीनाथ में बारह महीने रहने वाले महात्मा पिछले पचास वर्षों में केवल दो या तीन थे । उनमें एक सिद्ध बाबा सुन्दरनाथ जी और दूसरे बच्चीदास जी के विषय में कहा जाता है कि जाड़े में वे कितनी बार बदरीनाथ छोड़ भी देते थे । एक और महात्मा वसुधारा की गुफा में रहते थे । ये तीनों महात्मा हिमालय की पुण्य भूमि में ही शान्त हो

गये । सुन्दरनाथ जी के विषय में कहा जाता है कि वे अदृश्य हो गये । इस बात को स्मरण कर बाबा रामदास जी कभी कभी कह देते हैं कि मेरा भी यही हाल होने को है, मैं भी दो तीन वर्ष में शरीर छोड़ दूंगा ।

यह बात सुनकर हम लोगों को आश्चर्य होता है और थोड़ी हँसी भी आती है । वह यह कि एकान्त में रहने वाले इस महात्मा पुरुष को मृत्यु का ऐसा भय कहां से आया ? रामदास जी गहरे ज्ञानी या अभ्यासी नहीं हैं उनके पास से साधना की कोई स्पष्ट जानकारी मिलने के बजाय निराशा ही प्राप्त होगी, परन्तु उनमें एक बात बड़े महत्व की है जो प्रत्येक का ध्यानाकर्षण किये बिना नहीं रहती और किसी भी बुद्धिमान मनुष्य के दिल में प्रेम एवं सम्मान को जगाती है ।

बदरीनाथ में बहुत साधू रहते हैं और अनेकों आते जाते रहते हैं । उनकी दशा अधिकांश शोचनीय होती है, वे भिक्षा के लिए निरन्तर दौड़ लगाते रहते हैं । यात्रियों के पास अपनी विभिन्न याचनायें प्रस्तुत करते हैं परन्तु रामदास जी की बात निराली है । वे अपने स्थान पर ही बैठे रहते हैं । बरसात में भी कहीं हट कर नहीं जाते । भिक्षा के लिये भी बाहर नहीं निकलते । ईश्वरेच्छा से जो सहज में प्राप्त हो जाय उसी से अपना निर्वाह करते हैं । उनकी यह शान्त, स्थिर और निस्पृह वृत्ति कुछ कम आकर्षक और प्रशंसनीय नहीं । ऐसी वृत्ति भी एक तरह की विकट साधना का महान परिणाम स्वरूप है । यह देख कर हम लोगों के हृदय में उनके प्रति अपार आदर उत्पन्न होता है । केवल उस ईश्वर परायण शान्त और निस्पृह वृत्ति का मंत्र पाकर हम लोग उनके पास से वापस आये फिर भी अपना उधर जाना व्यर्थ नहीं हुआ । यूँ कहिये कि बहुत सफल रहा । शान्त वृत्ति का सन्देश देने वाले इस महात्मा पुरुष को हम लोगों का बारम्बार नमस्कार प्रेम पूर्वक, अत्यधिक नमस्कार ।

भगवत् प्रेरणानुसार बदरीनाथ धाम में १७ दिन निवास करके हम लोगों ने ऋषिकेश चलने की तैयारी आरम्भ कर दी । जिस दिन वह पुण्यमय धाम छोड़ा, उस दिन बदरीनाथ के मन्दिर में संत साधु की मण्डली इकट्ठा हुई थी । जब तक हम लोग रहे तब किसी भी दिन कुछ न हुआ जब चलने लगे तो संत मण्डली एकत्र हो गयी, यह प्रसंग देख कर बड़ा आश्चर्य हुआ परन्तु जब जाँच पड़ताल किया तो ज्ञात हुआ कि पारलियामेन्ट के कोई हरिजन सदस्य बदरीनाथ आये हैं । वे मन्दिर में प्रवेश न करें इसलिए साधु समाज में चर्चा चल रही थी । धर्म के संरक्षक साधु धर्म की रक्षा करने में बहुत प्रयत्नशील थे । बाद में ज्ञात हुआ कि हरिजन सदस्य ने साधुओं की बात को मान्यता देकर मन्दिर में स्थित गरुड़ जी के स्थान के पास से ही दर्शन करने की बात मान ली । लोगों में यह बात तब उग्र चर्चा का विषय बनी थी । इस प्रकार के साधारण क्षुब्ध हुये वातावरण में, ईश्वर की प्रेरणा मान कर हम लोगों ने आनन्द पूर्वक बदरीनाथ के पवित्र और अति प्रसिद्ध धाम से विदा ली । इस वर्ष की यह हम लोगों की बड़ी और स्मरणीय यात्रा थी । आगे का निवास ऋषिकेश की भूमि में होना निश्चित हो गया था । देवप्रयाग में प्रायः ६ दिन बिताकर हमलोग ऋषिकेश पहुँचे, ज्येष्ठ मास समाप्त होता था ।

हनुमान दास जी से मिलाप

महेसना निवासी श्री नारायण भाई के यहाँ लगभग ३४ दिन का सुखमय निवास पूरा हुआ। इस समय के अन्तरगत, माता जी भी सरोड़ा का कार्यक्रम समाप्त कर वहाँ पहुँच गयीं थीं। महुवा जाने की योजना बनी इसके लिए ईश्वरीय प्रेरणा भी प्राप्त हो चुकी थी। उस कार्यक्रम के अनुसंधान में महुवा के रास्ते में सिहोर उतर कर श्री हनुमान दास जी का दर्शन करने का निर्णय कर लिया।

महात्मा श्री हनुमान दास जी लगभग २० वर्ष से सिहोर के गौतम कुण्ड पर निवास करते थे। उनके विषय में भावनगर से निकली “दर्शन” मासिक पत्रिका में दो लेख प्रकाशित हुये थे, एक में यह था कि लोग श्री रमण महर्षि के दर्शनार्थ दूर दूर से तिरुवराणा मलयी में इकट्ठा होते हैं, परन्तु रमण महर्षि तो भावनगर के पास सिहोर में विराजमान हैं। दूसरे लेख में माता आनन्दमयी और हरिबाबा दोनों, श्री हनुमान दास जी के दर्शन के लिए गये थे इस प्रकार का हवाला दिया था। आनन्दमयी माता ने हनुमान दास जी से एक दो प्रश्न पूछे थे। हरिबाबा के साथ एक बंगाली गृहस्थ था वह हनुमानदास को देख कर आनन्द में आकर बोल उठा, “समूचे भारतवर्ष में घूमा परन्तु ऐसे समर्थ संत पुरुष के समान कोई दूसरा नहीं देखा।” हरिबाबा ने भी

हेनुमान दास के पास कीर्तन किया, और भावनगर आकर अपने भक्तों और प्रशंसकों से कहा कि हेनुमान दास जी बहुत बड़े और प्राचीन काल के योगी हैं, ऐसे महात्मा बड़े भाग्य से ही देखने को मिलते हैं। वे पूर्ण सिद्ध पुरुष हैं और त्रिकालदर्शी हैं।

इन सब मनोरञ्जक बातों को पढ़कर मुझे भी श्री हेनुमान दास जी के दर्शन करने की उत्कण्ठा हुई। विशेषतः वे त्रिकालज्ञ हैं यह जान कर उनसे मिलने की प्रबल इच्छा हुई। बहुत समय से त्रिकालज्ञ महात्मा से मिलने की इच्छा मेरे मन में थी। इस प्रकार के महापुरुष की मुलाकात से अपनी साधना और जीवन सिद्धि की कल्पना को अधिक सुन्दर स्पष्ट और सुदृढ़ करने की मेरी भावना थी, उस भावना की पूर्ति के लिए मैंने अथक परिश्रम भी किया था। मुझे विचार आया कि हेनुमान दास के दर्शन का अकस्मात् अपूर्व अवसर देकर ईश्वर ने मेरे प्रयास को यशस्वी करने की कृपा करना प्रारम्भ किया है। अथवा क्या? यदि वे ठीक हुये तो मेरी बहुत सी चिंता कम हो जायगी, उपवास के दिनों की कठिन और लम्बी यातना भी सफल हो जायगी, और ध्येय सिद्धि की एक बड़े महत्व की आशा कड़ी भी मिल जायगी। वास्तव में ईश्वर के कृपापात्र त्रिकालज्ञ सन्तों के दर्शन का योग केवल उसी की कृपा के कारण से ही प्राप्त हो सकता है। मेरे ऊपर भी उस कृपा की किरण बरसने लगी है क्या? इस विचार से ओतप्रोत होकर, एक दिन प्रातः काल मैंने सिहोर स्टेशन पर पैर रक्खा, माता जी भी साथ में थीं। प्रथम जनवरी का दिन था।

सिहोर का प्रदेश छोटी-छोटी पहाड़ियों के कारण बड़ा सुहावना लगता है। स्टेशन के पास वाली धर्मशाला में ठहरने की व्यवस्था करके हम लोण शहर चल दिये। शहर स्टेशन से कुछ दूर है और गौतम कुण्ड वहाँ से भी एक मील और आगे है। व्रत की दुर्बलता के कारण चलने में कठिनाई अवश्य होती थी, परन्तु एक महान् संत के मिलने

का उत्साह बाहर की बाधाओं को नगण्य बनाता था। गौतम कुण्ड शहर से बहुत दूर था परन्तु जगह बड़ी सुन्दर है, छोटी सी गुफा, अन्दर छोटा सा मन्दिर, छोटा होते हुये भी स्वच्छ था। बाहर एक छोटी नदी है, मकान भी साफ और छोटा था। अन्दर प्रवेश करते ही महात्मा हनुमान दास के दर्शन का सौभाग्य मिल गया। एक चौकी पर साधारण गद्दी बिछाकर वे आसीन थे, कमरे में एक ओर थोड़े से वरतन पड़े थे, दूसरी ओर डोरी से कुछ वस्त्र लटकते थे। अन्दर के कमरे में मन्दिर था। यहाँ दर्शन कर हम लोग हनुमान दास जी के पास बैठ गये। उनकी अवस्था बहुत अधिक ज्ञात होती थी। बाल श्वेत हो गये थे। शरीर एवं मुख पर झुर्रियां पड़ी थीं नेत्रों में चश्मा लगा था। टाट का चोंगा पहने थे। और कंधी से बाल साफ कर रहे थे—हम लोग उनको प्रणाम कर उनके पास जमीन पर बैठ गये।

थोड़ी इधर उधर की बातों के उपरान्त उनकी विशेष शक्ति का लाभ लेने की इच्छा से मैंने जिज्ञासु की भाँति उनसे प्रश्न पूछना प्रारम्भ किया। कमरे में एक ओर घड़ी अपना कार्य करती जाती थी, उपेक्षा नहीं की जा सकती थी। मैंने सोचा कि ऐसा महान् अवसर हाथ आया है, तो उसका अधिक से अधिक लाभ लेना ही उत्तम है। नदी के किनारे हाथ जोड़ कर बैठे रहना, और पानी मिलने पर भी प्यासा रहना बुद्धिमत्ता नहीं कही जाती। उस समय हनुमान दास जी के पास और कोई नहीं था, अतः सब प्रकार की बात-चीत करने की अनुकूलता भी थी।

[३]

कितने ही मनुष्य संत पुरुषों के पास अकारण जाते हैं कितने ही केवल दर्शन करने जाते हैं, तो अनेकों किसी शंका का समाधान करने जाते हैं, कोई प्रश्न आदि पूछने जाता है। मनुष्य किसी भी हेतु

से प्रेरित होकर संत पुरुष के पास जाय, तो उसको अपने हेतु का ध्यान अवश्य रखना चाहिए, और जल्दी से उसकी पूर्ति कराकर संत के पास से विदा लेने को उसे सबैव तैयार रहना चाहिये। संत पुरुष का समय बड़ा मूल्यवान होता है। ऐसा समझकर अकारण अधिक समय उसके पास बैठे रहने की वृत्ति का त्याग करना चाहिए। खेद है कि अधिकांश व्यक्ति इस बात पर ध्यान नहीं देते और संतों के पास व्यर्थ में घंटों बैठे रहते हैं। कितने ही तो संत समागम की महिमा को भूलकर बिना पूछे अपनी व्यावहारिक बातें करने लगते हैं, और घरेलू बातें छोड़ देते हैं उस समय वातावरण बड़ा दूषित सा हो जाता है। संत समागम की वैज्ञानिक रीति सीखने से अपना और संत पुरुषों का बहुमूल्य समय बचाया जा सकता है।

समय का महत्व और सदुपयोग का विचार मेरे मन में सदैव रहने के कारण अपने विषय पर वर्तलाप करना मैंने अविलम्ब प्रारम्भ कर दिया।

पहिला प्रश्न मैंने अपनी साधना के सम्बन्ध में ही पूछा।

मैंने कहा “भुझे जगदम्बा के साक्षात् दर्शन की इच्छा है, यूँ तो दर्शन अनेक बार हो चुका है, परन्तु इच्छानुसार नहीं हुआ जिससे असंतोष और व्याकुलता चालू रहती है। आप तो त्रिकालज्ञ पुरुष हैं आप स्पष्ट करिये कि इच्छानुसार साक्षात् दर्शन कब होगा।”

उन्होंने उत्तर दिया “प्रेम हो तो दर्शन हों। दर्शन के लिए बड़ी लगन और वेचैनी चाहिए, यदि यह दोनों वस्तुएँ हों तो दर्शन अवश्य हो सकता है।”

“परन्तु जिस प्रकार का मैं चाहता हूँ वैसा दर्शन कब होगा?” मैंने पूछा। उन्होंने कहा, “उसका कोई निश्चित समय नहीं है। वे चाहें तो

पल में करा सकती हैं और यदि न चाहें तो वरसों और युगों तक यूँ ही चला जाय ।”

मैंने कहा,—यह तो मैं भी जानता हूँ, यह हुई सिद्धान्त की बात परन्तु मैं तो आपकी विशेष शक्ति का लाभ उठाना चाहता हूँ । आप त्रिकालदर्शी हैं यह बात जान कर पूँछ रहा हूँ अस्तु निश्चयात्मक, वर्ष, मास, दिन बताइये कि मेरे पर जगदम्बा की कृपा कब होगी, पूर्ण रूप से ।”

हनुमान दास जी कुछ सोच विचार में पड़ गये फिर बोले—“अभी देर लगेगी ।” परन्तु इस प्रकार के ऊपरी उत्तर से मुझे क्या सन्तोष हो सकता था ? अतः पूछने का कार्य-क्रम मैंने चालू रखा ।

“कितनी देर लगेगी ! और जगदम्बा की पूर्ण कृपा कब होगी ? वर्ष में, छै महीने में, दो वर्षों में ?”

इसके उत्तर में उन्होंने कहा, “बहुत देर लगेगी ।” पर फिर कहा—“एक वर्ष बाद कृपा होगी ।”

मुझे उनका उत्तर कुछ विशेष सन्तोषप्रद न लगा । एक त्रिकालदर्शी सिद्ध महापुरुष को जिस दृढ़ता और सावधानी से ऐसे प्रश्न का उत्तर देना चाहिये, वैसी दृढ़ता और सावधानी मुझे उनके शब्दों में न लगी, मैंने विचार किया कि संभवतः वे त्रिकालज्ञ न हों । नाक पर हाथ रख कर वे बार-बार कहते थे । अतः वे स्वरोदय शास्त्र के अम्यासी तो नहीं है, उनके प्रथम उत्तर से तो मुझे सन्तोष न हुआ फिर भी यदि इतनी दूर आया हूँ, तो दूसरे कोई प्रश्न पर विवेचना कर लूँ । इस प्रकार विचार कर मैंने उनका सत्संग जारी रखा ।

[५]

दूसरा प्रश्न कुछ भिन्न था । मेरी साधना का इतिहास जानने वालों

को नन्द पांचम का ध्यान होगा । नन्द पांचम कोई प्रचलित शब्द नहीं है । और बड़े बड़े विद्वानों को भी उसकी जानकारी नहीं है ऐसा ज्ञात होता है कि यह कोई प्राचीन लुप्त शब्द है । हनुमान दास जी त्रिकालज्ञ हैं ऐसा मानकर मैंने उनसे उस विषय की जानकारी चाही । उन्होंने कहा कि नाग पांचम कहते होंगे । मैंने बात स्पष्ट की कि नाग पांचम तो श्रावण महीने में आती है ऐसा विचार में नहीं आता कि उसे कोई नन्द पांचम कहता हो । तब उन्होंने विशेष व्याख्या करके कहा तो फिर नन्द पांचम, नन्द जी के नाम से सम्बन्धित होगा । नन्द जी के नाम से वह प्रचलित हुआ होगा ।

इसके बाद तीसरे प्रश्न की बात चली । मैंने कहा—“ बहुत लोग ऐसा कहते हैं कि श्री रामकृष्ण देव और स्वामी विवेकानन्द का अवतार हो चुका है इस विषय में आपकी क्या सम्मति है ? क्या उनका अवतार हो गया है ? एक विद्यार्थी कुछ समय पूर्व अमेरिका अभ्यास करने गये थे । वहां जाकर उसकी चित्रवृत्ति अधिकाधिक आध्यात्मिक मार्ग की ओर मुड़ने लगी, और अभ्यास में उसका मन लगने लगा । उसने प्रार्थना और व्रत करना शुरू कर दिया पूर्व संस्कारों की प्रबलता होने के कारण उसको अनेक अलौकिक अनुभव भी होने लगे । उसको ऐसा भी देख पड़ा कि वह स्वामी विवेकानन्द जी का अवतार है । तो क्या रामकृष्ण देव और स्वामी विवेकानन्द का अवतार हो गया होगा । इस विषय में आपकी क्या राय है ? ”

हनुमान दास जी सर हिलाकर कहने लगे—“ नहीं ऐसे महापुरुषों का अवतार हो गया है यह बात आज की परिस्थिति देखते मानी नहीं जा सकती । ऐसी अलौकिक विभूतियों का यदि जन्म हो, तो संसार में संकट न रहे । सब जगह शान्ति हो जाय और सब सुखी हो जाय । वर्तमान परिस्थिति तो बिल्कुल भिन्न है । मनुष्यों की कठिनाइयों की

कोई सीमा नहीं, अतः यह कैसे कहा जा सकता है, कि उन महापुरुषों का जन्म हो गया है ?”

मैं सोचता था कि हनुमान दास जी इस बात पर अपनी दिव्य दृष्टि से प्रकाश डालेंगे परन्तु उन्होंने तो साधारण तर्कवाद का ही आश्रय लिया। उनका स्पष्टीकरण बहुत रुचिकर न प्रतीत हुआ। संसार में जब जब अधर्म और अशान्ति बढ़ती है तब तब ईश्वर का अवतार होता है ऐसा कहा जाता है। वे अधर्म का नाश कर धर्म की प्रतिष्ठा करते हैं। ईश्वर के अवतार का प्रयोजन भी यही है। यदि केवल उनके प्रगट हो जाने मात्र से ही शान्ति हो जाय तो फिर उनको कोई प्रयास करने की आवश्यकता ही नहीं इतिहास कहता है कि ईश्वर के अवतार मात्र से संसार की अशान्ति दूर न हुई। भगवान् श्री कृष्ण और राम के समय में क्या अधर्म और अशान्ति न थी ? क्या उनके जीवन काल के समय समाज में कष्ट न था ? भगवान् बुद्ध और ईसा मसीह के समय में भी क्या सब शान्ति थी ? अशान्ति और अधर्म का नाश करने के लिए तो ईश्वर और उनके प्रतिनिधि महापुरुषों का अवतार होता है। अस्तु अवतार होने मात्र से सब जगह शान्ति हो जाय, यह मान्यता ठीक नहीं। इस मान्यता के कारण जो महापुरुषों का मूल्याङ्कन अथवा उनकी विशेषता का विचार करने बैठे तो शायद ही किसी को अवतार की श्रेणी में रखा जा सकेगा।

मेरे विचार इस प्रकार भिन्न थे, हनुमान दास जी वयोवृद्ध थे, और मैं उनके पास जिज्ञासु होकर गया था अस्तु उनके साथ चर्चा करने का काम मुझे अच्छा न लगा। उनके प्रति मुझे एक प्रकार का आदर भाव उत्पन्न हुआ। उनके विचारों को मैंने सुन लिया। मेरे पास समय भी थोड़ा था और भी बहुत सी बातें थी अतः वह चर्चा बन्द कर दी गयी।

[६]

हनुमान दास जी से फिर मैंने पूछा, “ भगवान के अवतार के बारे में आप की राय क्या है ? कोई कोई मनुष्य कहते हैं कि भगवान का अवतार हो गया है । तो क्या यह बात सच्ची है ? ”

उन्होंने उत्तर दिया, “ ना रामजी ! भगवान के अवतार को तो अभी देर है भगवान का अवतार तभी होगा जब बहुत कष्ट पड़ेगा यहां तक कि जगत त्राहि त्राहि करेगा । ”

मैंने कहा, “ कष्ट तो अभी बहुत पड़ रहा है, क्या और भी अधिक कष्ट पड़ेगा ? ”

“हां” उन्होंने उत्तर दिया, “ अभी तो और अधिक पड़ेगा तब अवतार होगा, अवतार को अभी बहुत देर है । ”

“महात्मा गांधी के विषय में आपकी राय क्या है ?” मैंने फिर पूछा, “गांधी जी ईश्वर के अवतार थे, ऐसा कितने ही विचारकों का कहना है । ”

“उनको अवतार कहने में कोई आपत्ति नहीं”, कुछ हिचकिचाते हुये उन्होंने उत्तर दिया, “ वे ईश्वर के अवतार नहीं कोई भक्त के अवतार थे । ”

उन्होंने कालिदास के मेघदूत के प्रक्ष की बात से मिलती हुई यह बात कही और बोले, “ गांधी जी पूर्व जन्म के एक बड़े भक्त थे । परन्तु शाप के कारण उनका पुनर्जन्म हुआ था । ”

मैंने पूछा, “गांधी जी का पूर्व जन्म में क्या नाम था ? आप कह सकते हैं ? ”

उन्होंने तत्काल स्वाभाविकता से उत्तर दिया, “हां, वे नासिका भक्त के अवतार थे।”

“नासिका भक्त ?” आज तक यह नाम कभी न सुना था, इस नये नाम को सुन कर मैं आश्चर्य व्यक्त करते पूछने लगा “नासिका भक्त का नाम तो आज ही सुना है, क्या किसी ग्रन्थ में इसका उल्लेख है।”

“हां”, उन्होंने दृढ़ता पूर्वक उत्तर दिया, “नासिका भक्त की बात शास्त्रों में आती है।”

मैंने कहा, “कौन शास्त्र में आई है कृपया कहिये, तो, मैं भी उसे पढ़कर अधिक जानकारी प्राप्त कर सकूंगा।”

हनुमान दास जी कुछ सोच विचार में पड़ गये। बात इतनी गंभीर हो जायगी, कदाचित् इसका उन्हें आभास न था। मैंने जब फिर वही बात पूछी तब वे संकोच के साथ कहने लगे, “मैं तो मूर्ख हूं, शास्त्रों की जानकारी मुझ में कहां से हो ? मुझे तो ठीक लिखना पढ़ना भी नहीं आता, यहां से थोड़ी दूर पर बगीचा है। वहां एक पण्डित रहते हैं। वे पुस्तक पढ़ा करते हैं मैंने यह बात उनसे सुनी है। किस ग्रंथ में यह लिखा है मुझे याद नहीं, परन्तु किसी पुराण में होगा।”

मैंने सोचा कि इस गंभीरता में मेरा जाना भी ठीक हुआ, नहीं तो उनके अभिप्राय का मर्म भली प्रकार समझ में न आता, और व्यर्थ में बहुत बड़ी गलतफहमी हो जाती।

मैंने फिर पूछा, “गांधी जी का फिर जन्म होगा या नहीं ?”

“काम अधूरा रह गया हो, या कोई वासना बाकी रही हो तो जन्मेंगे।”

उन्होंने प्रत्युत्तर दिया, बातें आगे चलती गयी। मैंने कहा, “थोड़े

दिन हुये अरविन्द आश्रम की माता जी ने एक पत्रकार की मुलाकात में कहा था कि भारत की सीमा पर रूसी अमेरिकन युद्ध की सम्भावना है और स० १९५७ ई० में क्रान्ति होगी। इसके विपरीत दक्षिण भारत के सुप्रसिद्ध संत श्री रामदास जी ने हाल में परदेश जाने के समय स्पष्ट किया था कि युद्ध होगा ही नहीं। भारत की इन दो लोकोत्तर विभूतियों की विरोधी विचारधारा के विषय में आपकी राय क्या है ?”

हनुमान दास जी बालों पर हाथ फेर कर, आनन्द में आकर गौरवपूर्ण मुद्रा से कहने लगे, “युद्ध नहीं होगा ऐसा कहते हैं, परन्तु पांच वर्ष के भीतर भयंकर युद्ध होगा जिसमें भारी नर संहार होगा।”

[७]

इसके बाद मुझे एक दूसरी बात सूझी, मैंने सोचा कि यदि अवसर मिला है तो उस बात की भी चर्चा हो जाय। महायोगी श्री अरविन्द ने पाकिस्तान की रचना के समय कहा था कि पाकिस्तान की अवस्था १० वर्ष की है, अरविन्द आश्रम की माता जी ने भी यही बात प्रगट की थी, मैंने हनुमान दास जी से इस सम्बन्ध में अपनी राय प्रगट करने को कहा।”

हनुमानदास जी ने सब बात शान्तिपूर्वक सुनी और बाद में अपने मनतव्य को स्पष्ट कर कहने लगे, “पाकिस्तान का नाश नहीं होगा उल्टे दिल्ली में मुसलमानों का राज्य होगा।”

“कितने समय तक दिल्ली में मुसलमानों का राज्य रहेगा ?” मैंने पूछा। “साल भर से कुछ कम”—उन्होंने उत्तर दिया।

मैंने पूछा, “उनका राज्य दिल्ली में कितने समय के बाद होगा ?” उन्होंने कहा, “पांच वर्ष के बाद। अभी तो हिन्दुओं को और अधिक त्रास होगा।”

चन्दवरदाई के समान किसी कवि या भक्त की प्राचीन भविष्य वाणी को स्मरण कर, अथवा उसी के आधार पर कहीं हनुमान दास जी वे सब बातें तो नहीं करते हैं, ऐसा विचार एक क्षण के लिए मेरे मन में आया, परन्तु उसको मैंने दबा दिया। समय बहुत थोड़ा रह गया था। घड़ी अपनी साधना में आगे बढ़ती जाती थी, अतः वार्तालाप की पूर्णाहुति करने की आवश्यकता थी, फिर भी अन्त के दो विषयों की बात आ ही गई। उसका भी उल्लेख कर दूँ।

मैंने कहा “अभी भी साई बाबा का नाम फैलता जाता है, शरीर तो उनका सन् १९१८ में शान्त हो गया था।, फिर भी आज भी वे अपने भक्तों को सहायता देते हैं। और दर्शन देते हैं। क्या इस तरह समाधि लेने के बाद भी महापुरुष भक्तों को दर्शन दे सकते हैं ?”

उन्होंने उत्तर दिया—“योगी पुरुष उस प्रकार से दर्शन दे सकते हैं। शरीर छोड़ने पर भी वे दूसरे स्थल पर प्रगट हो सकते हैं।”

अब उठने की तैयारी होने लगी, प्रायः आध घन्टा हो गया था। प्रातःकाल के साढ़े दस बजे का समय हो चुका था, परन्तु माता जी ने अकस्मात् अन्तिम प्रश्न पूछा। उन्होंने मेरे उपवास के बारे में पूछा कि वह कब छुटेंगे, अभी तो बहुत चलते हैं। हनुमान दास जी ने शान्त चित्त से उत्तर दिया, “जब मन करें तभी उपवास छूट सकते हैं।” जैसे एक बर्तन में पानी रखा है उसे यदि पीना हो तो पी ले न पीना हो तो न पिये यह तो मन की बात है।”

हनुमान दास जी के इस युक्तिपूर्ण उत्तर से मुझे बड़ा आश्चर्य हुआ। मैंने कहा, “उपवास क्या मेरी इच्छा से होते हैं। उसके पीछे ईश्वर की इच्छा या प्रेरणा होती है, अतः आप बताइये कि उपवास समाप्त करने की ईश्वर की “राम” की आज्ञा कब होगी ?”

परन्तु उन्होंने अपनी वही बात जारी रखी, “ईश्वर की प्रेरणा जैसी कोई बात नहीं, वह तो मन में जब आये तभी छूट सकता है। पीने का पानी जैसा हिसाब है। जब आवे तब पी ले।”

मैं भला इस स्पष्टीकरण को कब मानने वाला था? जो मेरे जीवन को थोड़ा भी जानते हैं और प्रकाश के पंथ के प्रवास के इन पृष्ठों को जिन्होंने पढ़ा है, वे भी इसको किस तरह मान सकते हैं। मां की प्रेरणानुसार आज कितनी वर्षों से मुझे उपवास का आधार लेना पड़ा है, और अनेकों बार छोड़ना भी हुआ है। यह बात तो जानी है, फिर यह किस प्रकार कहा जा सकता है, कि उपवास केवल मेरे मन का खेल हैं। मैंने सोचा कि हनुमान दास जी अभी ईश्वरीय प्रेरणा के अनुभवों से वञ्चित हैं अतः वे इस प्रकार की प्रेरणा की बात समझ नहीं सकते। उन्हें सहानुभूति से सत्कार कर समझाया भी नहीं जा सकता है, वे तो उसे निराधार, मिथ्या मानने, एवं मनवाने का साहस भी कर डालते हैं। बात यह है कि अन्तस्तल की प्रेरणा अथवा ईश्वरीय आज्ञा का अनुभव भाग्य से ही किसी साधक को प्राप्त हुआ देखने में आता है। जो साधक दशा को पार कर, सिद्धावस्था को प्राप्त कर चुके हैं, उनके जीवन में भी इस प्रकार के अनुभव भाग्य से ही देखने में आते हैं, अतः जब ऐसे कम-वैश वाले साधक से सम्पर्क में आने का प्रसंग होता है तो आश्चर्य का होना अनिवार्य है। इस प्रकार के पुरुष प्रेरणात्मक अनुभवों को “मन की कल्पना या मन का खेल” में खपाने का शीघ्र निर्णय कर लेते हैं।

जिसे अनुभव की गंभीरता का बोध है, वे इस मान्यता के साथ किस प्रकार सम्मत हो सकते हैं?

(८)

जो भी हो हनुमान दास का सतसंग अब पूरा हुआ। “दर्शन”

फा० नं० २४

मासिक पत्र में छपे लेखों को याद कर मुझे यह जान पड़ा, कि कितने ही इस प्रकार व्यक्ति है, जो संत पुरुषों का पूर्ण परिचय प्राप्त किए बिना ही उनके विषय में अतिशयोक्ति पूर्ण अभिप्राय लिख देते हैं । साधारण जन समाज पर उसका असर बहुत अच्छा नहीं पड़ता । इसका अर्थ यह नहीं है कि हनुमान दास जी मुझे अच्छे संत न लगे । वे अच्छे संत है, यह सत्य है । प्रायः ३० वर्ष से इसी एकान्त स्थान पर रहते हैं, इसके लिए जो जानता है कि इस प्रकार रहने में अधिक मनो-बल, बाह्य विषयों से वैराग्य, सत्त उदासीन वृत्ति चाहिए वही उनकी प्रशंसा करेगा और उनको संत समझ कर उनका आदर करेगा । संत के विचार से वे अच्छे हैं । दम्भ और आडम्बर से रहित नम्रता से पूर्ण है । परन्तु उतने से ही रमण महर्षि की बराबरी करना भी उचित नहीं विचारों की उच्चता और अनुभव की गहराई की दृष्टि से उनका स्थान कुछ विशेष या लोकोत्तर अथवा असाधारण नहीं लगता था । वे त्रिकालज्ञ हैं, यह भी माना नहीं जा सकता । यदि वे भविष्य दर्शन का काम न करें, और उस विषय में जानकारी को मानकर उस पर बोलने के बदले जितना हो सके उतना अपने अनुभव से ही बोलें, अथवा मौन रहें तो अधिक सुन्दर हो । उनका दयालु स्वरूप और उनकी सादगी बहुत अनुकरणीय और प्रशंसनीय है ।

उन मनोभावों के साथ उनको प्रणाम कर मैंने उनसे बिदा ली । आज जब उनका स्मरण ताजा हुआ है तो उस पुरुष के चरणों में मेरा प्रणाम है ।

हम लोग बाहर निकल कर पास की एक छोटी नदी में स्नान के उपरान्त स्टेशन की ओर चल दिए । सायंकाल को भावनगर पहुंच कर दूसरे दिन हम लोगों को महुवा पहुंचना था ।

भगवान बुद्ध का दर्शन

ऋषिकेश की भूमि बड़ी सुन्दर है, परन्तु ग्रीष्मकाल में वह इतनी अधिक तप जाती है कि मनुष्य को व्याकुल कर देती है। जब तक पूरी वर्षा न प्रारम्भ हो जाय तब तक इतनी अधिक गर्मी पड़ती है कि ठिकाना नहीं। ध्यान या साधना में सतत् रीति से मन लगाने का काम कठिन हो जाता है, इस बात को जानते हुए भी ईश्वर की इच्छा को मान देकर हम लोगों को ऋषिकेश में रहने के सिवा दूसरा अन्य उपाय न था।

गर्मी होते हुये भी प्राकृतिक सौन्दर्य से सुशोभित ऋषिकेश के पवित्र प्रदेश में हम लोगों के दिन शान्त पूर्वक व्यतीत होने लगे। वर्षा ऋतु में यह भूमि अधिक सुन्दर बन जाती है। पर्वत हरे भरे होकर हँसने लगते हैं और धरती में हरियाली हो जाती है। वर्षा के कारण गंगा में लगातार बाढ़ आती है। थोड़ी देर के बाद बाढ़ कम हो जाती है तब वह, क्षणिक वैराग्य का उभार शान्त हुये मनुष्य की तरह, अपनी पूर्व दशा को प्राप्त कर लेती है। गंगा की रमणीकता का दर्शन करने का आनन्द उस समय अनोखा ही होता है। उस आनन्द के अनुभव के साथ साधना के अनुभवों का आनन्द भी चालू था। साधना की सरिता अपने पुण्य-शाली प्रभाव के साथ आगे-आगे बह रही थी। उन दिनों अनेक अच्छे अनुभव भी होते थे। उनमें से एक सुन्दर अनुभव भगवान बुद्ध का था।

साधना के प्रारम्भिक वर्षों में मुझे भगवान बुद्ध का दर्शन हुआ था। बड़ोदा में हुये अनुभव का उल्लेख मैं कर चुका हूं, वैसा ही सुन्दर और अनोखा, परन्तु एक भिन्न प्रकार अनुभव मुझे ऋषिकेश के निवास कालान्तरगत हुआ। सन १९५५ ई० की तारीख ५ अक्टूबर दिन बुधवार को प्रातःकाल का समय था, जब अन्तस्तल में भगवान बुद्ध का दर्शन हुआ। वह दर्शन वास्तव में आनन्ददायक था। बुद्ध भगवान मानों ध्यानावस्था में बोधि वृक्ष के नीचे बैठे थे। उनके शरीर पर स्वच्छ और श्वेत वस्त्र सुशोभित हो रहे थे। उनकी मुखाकृति अत्यन्त तेजोमय और शान्त थी। उनके माथे पर एक छोटी सी आकर्षक जटा थी। विशेष बात तो यह थी कि उनके गले और हृदय के आस-पास एक चमचमाता श्वेत रंग का नाग लिपटा हुआ था। नाग या सर्प की कल्पना अधिकांश शंकर जी के साथ संलग्न है। अतः बुद्ध भगवान का नाग के साथ दर्शन आश्चर्यजनक लगता था। परन्तु उसमें आश्चर्य की कोई बात नहीं है। बुद्ध भगवान का दर्शन पाकर मुझे तुरन्त अन्तः प्रेरणा हुई कि साँप अथवा नाग कामदेव या माया का स्वरूप है। मन की वासना जिस साधक को परम सिद्धि प्राप्ति के मार्ग में बाधक होनी है वह इस नाग के सदृश्य विषमय है। उसका सफलता पूर्वक सामना हो और उसको जीत ले तो परम शान्ति, सिद्धि, निर्वाण अथवा बुद्ध भगवान के शब्दों में बोधि की प्राप्ति का भगीरथ प्रयत्न नितान्त सरल हो जाता है। अन्तस्तल की गहराई में सोई हुई यह विषधर नागिन “वासना”, अत्यन्त भयंकर है। अहंकार, ममता रागद्वेष या स्वार्थ बुद्धि को इस नागपाश से मुक्त होने के लिए साधक को यथा सम्भव प्रयास करने का है। भगवान बुद्ध को भी बोधि के प्राप्त करने में प्रथम कार्य यही था, उसके लिए प्रखर प्रयास करना पड़ा था, यह बात सर्व विदित है। दूसरों को भी उससे बोध पाठ लेना चाहिये।

अधिक काल के उपरान्त भगवान बुद्ध के इस अद्भुत दर्शन से मुझे

बड़ा आनन्द हुआ। वीतराग और ईश्वरमय पुरुषों का दर्शन ही हमेशा आनन्दस्वरूप है। उनके दर्शन से प्रेरणा मिलती है। और उत्साह बढ़ता है।

प्रातःकाल जब आँख खुली तो भगवान बुद्ध का वह दर्शन मन पर वैसा का वैसा ताजा था, उनका वह अनोखा स्वरूप सदैव याद रहेगा।

• • •

स्वामी नित्यानन्द का दर्शन

नव रात्रि से दीप मालिका पर्यन्त के दिनों के अन्तरगत माँ के दर्शन का अनुभव प्राप्त हुआ। वैसे तो माँ का दर्शन बीच-बीच में हुआ करता था, और उनके साथ वार्तालाप करने का आनन्द भी मिलता था, परन्तु माँ के दर्शन की मेरी इच्छा कुछ भिन्न प्रकार की थी। उसी से साधना को आगे बढ़ाने की आवश्यकता थी। जाड़ों में गुजरात की यात्रा का कार्यक्रम निश्चित था। माँ की प्रेरणा के अनुसार इसी समय बम्बई जाना था।

चार पांच दिन के लिए देहरादून के निकट कोलागढ़ नगर जाना हुआ, वहाँ न जाने क्यों अधिक अच्छा न लगा अतः वहाँ का कार्यक्रम वहाँ के लोगों का विशेष आग्रह होते हुये भी कम कर देना पड़ा। माँ की मेरे ऊपर जो सतत् कृपा दृष्टि है उसे ध्यान में रखते हुए दो छोटे प्रसंगों का उल्लेख यहाँ अनुपयुक्त न होगा।

[१]

देहरादून से बम्बई जाते समय बीच में मेरा विचार नागदा उतर कर उज्जैन जाने का था। माता जी को भी उज्जैन देखने की विशेष इच्छा थी, परन्तु उन दिनों माँ ने उज्जैन न जाने की प्रेरणा देकर कहा

वहाँ जाने से कष्ट में पड़ जाना होगा अस्तु उज्जैन जाने का विचार स्थगित कर देना पड़ा। दूसरी बात यह थी कि बम्बई जाने का विचार तीसरे दर्जे में था। सोचा था कि तीसरे दर्जे के नये डब्बों का अनुभव लेंगे। इसकी भी माँ से आज्ञा मांगी तो आदेश हुआ तीसरे दर्जे में जाने की आवश्यकता नहीं है, उपवास का शरीर है, हैरान हो जाना पड़ेगा, और कठिनाई में पड़ जायेंगे, आपको तीसरे दर्जे में क्यों जाना है ? जब पैसे की पूरी व्यवस्था है तो पहिले दर्जे में ही जाइये।

बात कुछ भी नहीं थी। फिर भी माँ की कृपा की विशेषता दिखाने के लिए इसका उल्लेख किया। मेरे जीवन की छोटी से छोटी बात पर भी माँ की कैसी दृष्टि है और मेरा जीवन छोटी-छोटी बातों में भी माँ की इच्छा और प्रेरणा के अनुसार किस तरह कुशाग्रता से आगे बढ़ रहा है, इस बात पर विचार केन्द्रित करने के लिए यह प्रसंग बड़े महत्व का है। बरसों से मेरा जीवन इस तरह माँ की इच्छा और प्रेरणा के अनुसार ही चलता है। छोटी छोटी बातों में भी मेरा जीवन माँ की मर्जी के अनुसार ही आकार धारण करता है। तो फिर बड़ी बातों में तो कहना ही क्या है ? सारांश में कहे तो मेरा सम्पूर्ण जीवन एक प्रकार से माँ की अलौकिक इच्छा का ही आकार या अनुवाद है। इसीलिए उसका प्रत्येक पहलू मंगलमय है। मेरे आज तक के जीवन के इतिहास को बुद्धिमत्ता पूर्वक अध्ययन करने वालों को इस बात का पूर्णरूपेण विश्वास होगा।

देहरादून से निकल कर बम्बई पहुँच तो गये, परन्तु वहाँ रहने का स्थान बहुत अच्छा न था। पर्याप्त प्रयत्नों के उपरान्त भी हर बार की तरह, इस बार सेनीटोरियम में जगह न मिली, अतः कुछ काल के लिए माधव बाग की धर्मशाला में रहने की व्यवस्था किया। धर्मशाला और सब प्रकार से अच्छी थी परन्तु बगल के होटलों के धुएँ की बाहुल्यता थी। माँ की पूर्ण सूचनानुसार एक मास बाद हम लोगों को

बालकेश्वर के खीमजीवा के सेनीटोरियम में जगह मिल गयी। वहाँ का वातावरण बहुत ही अनुकूल था।

[२]

थोड़े दिनों के उपरान्त हम लोगों ने वज्रेश्वरी जाने का विचार किया। वज्रेश्वरी का स्थान बहुत सुन्दर और प्रसिद्ध है वहाँ का प्राकृतिक सौन्दर्य और माता का मन्दिर हृदय स्पर्शी है। कुण्ड के कारण उसकी शोभा और बढ़ जाती है। मन्दिर का स्थान कुछ ऊँचाई पर होने से अगल बगल की पर्वत माला के दर्शन का अनोखा अनुभव प्राप्त होता है।

वज्रेश्वरी के बगल में गणेशपुरी नामक एक स्थान है, वह बहुत एकान्त में बसा है। वस्ती भी बहुत ही थोड़ी है। वहाँ कुण्ड के समीप स्वामी नित्यानन्द नामक एक महात्मा रहते हैं। उनके दर्शन का लाभ हम लोगों को मिल गया।

हम लोग उनके स्थान पर सुबह ९ बजे पहुँचे, दर्शन की इच्छा वाले व्यक्ति बाहर दालान में बैठे थे। स्वामी जी अपने कमरे में सफेद चादर ओढ़कर लेटे थे। लगभग आध घन्टा बाद वे उठे तब हम लोग उनके पास दर्शनार्थ गये। स्वामी जी के नेत्र बड़े तेजस्वी थे, शरीर श्याम और स्थूल था। मुख पर कोई विशेष आकर्षण न था परन्तु नेत्र आकर्षक अवश्य थे। थोड़ी देर बाद वे बाहर दालान में आकर बैठे और फिर लेट गये।

उनका व्यवहार नितान्त उदासीन, एक मस्त या दीवाने मनुष्य के समान था। किसी के साथ बात करना पसंद नहीं था, लोग उनके दर्शन मात्र से प्रसन्न होते थे। उनके व्यवहार से उनके विषय में कोई अभिप्राय देने का काम ठीक न कहा जायगा, ऐसे महात्माओं की साधना

और आन्तरिक स्थिति की पूर्ण विवेचना या दीर्घकालीन परिचय के बिना उन पर किसी भी प्रकार की आलोचना का काम अघूरा है। वे किस प्रकार के महात्मा हैं, और किस भूमिका पर हैं, इस बात का उल्लेख करना अनुपयुक्त है, परन्तु उनकी अवस्था अच्छी होगी, ऐसा तटस्थ देखने से पता चलता है। यह कहा जाता है कि ख्याति में आने के पूर्व उन्होंने गणेशपुरी में बरसों तपश्चर्या की है।

बहुत लोग ऐसा विचार करते हैं कि जो महात्मा बोलते हों, या मौन होकर शान्ति पूर्वक बैठकर जो आवे उसे नियमानुसार केवल दर्शन ही देते हों, तो उनके प्रति कैसा निर्णय होना चाहिये। वास्तव में उनके प्रति कोई निश्चयात्मक बात नहीं कही जा सकती, परन्तु यदि लोगों को लाभ मिले तो बहुत अच्छा है, ऐसा अवश्य प्रतीत होता है, कि जिसमें अधिक लाभ हो वह करना चाहिये परन्तु प्रत्येक महात्मा की अपनी दृष्टि और विशेषता होती है यदि इस प्रकार से समझा जाय तो अनर्गल धारणा बनाने की सम्भावना कम रहती है।

मुझे उनसे अपनी साधना के विषय में पूछने की आवश्यकता थी, परन्तु वह इच्छा पूरी न हो सकी। बम्बई वापस आने के बाद उनका एक अनुभव मिला था। एक दिन प्रातःकाल उनका दर्शन हुआ था। वे अपने कमरे में स्नानादि से निवृत्त होकर बैठे थे, कपाल पर भस्म थी कुछ संस्कृत पाठ करते थे। उनके पास जाकर मैंने प्रणाम किया, इसके बाद उनके साथ थोड़ा वार्तालाप हुआ।

उन दिनों ऐसे अनुभव की इच्छा मेरे मन में रमा करती थी। अतः इस अनुभव से मुझे आनन्द हुआ। स्वामी जी की, या चाहे जिसकी इच्छा से, यह अनुभव हुआ हो, था वह बड़ा लाभकारक इस अनुभव से मेरी आशा अधिक प्रबल बनी और मुझे अधिक आनन्द मिला।

जलाराम भगवान की कृपा

भाररवर्ष संत रूपी रत्नों की खान है। ईश्वर के कृपा पात्र और ईश्वर तुल्य महापुरुष या संत जिस प्रमाण में इस देश में हुये उतने किसी दूसरे देश में नहीं हुये। ऐसे महान् लोकोत्तर संत पुरुषों में वीरपुर के जलाराम भगवान का स्थान अत्यन्त उल्लेखनीय है।

संसार में लोक कल्याण को प्रमुख मानने वाले ऐसे कितने ही संत हैं। वे सूक्ष्म रूप से रहकर भी लोगों को दर्शन देते हैं; और सहायता करते हैं। सन् १९५६ ई० में मैं वीर पुर गया, और जलाराम भगवान के विषय में जानकारी प्राप्त की, तब से मैंने जाना कि जलाराम भी ऐसे ही एक लोकोत्तर संत हैं, और उनके प्रति मेरा प्रेम भाव बढ़ गया।

इस प्रेम भाव का कारण चाहे आकर्षण कहिये या कुछ और परन्तु ता० १०-८-५७ शनिवार के दिन रात्रि के साढ़े ग्यारह बजे मुझे उनका दर्शन हुआ। उस समय मैं ऋषिकेश में था। उनका स्वरूप एक दम गोरा, सौम्य, और अत्यन्त तेजोमय था। दर्शन के उपरान्त उन्होंने मेरे साथ अनेकों आन्तरिक बातों की जो गोपनीय होने के कारण यहाँ पर उल्लेख में नहीं आयेंगी।

भगवान जलाराम की कृपा प्राप्त करने वाले इच्छुक प्रेमी भक्त आज भी उनकी कृपा प्राप्त कर सकते हैं इस बात का विश्वास दिलाने के कारण इतने प्रसंग का उल्लेख किया गया है ।

श्री जलाराम भगवान की जय । उनके श्री चरणों में वन्दना करके मैं यह वर्णन समाप्त करता हूँ ।

• • •

